नरेन्द्र शर्मा

और

द्रौपदी

लेखक

श्री राकेश एम० ए०

प्रकाशन केन्द्र

अमीनाबाद, लखनऊ

प्रकाशक
प्रकाशन केन्द्र
न्यू बिल्डिग्स, अमीनाबाद, लखनऊ

मूल्य ६

मुद्रक
विकास प्रिंटिंग प्रेस
नौबस्ता, आगरा—३

अपनी बात

'द्रौपदी' महाभारत की कथा पर आधारित होकर अपने ढंग का सर्वथा मौलिक एवं नवीन काव्य है। इसमें महाभारत की कथा न दोहराई जाकर कथा की शृंखला जोड़ने के लिए कुछ कथांश और पात्र ऐसे चुन लिये गये हैं, जो शाश्वत जीवन और जीवनी-शक्ति के प्रतीक हैं। उन्हें केन्द्र बनाकर ही आध्यात्मिक रूपक का निर्वाह हुआ है। इस प्रकार 'द्रौपदी' आध्यात्मिक प्रतीक काव्य की दृष्टि से अपने क्षेत्र में सर्वथा मौलिक है।

इस कृति में प्रतीकात्मक तत्वों को स्पष्ट करते हुए 'द्रौपदी' काव्य का आलोचनात्मक और व्याख्यात्मक अध्ययन इस प्रकार प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है कि छात्र सुगमता से हृदयंगम कर सकें। परीक्षोपयोगी समस्त सामग्री दे देने का मेरा प्रयास प्रत्येक पुस्तक में रहता है, यही उद्देश्य इस कृति की रचना में भी रहा है।

-राकेश

अनुक्रमण

द्रौपदी

व्याख्या—विश्लेषण

वर्तमान काव्य-धारा और द्रौपदी

स्वतन्त्रता के पश्चात् निम्न दृष्टिकोणों से हिन्दी-काव्य समृद्ध है

(१) व्यक्ति-जीवन और समाज-जीवन की विविध समस्याओं, स्थितियों, भाव और अनुभूतिय का उसमें अपेक्षाकृत अधिक वर्णन हुआ है। व्यक्ति की मन:स्थित के विभिन्न रूपों और उतार-चढ़ाव का इतना सूक्ष्म और विस्तृत वर्णन पहले नहीं हुआ।

(२) नये-नये कवि नई उद्‌भावना और नई विचारधारा लेकर सामने आये।

(३) परिणाम की दृष्टि से भी अपेक्षाकृत अधिक काव्य लिखा गया।

(४) शैली-शिल्प, तन्त्र, भाषा, अप्रस्तुत-विधान आदि में भी नए प्रयोग हुए।

स्वतन्त्रता के बाद स्वतन्त्रता के पहले की अपेक्षा निम्न दृष्टियों से हिन्दी-काव्य का ह्रास हुआ।

(१) ऐसे कथा-सौन्दर्य का प्राय: अभाव मिलता है, जो जन-मानस की भाव चेतना में युग-समस्याओं के प्रति मानव की सह-अनुभूति का विस्तार कर सके।

(२) पाठक वर्ग आज के काव्य के प्रति आकर्षण खोता जा रहा है। वर्तमान काव्य का पाठक वर्ग तथा उसको पसन्द करने वाला वर्ग बँटकर सीमित हो गया व सामान्य पाठक के राग एवं सौन्दर्य-बोध का विषय आज की कविता नहीं बन पाई। अनेक कविताएँ तो केवल रचियता कवि के बोध की सीमा में ही लिपट कर रह जाती हैं।

स्वतन्त्रता के बाद काव्य की दो धाराएँ प्रवाहित हुईं। एक धारा तो वही है, जो कि स्वतन्त्रता के पूर्व से चली आ रही है और दूसरी धारा स्वतंत्रता के बाद उत्पन्न हुई। स्वतंत्रता के बाद व्यक्ति और समाज का जीवन बड़ा ही विविधतापूर्ण और संकुल हो गया है। हिन्दी-काव्य-धारा ने अपने विविध-रूपों मुक्तक, छन्द-मुक्त-काव्य, छंदोबद्ध कविता, गीत, गीत-नाट्य, सॉनेट, प्रबंध-काव्य

आदि के माध्यम से व्यक्ति और समाज दोनों ही स्तरों पर हो रहे परिवर्तनों एवं संघर्षों को काव्य की विषय-वस्तु बनाया है।

स्वतन्त्रता के पश्चात् हिन्दी-काव्य-धाराओं और अन्तर-धाराओं का वर्गीकरण और विवेचन निम्न प्रकार किया जा सकता है :—

व्यक्तिपरक मुक्त-छन्द-काव्य

युग के संघर्ष से त्रस्त मानव की व्यक्तिवादी प्रवृत्ति को आज के काव्य ने विशेष रूप से प्रभावित किया है। यह धारा व्यक्ति को सामाजिक प्राणी स्वीकार न कर अपने में पूर्ण इकाई स्वीकार करती है। अतः यह धारा व्यक्तिवादी चेतना का काव्य है। व्यक्ति को लगता है कि समाज में उसका कोई साथी नहीं है। वह अनास्था और संशय से भर जाता है :—

"कूड़े सा हम को तजकर तट के पास
मंथर गति से बढ़ जायेगा इतिहास
सामूहिकता ही खेल
साबित होगी जिस दिन छल
अपनी वैयक्तिकता हार क्या पायेंगे
प्रभु हम क्या पायेंगे ?"

इस धारा का काव्य भोगवाद को प्रधानता देता है। सामाजिक नैतिकता को बंधन मानकर उसे त्याज्य समझता है। उसके व्यक्ति-स्वातन्त्र्य में स्वछंद और उन्मुक्त भोग की स्वीकृति है :—

"आज मुख्य मेहमान तुम'
रात के 'फ्लोवर शो' के
एक बार, बस एक बार
अपने तन की छाप छोड़ जा,
मुझ पर।"

समष्टि-चेतना-मूलक आस्थावादी काव्य

इस धारा के काव्य में व्यक्ति अपने मन का विमंथन कर आस्था के नये बसे

धरातल को खोलने में प्रयत्नशील है। उसके अन्वेषण की राहें मानव की प्रगति की राहें हैं:—

'अब आज आत्मा की सृजनातुर वैदेही—
परित्यक्ता मन से क्षीण, विवश,
संशय और अनिश्चय की अटवी में
पा गई शरण बाल्मीकि-सरीखे
काव्य-वृक्ष की छाया में,

यह जनमंगी वे पुत्र जो कि उसकी पीड़ा को सत्वर गाएँ।
जो सहज सत्य के भटके नृप की जननी तक वापस लाएँ।"

आज का कवि समाज-द्रोही चेतना के प्रति सचेत होता जा रहा है। वह व्यक्तिवादी की चेतना के कवि का उद्‌बोधन कर उसे सृजन की नई चेतना को वरण करने का आह्वान करता है :—

"अहं की कारा को मुक्त करो,
बाहर ले आओ,
रत्न हैं पास तो,
प्रकाश दिखलाओ
व्यष्टि को
समष्टि के निकल पर उतारो
घर्षण से
तेजमयी किरणें निखारो।"

वह आन्तरिक भ्रष्टाचार, अव्यवस्था एवं शोषण-जनित परिस्थितियों के बीच इन्सान की इन्सानियत को शरणार्थी हुई देख कर उसे फिर बसाना चाहता है :—

"इन्सानों की भीड़ में
इन्सानियत खो गई।

× × ×

है कोई ?

जो—
इस खोये-सिसकते हुए
प्यार के भूखे बालक को
उसके घर तक पहुँचा दे ?
टूटे हुये तारे को सूने आसमान में
फिर से बसा दे।
आज—"

इन्सानियत शरणार्थी है। आज वैज्ञानिक तथा औद्योगिक प्रसार के कारण कविता वन, उपवन, नवीन निर्झर, पर्वत, समुद्र के इन्द्रधनुषी सौंदर्य से विरहित होकर कस्बे और नगरों के जन-सकुल, फुटपाथों पर आकर भटक गई है। छायावादी युग में जहाँ प्रत्येक कवि ने प्रकृति-चित्रण को प्रायः साध्य मान लिया था, वहाँ इस वर्ग के कवि ने प्रकृति का प्रयोग प्रायः साधन के रूप में किया है। **स्वतन्त्रता के बाद की हिन्दी कविता पर भावना और अनुभूति के स्थान पर बौद्धिकता की छाप अधिक गहरी है। कल्पना के स्थान पर चिन्तन को अधिक महत्व दिया गया है।**

इस काल में प्रेम और सौंदर्य के जहाँ अनास्थामूलक मांसल, भोगवादी और वासनात्मक रूप सामने आये, वहाँ प्रेम और सौंदर्य का स्वरूप-वर्णन भी हुआ। नये कवियों ने प्रेम के चित्रण में सामाजिक रूढ़ियों, वर्जताओं और अर्थ-वैषम्य-जनित मानव की विवशताओं का भी चेतना-परक चित्रण किया है—

"तुम अमीर थीं
इसीलिए हमारी शादी न हो सकी
पर, मान लो, तुम गरीब होतीं
तो भी क्या फर्क पड़ता ?
क्योंकि तब
मैं अमीर होता।"

आज की कविता की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि **उसमें दैनिक जीवन के सहज चित्र उपस्थित हुए हैं।** चूड़ी का टुकड़ा, चाय की प्याली, प्लेटफार्म,

लिपिस्टिक, हैण्डबेग, अस्पताल, नर्स और बाजरे की कलंगियों तक के स्वाभाविक चित्र कविता में खींचे गये हैं। एक उदाहरण लीजिये—

"पार्टनर !
झाड़ दो ना राख
दर्शन को बड़ी मनहूस लगती है।
तुम्हारी अँगुलियों में दबी सिगरेट जल चुकी है,
राख केवल रह गई है
पुरानी गठन के, सम्पर्क के कारण
लेकिन"

यह सुरुचि-दर्शक को बड़ा बेचैन करती है। इस प्रकार की रचनाओं में कोई स्थायित्व नहीं।

व्यक्तिपरक गीति-काव्य

स्वतन्त्रता के पश्चात् हिन्दी-काव्य-क्षेत्र में
इनमें नीरज वीरेन्द्र मिश्र, शम्भुनाथसिंह, रामनाथ अवस्थी, रामावतार, त्यागी, रामकुमार चतुर्वेदी, वालस्वरूप शास्त्री, सोम ठाकुर आदि उल्लेखनीय हैं। इन नए कवियों के अतिरिक्त माखनलाल चतुर्वेदी, पन्त, बच्चन, निराला, नरेन्द्र शर्मा, नवीन, नैपाली, अंचल, रांगेय राधव आदि स्वतन्त्रता के पूर्व के कवियों ने भी गीत लिखे हैं। इन गीतों में जहाँ निराशामूलक और वेदनामूलक गीतों की परम्परा मिलती है, वहाँ आशाजनक **जिजीविषामूलक** गीत भी मिलते हैं।

निराशाजनक मृत्युवादी गीत

"मत करो प्रिय रूप का अभिमान।
कब्र है धरती, कफन है आसमान।
× × ×
इसी तरह तै हुआ सांस का ये सफर।
जिन्दगी थक गई, मौत चलती रही।"

—नीरज

वेदना और विवशता

"हर चमन का शूल पहरेदार जिसका,
उस अकिंचन डाल की हँसती कली हूँ।

× × ×

तुझे न हँसने दिया समय के निष्ठुर झंझावात ने।
मुझे न सोने दिया चाँद पर मरने वाली रात ने।"

आशाजनक जिजीविषामूलक गीत

"किसी के नयन का सन्देश लेकर आ गये बादल।
तुम्हारी आज भी पाती नहीं आई।
सुबह जब मेघ में छिपकर किरन फूटी,
तुम्हीं जैसी तनिक हँसती, तनिक रूठी,
दिखाकर दामिनी, पल भर मुझे बहका गये बादल,
तुम्हारी आज भी पाती नहीं आई।"

× × ×

"श्याम गगन नव घन मँडलाए।
कानन गिरि, बन आँगन छाए।

लगे बाग आमों के परसे,
धानों के खेतों पर बरसे,

युवती निकली अपने घर से,
पुरवाई के झोंके खाती।"

आज का कवि छायावादी चित्र-कल्पना की अपेक्षा अमूर्त और मूर्त चित्र-कल्पनाओं के नए और सहज प्रयोग कर रहा है :—

"अनबोली प्रीति-सी,
निंदिया के गीत-सी।
प्राणों में छा गई,
चैत की चाँदनी।

गोरी की छाँव-सी,
सुधियों के गाँव-सी।
सपनों को भा गई,
चैत की चाँदनी।"

समाजपरक कविताएँ

स्वतन्त्रता के पश्चात् सामाजिक दृष्टिकोण को भी सामने रखकर काव्य-रचना हुई। पन्त, माखनलाल चतुर्वेदी, बच्चन, दिनकर, नवीन, नरेन्द्र शर्मा नागार्जुन आदि अनेक व्यापक जन-चेतनावादी कवियों की कविता स्वतन्त्रता के पश्चात् सामने आई। समाजपरक काव्यधारा के अन्तर्गत प्रबन्ध-काव्य, मुक्त कविताएँ और गीत-काव्य लिखे गये।

प्रबन्ध-काव्य—'कृष्णायन', 'जयभारत और विष्णुप्रिया', 'वर्धमान', 'रावण', 'पार्वती', 'प्रेमचन्द्र', 'मीरा', 'उर्मिला', नाटक हैं। 'ऋतम्बरा', 'रश्मि-रथी', 'उर्वशी', 'एकलव्य', 'महारथी कर्ण', 'साकेत सन्त', 'रामराज्य', 'द्रोणी', 'कनुप्रिया', 'जननायक', 'अंगराज', 'आर्यावर्त', 'मेधावी', 'वाणाम्बरी', 'आदि'।

इन प्रबन्ध-काव्यों में व्यक्ति और समाज के पारस्परिक सम्बन्ध की स्थापना की गई है। युद्ध और शान्ति तथा हिंसा और अहिंसा का चित्रण किया गया है। वर्ग और वर्ग-वैषम्य पर करारा प्रहार किया गया है। पौराणिक विषयों के माध्यम से आधुनिक युग की समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। नारी-पुरुष के सनातन आकर्षण और काम सम्बन्धों का दार्शनिक पुनर्विश्लेषण किया गया है। 'गांधीवाद', 'मार्क्सवाद' और 'फ्रायडवाद' का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। अपेक्षित समझे जाने वाले पात्रों को नायक बनाया गया है। भाषा, छन्द, अलंकार, शब्द-शक्ति आदि अभिव्यक्ति के विविध उपकरणों का यथासम्भव स्वच्छन्द प्रयोग किया गया है।

समाजपरक मुक्तक कविताओं तथा गीतों में व्यापक रूप से समाज को प्रभावित करने वाली समस्याओं और घटनाओं का चित्रण किया गया है। विनोबाजी ने भूमिहीनों को भूमि दिलाने का एक रास्ता भूदान खोजा। परन्तु

आज का सचेतन कवि समय की हवा समझने की स्पष्ट चेतावनी भू-स्वामियों को देता हुआ कहता है :—

"अपने को ही नहीं देख, टुक ध्यान इधर भी देना,
भूमि-हीन कृषकों की कितनी बड़ी खड़ी है सेना,
बाँध तोड़ जिस रोज फौज खुलकर हल्ला बोलेगी,
तुम दोगे क्या चीज ? वही जो चाहेगी सो लेगी।
कृष्ण दूत बनकर आया है, सन्धि करो सम्राट।
मच जायेगा प्रलय, कहीं वामन हो पड़ा विराट।"

बहुमुखी विकास की जो योजनाएँ देश में चल रही हैं, उन सभी को आज की कविता ने ग्रहण किया है। गत वर्षों में चीन और पाकिस्तान के आक्रमण से जनता में जन्म-भूमि की रक्षा के लिए अपार उत्साह जाग पड़ा था। इन आक्रमणों को लेकर हिन्दी की नई तथा पुरानी पीढ़ी के प्रायः सभी कवियों ने अपने विक्षोभ और आक्रोश की आवाज कविता के माध्यम से उठाई थी। हिन्दी की नई पीढ़ी का कवि सीमा पर जूझते सैनिकों को आश्वासन देता कहता है :—

"हे हिमालय-सी अजय दुर्धर्ष आस्था की सजग प्रतिमूर्ति।
फूत्कारमय उद्धत जलधि की राशि-राशि पुकार।
मेरे देश के चालीस कोटि निवासियों की भावना।
आकांक्षाओं, कामनाओं की सुदृढ़।
संजीवनी भाषा, तुम्हारी वन्दना हो।
हे अनादि अनन्त यौवन-अकथ पौरुष की सुलगती।
ज्वाल के उद्दाम, पुँजीभूत रूप विराट।
युग-इतिहास के पथ पर चरण रख
..........कांगो, काश्मीर, गाजा-सिनाई के मरुस्थल में
तुम जहाँ भी
शान्ति, रक्षा, कीर्ति, अन्वेषी बने अभिमान करते चल रहे हो,
मैं तुम्हारी मचलती रफ्तार का उन्मेष बन कर,
साथ पग से पग मिलाकर चल रहा हूँ।"

कला और शिल्प

आज की कविता में भाषा, छन्द, अलंकार आदि के नये उपयोगों की प्रवृत्ति भी दिखाई पड़ती है। काव्य-रूपों में एक ओर परम्परागत युगानुरूप नवीनता लाने का सजग प्रयास किया गया, तो साथ ही स्वतन्त्रता से पूर्व अनेक कम प्रचलित काव्य-रूपों का परिष्कार कर उन्हें प्रचलित किया गया तथा नये काव्य-रूपों का भी प्रयोग किया गया।

प्रबन्ध-काव्य

स्वतन्त्रता के पश्चात् दो दर्जन से भी अधिक प्रबन्ध-काव्यों की रचना हुई। इनमें कथा की दृष्टि से परम्परागत मान्यताओं का ही निर्वाह किया गया। किन्तु नायक, सर्ग तथा छन्द-विधान की दृष्टि से परम्परा के निर्वाह की अपेक्षा युगानुरूप तथा भावाभिव्यक्ति के अनुरूप स्वच्छन्दता से भी काम लिया गया। साथ ही आधुनिक काल को भी प्रबंध-काव्यों का विषय बनाया गया।

छन्द-मुक्त-काव्य

यह युग छंद-मुक्त-काव्य का युग कहा जा सकता है। समस्त प्रयोगशील कविता प्रायः छंद-मुक्त-काव्य ही है। इसका कवि किसी छन्द की सीमा नहीं मानता। शब्द-योजना, पँक्ति-योजना या लय आदि के बन्धनों की कोई आवश्यकता नहीं समझी जाती। इसलिए कविता भी काव्य-गद्य के ही समान हो जाती है।

गीत-काव्य

गीतों की परम्परा बहुत पुरानी है। आज गीतों में लोक-गीतों का समावेश नहीं, कविता की नई उपलब्धि है। इस क्षेत्र में बच्चन, केदारनाथसिंह, धर्मवीर भारती, भवानीप्रसाद मिश्र, नरेश मेहता तथा शमशेरबहादुर के नाम विशेष उल्लेखनीय ...

इस युग में अनेक कवियों ने उर्दू की गजलों, रुबाइयों तथा शेरों के ढङ्ग पर अनेक रचनाएँ कीं। इस क्षेत्र में नीरज शमशेरबहादुर के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

काव्य-शिल्प के नये प्रयोग

नई कविता में शिल्पगत नई उपलब्धियों को निम्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :—

(१) बिम्ब-विधान, (२) प्रतीक-विधान, (३) भाषा।

बिम्ब-विधान

बिम्ब-विधान में नई-नई उपमाओं का सबसे अधिक सहारा लिया गया है। इसके अतिरिक्त असम भावों के रूपात्मक बिम्ब भी इस काल की कविताओं में बड़ी सफलता के साथ प्रस्तुत किये गये हैं। कुछ उदाहरण लीजिए :—

नई उपमाओं के माध्यम से सूर्य और शुक्र तारे में नए-नए विम्ब निम्न उदाहरण में दृष्टव्य हैं :—

"नए दूल्हे-सा सूरज, नव वधू-सा शुक्र तारा।
इन्जन के हेड लाइट सा सूरज, गार्ड की रोशनी
सा शुक्र तारा, दिये से, बल्ब से तारे, पैट्रोमैक्स
सा सूरज, बैलगाड़ी की लालटेन सा शुक्र तारा।
मिनिस्टर का सूरज, एम० एल० ए० सा शुक्र तारा।"

आज का भोगवादी व्यक्ति माँ बनी नारी के प्रति क्या दृष्टिकोण रखता है ? नई उपमाओं से प्रस्तुत विम्ब में यह कितना स्पष्ट हो उठा है—

"अब हो तुम
पतझड़ की धरा-सी उजाड़
साँझ सी वीरान
बासी ककड़ी सी अलसाई,
अब तुम ढल चुकीं,
अब तुम चार-चार बच्चों की माँ हो।"

हिन्दी के कवियों ने प्राकृतिक दृश्य-चित्रण में नई उपमाओं के प्रयोग की बौद्धिक जागरूकता भी प्रकट की है :—

"अभी सीजन नहीं आया है।
रोमल भुजाओं से पर्वत दो ओर

जादूगर के डिब्बों जैसे फैले हुए घर
जिनसे पारावतों की जगह आदमी निकलते है
जड़ से फूले हुए आड़ू के वृक्ष
तथाकथित अवसाद युग के अपवाद से लगते
झील किसी कामिनी के चू पड़े नयन-सी
नावें जिसमें सपने सी बहती हैं।"

प्रतीक-विधान

इस काल की कविता में नये-नये प्रतीकों के प्रयोग की भी प्रवृत्ति बढ़ी है। कुछ कवियों ने नए प्रतीकों का प्रयोग एक फैशन से रूप में किया है। लेकिन यह स्थित धीरे-धीरे बदलती जा रही है। 'नदी के द्वीप', 'वर्षान्त" 'यह द्वीप अकेला' आदि अज्ञेय को इसी प्रकार की कविताएँ प्रतीक रूप में अप्रस्तुत अर्थ की व्यंजना करती हैं। धर्मवीर भारतीय का 'अन्धायुग' में प्रतीकों के सन्दर्भ में नए अर्थों की व्यंजना हुई है। गीतकारों में प्रायः सभी ने प्रतीकों का प्रयोग किया है। निम्न उदाहरण में जीवन के लिए नैतिक मान्यता के रूप में 'मडगार्ड' की आवश्यकता की प्रतीकात्मक व्यंजना की गई है :—

"बिना मडगार्ड का पहिया
जभी चलता
बड़ी कीचड़ उछलती है।
अगर हो शुष्क मौसम,
तो बहुत ही धूल उड़ती है।
सड़क पर चल रहे जो भी
उन्हें यह बहुत खलती है।
न उछले गन्दगी यह
इसलिए
मडगार्ड का होना जरूरी है
बिना मडगार्ड पहिये की—
बनावट भी अधूरी है।"

छन्द-विधान

आज की कविता मुक्त छन्द-प्रधान है। परम्परागत छन्द-योजना के साथ-साथ विशेष रूप से उर्दू की गजल और रुबाई की तर्ज पर एवं लोक-गीतों की धुनों पर नवीन छन्द-योजनाएँ की गईं। अतुकान्त मुक्त-छन्द के प्रयोग की प्रवृत्ति विशेष रूप से बढ़ रही है। अधिकांश नए कवि इसी प्रवृत्ति के हैं। अनेक नए कवियों ने आरम्भ में नए प्रयोगों के जोश में हर प्रकार की छन्द-योजना से विद्रोह कर नितांत स्वच्छन्द काव्य-सृजन की प्रवृत्ति अपनायी थी, परन्तु अब वे लयात्मक शब्द-संयोजन तथा नाद-सौन्दर्य के अनुशासन को स्वीकार करने लगे हैं।

भाषा

नई कविता में कवियों ने भाषा और शब्दों का नया संस्कार कर नये-नये अर्थों की प्रतिष्ठा कर अनेक नये रूपों की व्यंजना करने वाले शब्दों के निर्माण का सराहनीय कार्य किया है। उर्दू, अँग्रेजी तथा जन-भाषाओं के शब्दों को भी आवश्यकतानुसार ग्रहण कर हिन्दी को समृद्ध बनाया है। किसी-किसी कवि ने फैशन के रूप में ऐसे नए शब्दों का निर्माण किया है जिससे भाषा में दुरूहता आ गई है।

उपर्युक्त विवेचन से सहज ही में इस परिणाम पर पहुँचा जा सकता है कि वर्तमान काव्य-धारा छायावादी वायवीय अतीन्द्रिय, अमूर्त चित्र-कल्पना से निकल कर सहज जीवन-सम्पन्न और मूर्त काव्याभिव्यक्ति की ओर अग्रसर हुई है। वह मानव-जीवन के बहुत निकट आ गई है। यह उसकी पहली उपलब्धि है। वर्तमान हिन्दी-कविता की दूसरी उपलब्धि काव्य-कला के प्रति उसकी सजगता कही जा सकती है। आज का कवि वस्तु तथा कला दोनों के प्रति समान रूप से सचेत होता जा रहा है। वर्तमान हिन्दी कविता की इन उपलब्धियों से हीहिन्दी-काव्य की भावी संभावनाएँ स्पष्ट हो उठती हैं। हिन्दी कवि की आत्मा जो संशय, अनिश्चय, अनास्था और प्रयोग के बियावान में भटक गई थी, वह 'आत्मा को सृजनातुर वैदेही' अब निश्चय ही उस कवि-पुत्र को जन्मेगी जो मानव की पीड़ा को 'सस्वर' गायगा और जो समता, न्याय और शान्ति की स्थापना करेगा :—

अब आज आत्मा को सृजनातुर वैदेही
परित्यक्ता मन से क्षीण, विवश
संशय और अनिश्चय की अटवी में,
पा गई शरण बाल्मीकि-सरीखे
काव्य-वृत्त की छाया में ।
यह जनमेगी वे पुत्र जो कि उसकी पीड़ा सस्वर गाएँ ।
जो सहज सत्य के भटके नृप को जननी तक वापिस लाएँ ।।''

वर्तमान प्रबन्ध-काव्य और द्रौपदी

नरेन्द्र शर्मा कृत 'द्रौपदी' खण्ड-काव्य है । विषय-वस्तु की नवीनता और विशिष्टता की दृष्टि से यह वर्तमान काव्य-शृंखला की महत्वपूर्ण कड़ी है । स्व-तंत्रता के पश्चात् बीस से अधिक प्रबंध-काव्य लिखे जा चुके हैं, इनमें महाकाव्य और खण्डकाव्य दोनों ही हैं । 'साकेत-संत', उर्मिला, रावण, उर्वशी, महारथी कर्ण, मीरा आदि में विशिष्ट व्यक्ति को नायकत्व दिया गया है । 'मेधावी', रामराज्य, आर्यावर्त आदि में तत्कालीन जीवन और संस्कृति का चित्रण है । 'साकेत-सन्त','रामराज्य', 'उर्मिला', 'रावण' आदि रामायण-कालीन,'एकलव्य,' 'रश्मिरथी', 'जयभारत', 'महारथी कर्ण', 'अंगराज', 'कृष्णायन', 'कनुप्रिया', 'तारक-वध', 'द्रौपदी', 'उत्तरजय' आदि महाभारत कालीन काव्य हैं । 'उर्वशी', 'विष्णु-प्रिया','पार्वती', 'आर्यावर्त', 'वाणाम्बरी', 'मीरा', 'ऋतुम्बरा', 'वर्ध-मान', 'सारथी', आदि विविध कालों से सम्बन्धित हैं । 'जन नायक', 'मेधावी' और प्रेमचन्द आधुनिक कालीन काव्य हैं । उपर्युक्त समस्त काव्यों में निम्न-लिखित सामान्य विशेषताएँ मिलती हैं :—

१. प्रत्येक काव्य में प्रायः युद्ध और शान्ति तथा हिंसा और अहिंसा का चित्रण हुआ है ।

२. सभी में व्यक्ति और समाज के पारस्परिक सम्बन्ध की स्थापना की गई है ।

३. वर्ग-वैषम्य पर करारा प्रहार किया गया है ।

४. पौराणिक काव्यों में आधुनिक समस्याओं को उभारा गया है ।

५. नारी-पुरुष के काम सम्बन्धों का दार्शनिक विश्लेषण किया गया है ।

६. समस्त प्रबन्ध काव्यों पर गाँधीवाद, मार्क्सवाद और फ्राइडवाद का किसी न किसी रूप में अवश्य प्रभाव पड़ा।

७. इन काव्यों में उपेक्षित एवं निम्न वर्ग के व्यक्तियों को नायक बनाया गया।

८. महाकाव्य और खण्डकाव्य की प्राचीन शास्त्रीय मान्यताओं की उपेक्षा की गई।

९. समस्त काव्यों में राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय और लोक-चेतना के प्रसार का प्रयास मिलता है।

१०. भाषा, छन्द, अलंकार छन्द-विधान, शब्द-शक्ति आदि के प्रयोगों में नवीनता है।

'द्रौपदी' काव्य में द्रौपदी-स्वयंवर से लेकर महाभारत के युद्ध में पांडवों की विजय तक की कथा है। इस लघु-काव्य में कथा के विस्तार के लिये स्थान नहीं हो सकता था। अतः कवि ने समास-शैली में सारी कथा प्रस्तुत की है। कथा को पांच लघु सर्गों में विभाजित किया गया है। महाभारत के मुख्य पात्रों और मूल-भाव की इसमें रूपकात्मक व्याख्या की गई है। इसमें युधिष्ठिर गगन, भीम समीर, अर्जुन पावक, नकुल जल और सहदेव क्षिति के प्रतीक हैं। इसी प्रकार धृतराष्ट्र अन्धमानस और उनके पुत्र इच्छाओं के प्रतीक हैं। कर्ण का अर्थ अवैध भाव है। द्रौपदी को जीवनी शक्ति माना गया है, जो उक्त पाँचों तत्वों को एक करके प्रेरणा प्रदान करने वाली है। अन्य महत्वपूर्ण घटनाओं को संगति प्रदान करने के लिए भी विविध रूपक बाँधे गये हैं।

'द्रौपदी' पौराणिक गाथा की तात्विक व्याख्या है। इसमें कवि की चिन्तन-शक्ति का परिचय अवश्य मिलता है, परन्तु वह काव्य-क्षेत्र से बहुत कुछ दूर जा पड़ा है। यदि उसने 'पद्मावत' और 'कामायनी' की तरह रूपक बाँधा होता, तो उसे इतनी क्लिष्ट कल्पनाएँ न करनी पड़तीं। इस दृष्टि से 'द्रौपदी' रसमय काव्य न रहकर क्लिष्ट काव्य बन गया है।

'द्रौपदी' काव्य की कथा द्रौपदी के स्वयंवर से प्रारम्भ होती है।

"द्रौपदी जीवनी शक्ति,
सौंप दी गई पाँच तत्वों को।

या कहा नियति ने, पार्थ !
करो अब प्राप्त लुप्त सत्वों को।

द्रौपदी वह जीवनी शक्ति है, जिसने पाँचों पांडव रूपी पाँचों तत्त्वों को संश्लिष्ट और तेजोमय कर दिया। द्रौपदी को प्राप्त करके ही पांडव अपने लुप्त सत्वों को प्राप्त करते हैं। इससे पहले पांडव क्षत्रिय होकर भी ब्राह्मण-वेष में भिक्षाटन करते थे। द्रौपदी के संयोग से वे अपना पैतृक राज्य और स्वत्व पाते हैं। पांडव अपने संश्लिष्ट स्वरूप में शक्तिमान नर हैं, जिनको नारायणी शक्ति द्रौपदी का संयोग प्राप्त होता है। द्रौपदी यज्ञ-कुण्ड से उत्पन्न हुई थी और श्री कृष्ण को यज्ञ पुरुष नारायण कहा जाता है। इस प्रकार कृष्ण और द्रौपदी में भाई-बहन का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।

पांडव पृथा (कुन्ती) के पुत्र होने से पार्थ कहे जाते हैं। पृथा क्षात्र धर्म से युक्त पृथ्वी माता है। वह वीर पुत्रों को जन्म देती है। उसने कन्यावस्था में सूर्य का आवाहन किया। इससे कर्ण की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार कर्ण कुन्ती (पृथा) का अवैध या प्राकृत पुत्र है। वह अपने सगे भाइयों का शत्रु बनकर पराजित होता है।

पाँचों पाँडवों को पांच महातत्व मानने का उल्लेख निम्न प्रकार आया है—

प्रज्ञाचक्षु धृतराष्ट्र अपने पुत्र दुर्योधन से कहते हैं कि वह अनजान के समान कुमार्ग को भी सुमार्ग समझ रहा है और इसीलिए लोक के आधार स्वरूप पाँच महाभूतों के समान पांच पांडवों के तेज का अपहरण करने की इच्छा कर रहा है—

"दुर्योधन विजानीहि यत् त्वांपश्यामि पुत्रक।
उत्पथं मन्यसे मार्गमनभिज्ञ इवाध्वग:॥
पञ्चानां पाण्डु पुत्रानां यत् तेजः प्रजिहीर्षसि।
पञ्चानमिव भूतानां महतां लोक धारिणाम॥"

[उद्योग पर्व—यान-संधि-विषयक वार्ता]

विजय-रथ पर आरूढ़ पांडवों का वर्णन वैशपायन जनमेजय से करते हुए कहते हैं कि हे राजन् रथ में बैठे हुए और अलंकारों से सजे हुए वह पाँचों भाई पाँच महातत्वों के समान दिखाई दिये।

"ते पञ्च रथमास्थाय भ्रातरः स्मलंकृताः ।
भूतानीव स्मस्तानि राजन् ददृशिरे तदा ॥"

यज्ञ-कुण्ड से उत्पन्न जीवन-शक्ति द्रौपदी ने पाँच महातत्वों को संश्लिष्ट कर उनको उद्योगी नर बना दिया। इस प्रकार द्रौपदी पांडवों की प्रेरणा बनी और नारायण (श्री कृष्ण) नर अर्जुन के सारथी बने।

द्रौपदी में रूपक का विश्लेषण

द्रौपदी नारायणी जीवनी शक्ति है। इसने जिन पाँच महातत्त्वों को शक्तिमान नर का स्वरूप दिया, उनमें शीर्षस्थ आकाश तत्त्व सर्वोपरि है। युधिष्ठिर आकाश-तत्त्व के प्रतीक हैं। उनका दृष्टिकोण व्यापक है और वे संसार के राग-द्वेष से ऊपर हैं। वे दुनियाँ के मटमैले धरातल से ऊपर उठे हुए हैं। आकाश को मटमैले धरातल पर उतरने की इच्छा नहीं होती। आकाश का गुण शब्द-नाद है। अतः युधिष्ठिर की ध्वजा पर मृदंग का चिन्ह अंकित है, जो शब्द, नाद का प्रतीक है। शेष चार तत्त्वों—पवन, अग्नि, जल और थल का आश्रय आकाश ही है। अतः अर्जुन, भीम, नकुल और सहदेव चारों भाई युधिष्ठिर के अनुगामी हैं।

भीम को पवन का बल-विक्रम प्राप्त है। वे अग्नि रूपी अपने अनुज अर्जुन के सहायक हैं। वे अपने अनुज हनुमान की अर्जुन के रथ की ध्वजा पर विराजमान होने की प्रार्थना करते हैं। पवन-तत्त्व भीम में बहुत अधिक बल है। जो कहीं-कहीं पर विवेक को अतिक्रमण कर जाता है।

अर्जुन का एक नाम धनंजय है, जो अग्नि का प्रतीक है। अग्नि तत्त्व ही स्वर्ग और पृथ्वी को जोड़ने वाला है। अर्जुन दिव्यास्त्रों की प्राप्ति के लिए स्वर्ग गये थे। यज्ञ-पुरुष श्रीकृष्ण अर्जुन के सहकारी हैं। अश्वविद्या विशारद नकुल जल तत्त्व के प्रतीक सहदेव क्षिति-तत्त्व के समान ही शीलवान, संकोची और मितभाषी हैं। वे गौ-विद्या के विशारद हैं और भीम की ही भाँति दक्षिण दिशा के विजेत हैं।

अग्नि (अर्जुन), पवन (भीम), आकाश (युधिष्ठिर) उच्चस्तरीय तत्त्व हैं। जल-थल रूपी जुड़कर तत्त्व निम्न श्रेणी में आते हैं। माद्री ने अश्विनी कुमार का आवाहन किया था, जिससे नकुल सहदेव ने जन्म लिया।

पाँडवों को आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों ही प्रकार का बल प्राप्त है। द्रौपदी की प्रेरणा आधिभौतिक बल और श्रीकृष्ण का समर्थन आध्यात्मिक शक्ति है। यही कारण है कि केवल आधिभौतिक बल ससम्पन्न कौरव पांडवों से पराजित हुए।

अनयन धृतराष्ट्र अचेतन मानस के प्रतीक हैं। उनका अंधकूप के समान मन अपनी इच्छाओं से ही शासित है। दुर्योधन धृतराष्ट्र की अव्यक्त आकांक्षाओं का ही तो व्यक्त स्वरूप है। महाभारत के युद्ध को बढ़ाने में शकुनि का बड़ा हाथ था। शकुनि को महाभारत में द्वापर का अवतार कहा गया है। द्रौपदी भारतीय क्षात्र-तेज की जाज्वल्यमान ज्योति-शिखा है। वह एक असमान्य द्रिव्य-प्रतीक है। इस प्रकार कवि ने सारे कथानक और उसके पात्रों को प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया है। कथानक द्रौपदी स्वयंवर से लेकर महाभारत के युद्ध में पांडवों की विजय तक विस्तृत है। इस सारे कथानक को लेखक ने लघिमा शैली में व्यंजित किया

प्रथम सर्ग

कथावस्तु और उसका विश्लेषण

प्रथम सर्ग में कथानक की भाव-भूमि प्रस्तुत की गई है। युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव को क्रमशः आकाश, वायु, अग्नि, जल और पार्थिव-तत्त्व के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। द्रौपदी जो यज्ञजा है। वह इन पंज-भूतों में जीवन शक्ति का संचार करती है। वह इनको अपने स्नेह-सूत्र में बाँध लेती है। जब तक जीवनी-शक्ति द्रौपदी उनको नहीं मिली थी, वे अपने कर्त्तव्य, दायित्व से विमुख तथा चेतना-हीन थे। परन्तु जैसे ही उनको जीवन-शक्ति का स्पर्श प्राप्त हुआ, वैसे ही आकाश-तत्त्व युधिष्ठिर में स्पन्दन हुआ। पवन-तत्त्व भीम में वेग आया, अग्नि तत्त्व अर्जुन में तेज का उदय हुआ, सलिल-तत्त्व नकुल में रसमयता, और धरती तत्त्व सहदेव में प्राणों में सुगन्ध आ गई। धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन और दुःशासन आदि के पशुबल से यह भूमि शासित थी। पृथ्वी पर आयोजित इस सृष्टि-यज्ञ में उन पशुओं की यदि बलि नहीं दी जायगी, तब तक कल्याण संभव नहीं है। बिना धरती के आकाश की कल्पना हो नहीं सकती। पंचतत्त्वों के प्रतीक अर्जुन, भीम आदि का महत्त्व द्रौपदी रूपी जीवनी शक्ति द्वारा ही स्थापित हुआ।

व्याख्या

द्रौपदी जीवनी-शक्ति···· ···· ····सुप्त सत्वों को ॥१॥

शब्दार्थ—जीवनी-शक्ति = जीवन देने वाली शक्ति। द्रौपदी को कवि ने जीवन-दायिनी नारायणी शक्ति माना है। पाँच-तत्त्वों = युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव को पाँच भौतिक तत्त्वों का प्रतीक कहा गया है। सुप्त सत्वों को = जिस की शक्ति का नाश हो गया है।

सन्दर्भ—द्रौपदी के प्रथम छन्द में कवि द्रौपदी स्वयंवर से कथा को प्रारम्भ करता हुआ कहता है कि जीवनी-शक्ति द्रौपदी पाँचों पांडव रूपी भौतिक तत्त्वों को सौंप दी गई—

व्याख्या—द्रौपदी नारायणी शक्ति है। वह भौतिक पंच-तत्त्वों की जीवनी-शक्ति है। स्वयंवर में वह भौतिक पंच-तत्त्वों के प्रतीक पाँचों पांडवों को प्राप्त हुई। द्रौपदी का पाँचों पांडवों को प्राप्त होना ऐसा है, मानो नियति ने उनको जीवनी शक्ति सौंपते हुए कहा हो कि वे अब इससे प्रेरणा लेकर अपने सोये हुए सत्वों को प्राप्त करें। [जिस शक्ति का नाश हो गया है, अब द्रौपदी रूपी जीवन-शक्ति की प्रेरणा से पुनः प्राप्त करो।]

विशेष—१. 'उत्तर-जय' खण्ड-काव्य में भी कवि ने द्रौपदी को जीवनी-शक्ति मानते हुए कहा है—

"द्रुपद सुता जीवनी शक्ति है,
जिसका कभी हुआ अपमान।
उस अधर्म का धर्मराज ने,
लिया आज प्रतिशोध महान्॥"

२. **'द्रौपदी'**

द्रौपदी पांचाल-नरेश द्रुपद की पुत्री थी। द्रुपद और द्रोण सहपाठी थे। द्रुपद के राजा होने पर द्रोण उनके पास धन और सम्मान पाने की आशा लेकर गये। परन्तु वहाँ उनको अपमान मिला। द्रोण ने पाण्डवों की सहायता से द्रुपद को बन्दी बना लिया। बाद में उनको छोड़ दिया और उनका राज्य भी लौटा दिया। परन्तु यह घटना उनके हृदय में काँटे की तरह चुभ गई। उन्होंने अपना बदला लेने के लिये यज्ञ किया। इसी यज्ञ से द्रौपदी और धृष्टद्युम्न का जन्म हुआ। द्रौपदी अग्नि-शिखा के समान कृष्ण वर्ण थी। इसीलिये इसे कृष्णा भी कहा गया। स्वयंवर में द्रौपदी को अर्जुन ने विजय किया, वे उसे माँ के पास लाये और कहा कि वे भिक्षा लाये हैं। माँ ने कहा कि पाँचों भाई बाँटकर खाओ। इस प्रकार द्रौपदी पाँचों पाण्डवों की पत्नी बन गई। युधिष्ठिर उसके बड़े पति थे। जो जुए में अपने समस्त राज-पाट के साथ उसे भी हार गये। दुर्योधन की भरी सभा में दुःशासन ने उसका चीर-हरण करते हुए अपमानित करना चाहा। द्रौपदी की पुकार पर भगवान श्रीकृष्ण उसके वस्त्रों में समा गये। दुःशासन चीर खींचते हुए हार गया। चीर के ढेर लग गये। द्रौपदी होमकुमारी और श्रीकृष्ण यज्ञ-पुरुष हैं। अतः दोनों में भाई-बहन का भी सम्बन्ध है।

कौरवों का अत्याचार सहन करते-करते द्रौपदी के धैर्य की सीमा टूट गई। उसने युधिष्ठिर, अर्जुन और भीम को प्रोत्साहित किया। महाभारत के भीषण युद्ध में उसे अपने पाँच पुत्रों की भी बलि देनी पड़ी। द्रौपदी यद्यपि पाँचों पांडवों की पत्नी थी, परन्तु वह अर्जुन पर विशेष रूप से आसक्त थी। हमारे यहाँ जिन पाँच पवित्र कन्याओं के स्मरण से महापातकों का नाश होना कहा गया है, उन में द्रौपदी भी एक थी।

३. "पाँच तत्त्वों को"

आकाश, पवन, अग्नि, जल और थल पाँच भौतिक तत्त्व माने गये हैं। कवि ने इन पाँच-तत्त्वों का आरोप पाँचों पाँडवों में किया है। युधिष्ठिर आकाश तत्त्व, भीम वायु तत्त्व, अर्जुन अग्नि-तत्त्व, नकुल जल-तत्त्व और सहदेव भूमि-तत्त्व हैं। द्रौपदी जीवनी-शक्ति है, जिसने इन पंच-तत्त्वों को संश्लिष्ट कर उनको अपने स्वत्वों, दायित्वां और अधिकारों से परिचित कराया।

४. "पार्थ"

पांडवों को पार्थ कहा गया है। क्योंकि प्रथा (कुन्ती) उनकी माता है।

५. प्रतीक शैली।

पुरुषार्थ करो····   ····   ····   ····भयवाली ॥२॥

शब्दार्थ—पुरुषार्थ=शक्ति और पौरुष का परिचय देना। युगपुरुष=युग का निर्माण करने वाले महापुरुष। याज्ञसेनि=यज्ञ से उत्पन्न हुई। पांचाली=द्रौपदी। लाक्षागृह=लाख का महल। निशा भयवाली=भय एवं कष्टों से भरी हुई रात्रि। भस्म हो गई=नष्ट हो गई।

सन्दर्भ—लाक्षागृह की दुर्घटना से **पांडव**, द्रौपदी और माता कुन्ती सहित बच गये। द्रौपदी पाँचों पाँडवों को पुरुषार्थ का परिचय देने के लिए प्रोत्साहित करती हुई कहती है—

व्याख्या—होमजा द्रौपदी पाँचों पांडवों को प्रोत्साहित करती हुई कहती है कि तुम युग-सृष्टा पुरुष हो, अतः अपने दायित्व को पहचान कर अधिकारों के लिये पुरुषार्थ करो। इस लाक्षागृह में कौरवों ने हमें जलाकर भस्म करने का

प्रयास किया। परन्तु हम बच गये और इस घटना के साथ ही हमारे भय और कष्टों से भरी हुई रात्रि नष्ट हो गई।

विशेष—"पुरुषार्थ करो"—द्रौपदी जीवनी शक्ति बनकर पाँडवों को पुरुषार्थ करने के लिए प्रेरित करती है।

२. **"याज्ञसेनि पांचाली"**

द्रौपदी यज्ञकुण्ड मे उत्पन्न ऊर्ध्वगामिनी अग्नि-शिखा सी जीवनी शक्ति है। पांचाल नरेश द्रुपद ने द्रोण से अपमान का बदला लेने के लिए यज्ञ किया। इसी यज्ञ से द्रौपदी का जन्म हुआ। द्रौपदी का एक नाम कृष्णा भी है। वह पवित्र यज्ञ-शिखा है। जिसे आकाश की अनन्तता का वर्ण प्राप्त है। द्रौपदी का रंग श्याम माना गया है।

३. **"लाक्षागृह"**

दुर्योधन पांडवों को नष्ट करने के लिए कोई न कोई षड़यंत्र करता ही रहता था। दुर्योधन की प्रेरणा से धृतराष्ट्र ने पाँचों पाँडवों, कुन्ती और द्रौपदी को वारणावत नामक प्रदेश में भेज दिया। यहाँ पुरोचन से दुर्योधन ने लाक्षा-गृह का निर्माण कराया। दुर्योधन की योजना इस महल में आग लगाकर पांडवों को भस्म कर डालने की थी। परन्तु विदुर के सहयोग से पांडव लाक्षागृह से निकल गये और पुरोचन ही उनमें जलकर भस्म हो गया।

क्षत्रिय के हित···· ···· ···· ····**अपयश ।।३।।**

शब्दार्थ—भूमि-भोग = राज्य-सत्ता का भोग। विमुख = विरक्त।

सन्दर्भ—द्रौपदी के स्वयंवर से पहले पांडव क्षत्रिय होकर भी ब्राह्मण-वेष में भिक्षाटन करते थे। द्रौपदी उनकी जीवनी शक्ति के रूप में प्राप्त हुई। वह पाँचों पांडवों के रूप में पाँच महातत्त्वों को संश्लिष्ट करती है और उनको लुप्त स्वत्वों और अधिकारों को प्राप्त करने के लिए प्रेरित करती है—

व्याख्या—क्षत्रिय की सत्ता स्वतंत्र है। वह पराधीनता और परवशता की स्थित में नहीं रहता। क्षत्रिय के लिये पराधीनता और परवशता की स्थित

में रहना सबसे बड़ा अपराध है । जो क्षत्रिय होकर भूमि के भोग से विमुख होकर पलायन करता है, उसको इस संसार में अपयश मात्र ही मिलता है।

विशेष—१. यहाँ कवि ने क्षत्रियत्व की व्यावहारिक व्याख्या की है । क्षत्रिय वह है, जो परावशता और पराधीनता में नहीं रहता और राज-भोग से विमुख नहीं होता ।

२. पाडव द्रौपदी की प्राप्ति से पहले क्षत्रियत्व से पलायन कर भिक्षाटन करते थे । द्रौपदी ने जीविनी शक्ति के रूप में उनको प्रेरित किया और उन्होंने पैतृक राज्य को पुनः प्राप्त कर लिया ।

३. **अलंकार**—अनुप्रास ।

कृष्णा मधुकरी नहीं···· ···· ···· ····**तृष्णा** । ४।।

शब्दार्थ—कृष्णा=द्रौपदी—द्रौपदी की उत्पति यज्ञ से हुई थी । कृष्ण को यज्ञ पुरुष कहा जाता है । इस प्रकार कृष्ण और द्रौपदी में भाई-बहिन का अन्तरंग सम्बन्ध स्थापित होता । द्रौपदी अग्नि-शिखा-सी कृष्ण-वर्ण थी। इसलिए वह कृष्णा के भी रूप में प्रसिद्ध हुई । मधुकरी =एक प्रकार की भिक्षा वृत्ति, सन्यासी लोग पके अन्न की भिक्षा माँगते हैं । रहीम कवि ने मधूकरी शब्द का प्रयोग निम्न प्रकार किया है—

"दर दर में डोलत फिरें, माँगि मधूकरि खाहिं ।
यारो यारी छोड़िये, वे रहीम अब नाहि ।।"

यागानल=यज्ञ की अग्नि । "लपट है·······कृष्णा=द्रौपदी यज्ञ की अग्नि की लपट है । द्रौपदी यज्ञ की अग्नि-शिखा से उत्पन्न हुई थी । ऊतल-पातल=उथल पुथल । ऊतल-पातल की तृष्णा=द्रौपदी में क्रान्ति की तीव्र अभिलाषा है ।

संदर्भ—यहाँ कवि द्रौपदी को क्रान्ति की बलवती अभिलाषा के रूप में प्रस्तुत कर रहा है—

व्याख्या—द्रौपदी भीख में प्राप्त साधारण मधुकरी नहीं है । वह यज्ञानल से उत्पन्न ज्वाला है । वह युग-परिवर्तन का कारण है और क्रान्ति एवं उथल पुथल की तीव्र अभिलाषा लिये हुए है ।

विशेष—१. 'कृष्णा मधुकरी नहीं' द्रौपदी के स्वयंवर में अर्जुन विजयी हुए। वे द्रौपदी को अपने साथ माँ के पास लाये और कहा कि हम सुन्दर भिक्षा लाये हैं। माँ ने कहा कि पाँचों भाई बाँटकर खाओ। माता के वचन से द्रौपदी पांचों पांडवों की पत्नी हो गई, परन्तु द्रौपदी सामान्य भिक्षा नहीं थी। उसने पांडवों को प्रेरित कर कौरवों का विनाश कराया और कौरवों के अत्याचारों से पृथ्वी को मुक्त कर युग-परिवर्तन उपस्थित किया।

२. द्रौपदी का महत्व प्रतिपादित हुआ है। द्रौपदी को द्वापर की कृत्या भी कहा गया है। कृत्याओं की परम्परा में रेणुका को सतयुग की और सीता को त्रेता की कृत्या कहा गया है। शक्ति स्वरूपिणी द्रौपदी इस प्रकार रेणुका और सीता के समान है।

३. **अलंकार**—'कृष्णा' में 'याज्ञानल' और 'क्रान्ति की तृष्णा' का आरोप होने से **रूपक**।

भूतल पर···· ···· ····**कलेवर** ।।५।।

शब्दार्थ—भूतल = पृथ्वी। भिक्षुक = भिखारी। दाह-दीप्ति = तेजोमय आभा

सन्दर्भ—द्रौपदी की प्राप्ति से पूर्व पांडव ब्राह्मण-वेष में भिक्षाटन करके समय व्यतीत करते थे द्रौपदी उनको अधिकारों सत्त्वों की प्राप्ति के लिए प्रेरणामयी जीवनी शक्ति के समान मिली। वह पांडवों की विपन्न दशा को देखकर चिन्तन करती हुई कहती है—

व्याख्या—यह कितनी दयनीय स्थिति है कि जिसका जन्म राजा के यहाँ हो, वह पृथ्वी पर भिक्षुक बन कर रहे। अर्थात् हमारे पति पांडव जो राजवंश में उत्पन्न हुए वे कौरवों के अत्याचारों से प्रताड़ित होकर भिक्षुक की तरह जीवन व्यतीत कर रहे हैं। मेरी जीवनी शक्ति से इनका पंचतत्त्वों का दिव्य शरीर क्रान्ति की ज्वाला की दीप्ति से युक्त हो जाय।

विशेष—१. द्रौपदी नारायणी शक्ति है। पांडव अपने संश्लिष्ट स्वरूप में शक्तिमान नर हैं, जिन्हें द्रौपदी के रूप में नारायणी शक्ति का संयोग प्राप्त होता है।

२. **अलंकार**—(क) अनुप्रास।
(ख) 'देह- दीप्ति' में 'द' वर्ण की एक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास।

नारायण का नर ··· ···· ····कृष्णकुमारी ॥६॥

शब्दार्थ - सखा = मित्र। नारायण का नर सखा = भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन के सखा थे। होमकुमारी = यज्ञ से उत्पन्न कुमारी अर्थात् द्रौपदी। वरेण्या नर की = मनुष्य के द्वारा वरण की गई। कृष्णा = द्रौपदी।

व्याख्या—कृष्ण के परम सखा अर्जुन की द्रौपदी वरेण्या है। मत्स्य का वेधन कर अर्जुन ने द्रौपदी को वरण किया था। द्रौपदी याज्ञसैनि है, कृष्ण यज्ञ पुरुष होने के कारण कृष्ण द्रौपदी के भाई हैं।

विशेष—१. **नारायण···· ···· ····सखा।**

भगवान् श्रीकृष्ण विष्णु के अवतार अर्थात् नारायण हैं। अर्जुन मनुष्य है और कृष्ण उनके सखा हैं। वे महाभारत के युद्ध में अर्जुन के रथ के सारथी बने—

"देखु विचारि भक्त हित कारन।'
हाँकत हौं रथ तेरो॥"

२. कृष्ण को यज्ञ पुरुष कहा गया है। राजा द्रुपद ने जो यज्ञ किया, उससे द्रौपदी की उत्पत्ति हुई। इसलिए द्रौपदी को कृष्णा अर्थात् कृष्ण की बहन भी माना गया है।

३. **वरेण्या···· ···· ···· ····होमकुमारी।**

द्रौपदी के स्वयंवर में ऊपर चक्र में घूमती हुई मछली का प्रतिबिम्ब नीचे तेल के कड़ाह में देखकर भेदने की शर्त रखी गई थी। अर्जुन ने मत्स्य का भेदन कर द्रौपदी को वरण किया था।

पृथ्वी माता···· ···· ···· ····पाया ॥७॥

शब्दार्थ—पृथा = कुन्ती—पांडवों की माता। देववाहिनी = देवताओं का

आवाहन करने वाली। जाया=जननी। संश्लिष्ट=एकीकरण। पार्थ=अर्जुन, पांडव।

सन्दर्भ—यहाँ कवि ने पांडवों की माता द्रौपदी को पृथ्वीमाता के रूप में चित्रित किया है—

व्याख्या—अर्जुन की माता कुन्ती का दूसरा नाम पृथा है, मानो वही सर्वसहा पृथ्वी माता है। वह देवताओं का आवाहन कर पुत्रों को जन्म देने वाली है। जिस प्रकार पंच तत्व संश्लिष्ट होकर एक नव स्वरूप धारण करें, उसी प्रकार उसे मनुष्यों में रत्न स्वरूप पांडव पुत्र प्राप्त हुए।

विशेष—पांडवों को पार्थ कहा गया है, क्योंकि पृथा उसकी माता है। पृथा क्षात्र धर्मा पृथ्वी माता है। वरदान में उसे देव-वहन शक्ति प्राप्त है। वह देवों का आवाहन कर अपने वीर पुत्रों को जन्म देती है। वीर प्रसू पृथ्वी इसी प्रकार दिव्यांशों को धारण कर वीर पुत्रों को जन्म देती रही है। पृथा क्षत्राणी है।

पृथा ने सूर्य और इन्द्र जैसे देवताओं के आवाहन-द्वारा कर्ण और अर्जुन जैसे वीर पुत्र पाये। दुर्वासा की सेवा कर उसने देवताओं के आवाहन का वरदान पाया था। कन्यावस्था में उसका प्रथम समागम सूर्य से हुआ। सूर्य के अनिवार अमोघ अंश से कर्ण की उत्पत्ति हुई, पवन देव के आवाहन से भीम। इन्द्र के आवाहन से अर्जुन, आकाश देव के आवाहन से युधिष्ठिर, वरुण देव के आवाहन से नकुल और पृथ्वी देवता के आवाहन से सहदेव ने जन्म लिया। इस प्रकार सूर्य, इन्द्र, यम, और वायु आदि देवताओं के आवाहन से कुन्ती के छः पुत्र हुए।

नरश्रेष्ठ युधिष्ठिर···· ···· ···· ····आज्ञाकारी ॥८॥

शब्दार्थ—नरश्रेष्ठ=मनुष्यों में श्रेष्ठ। ज्येष्ठ=बड़े।

व्याख्या—पांडवों का प्रतीक रूप में वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि पाँचों पांडवों में युधिष्ठिर ज्येष्ठ नर हैं और उनके रूप में स्वयं आकाश-पुरुष ने शरीर धारण किया है। भीम पवन तत्त्व हैं, जो चेतन प्राण के प्रतीक और आकाश तत्व युधिष्ठिर के आज्ञाकारी हैं।

विशेष—युधिष्ठिर आकाश तत्त्व हैं। उनको पार्थिवता से संकोच होता है।

उनका व्यापक दृष्टिकोण, राग द्वेष रहित निर्विकल्प स्वभाव उनके श्रेष्ठ नर-रत्न होने का प्रतीक है।

२. भीम पवन के प्रतीक हैं, वे युधिष्ठिर के अनुचर हैं।

भूतल पर··· ···· ···· ····स्वर सुन ॥९॥

शब्दार्थ—भूतल=पृथ्वी। पावक=अग्नि।

व्याख्या—अर्जुन अग्नि के प्रतीक हैं। उनका धनंजय नाम अग्नि का पर्याय है। स्वर्ग में जो इन्द्र है, पृथ्वी पर वही अग्नि है। अग्नि का प्रतीक बनकर अर्जुन पृथ्वी और स्वर्ग को जोड़ने वाली कड़ी है। अर्जुन ने मत्स्य का लक्ष्य-वेधन किया। उनके वाण के स्वर को सुनकर द्रौपदी ने कहा कि मनुष्य का ओज और पराक्रम ही अग्नि है। भाव यह है कि इन्द्र का अग्नि-तत्त्व ही पृथ्वी पर अर्जुन के रूप में है।

हैं नकुल···· ···· ···· ····स्वयंवर ॥१०॥

शब्दार्थ—नकुल=चतुर्थ पांडव, जल रसवन्त माना गया है। अश्व जल का प्रतीक है। अश्व-विद्या-विशारद रसवन्त श्यामसुन्दर नकुल जल-तत्त्व के प्रतीक हैं। सहदेव = पंचम पांडव, सहदेव क्षिति-तत्व के समान ही शीलवन्त, संकोची और तभाषी हैं। वह गौ-विद्या विशारद है। भीम की भाँति वह दक्षिण दिशा के विजेता थी। कुन्ती का सहदेव पर विशेष प्रेम था। पाँडवों के वन-गमन पर कुन्ती माता ने द्रौपदी से भी सहदेव का विशेष ध्यान रखने के लिये कहा था। रूपान्तर=रूप में परिवर्तन।

व्याख्या—नकुल जल-तत्व और सहदेव पृथ्वी तत्त्व के रूपान्तर अर्थात् प्रतीक है। इस प्रकार पाँच तत्वों के प्रतीक पांच पांडवों के साथ द्रौपदी का स्वयंवर हुआ था।

विशेष—युधिष्ठिर आकाश तत्व के रूप में, भीम प्राण-तत्त्व के रूप में, अर्जुन इन्द्र के अग्नि-तत्त्व, नकुल और सहदेव जलीय और भूमि तत्त्व हैं। इन्हीं पाँच तत्वों के साथ होमशिखा रूप द्रौपदी का स्वयंवर हुआ। इनके संयोग से जीवन विकास की दिशा में प्रवाहित हो उठा।

पृथ्वीपति का सुत····   ····क्रीड़ा ॥११॥

शब्दार्थ—पार्थिव = मरण-शील। मृत्तिका पात्र = मिट्टी का बर्तन मात्र। क्रीड़ा = खेल।

सन्दर्भ—यहाँ मनुष्य की मरण शीलता पर युधिष्ठिर के मन के संकल्प-विकल्प का वर्णन है।

व्याख्या—युधिष्ठिर के मन में तरह-तरह के संकल्प-विकल्प उत्पन्न हो रहे हैं कि वे पृथ्वीपति का पुत्र होने के कारण मनुज है अर्थात् मरणशील हैं। मनुष्य क्या है, मिट्टी का पात्र मात्र है। मृत्यु उसे मारकर मानों एक रहस्यमय खेल खेला करती है।

विशेष—युधिष्ठिर आकाश तत्व है। निम्न धरातल पर लेन-देन, अर्जुन विसर्जन, आकाश के दृष्टिकोण से खेल में हार-जीत के समान हैं। वे दुनिया के काम-काजी मटमैले धरातल पर उतरने की इच्छा नहीं करते। उनको पार्थिवता से संकोच होता है।

मानव की सत्ता···   ····   ···   ····अतिचारी ॥१२॥

शब्दार्थ—मानव की सत्ता = मानव का अस्तित्त्व। अर्थपति = धन आदि से संसार की समृद्धि। अविचारी = विचारों से शून्य। वासना, दास, = काम, क्रोध, मद-मोह, लोभ आदि के वशीभूत। अहमन्य = अहंकार करने वाला। अतिचारी = अत्याचारी।

सन्दर्भ—युधिष्ठिर मनुष्य की स्थिति और उसके अस्तित्व का चिन्तन करते हुए कह रहे हैं—

व्याख्या—इस संसार में मानव का नश्वर व्यक्तित्व महत्व हीन है। उसकी सत्ता व्यर्थ है। वह संसार की समृद्धि का स्वामी तो बन जाता है, किन्तु उसकी मनुष्यता दब जाती है और वह विवेक खोकर अविचारी बन जाता है। मनुष्य वासनाओं का दास, अहंकारी और अतिचारी बनकर अपना जीवन व्यर्थ ही नष्ट करता रहता है।

अलंकार—अनुप्रास।

जीवन क्या है····   ····   ···   ····दानव ॥१३॥

शब्दार्थ — दाव पर लगा=गोट बनाकर।

सन्दर्भ — यहाँ युधिष्ठिर अपने संकल्प-विकल्प में मनुष्य की अस्तित्व-हीन नश्वर गति का चिन्तन कर रहे हैं—

व्याख्या—-युधिष्ठिर सोचते हैं कि जीवन मानों एक खेल है और चतुरंगी मानव एक खिलौना मात्र है। कहीं ऐसा तो नहीं है कि देवता और दानव मानव को अपने-अपने दाँव पर लगाकर खेल खेला करते हैं और वह विवश होकर मिट्टीका खिलौना मात्र बना रह जाता है।

अलंकार—१. जीवन में खेल और मानव में खिलौना का आरोप होने से रूपक अलंकार।

२. अनुप्रास।

यों आत्मसात····   ····   ····क्षमता पाई ॥१४॥

शब्दार्थ—आत्मसात=हृदय और मन में धारण करना। भव-बोधि= सांसारिकता का ज्ञान।

व्याख्या—युधिष्ठिर ने चिन्तन करते हुए समझ लिया कि मानव-जीवन को कुछ भी सत्ता नहीं है। जीवन एक खेल है। मनुष्य उस खेल का खिलौना है। मनुष्य के इस व्यर्थ के अस्तित्व को आत्मसात कर युधिष्ठिर सांसारिकता से विरक्त हो जाते हैं। उनके चरणों में वह क्षमता और शक्ति आ जाती है कि भूतल के ऊपर टिके रह सकें।

विशेष—युधिष्ठिर आकाश-तत्व के प्रतीक हैं। निम्न धरातल पर लेन-देन, अर्जन-विसर्जन उनकी दृष्टि में खेल की हार जीत के समान है। युधिष्ठिर के व्यापक दृष्टिकोण, राग-द्वेष रहित निर्विकार स्वभाव, और द्युत के उनके व्यसन का यही रहस्य है। दुनियाँ के मटमैले और काम-काजी धरातल से वे ऊँचे उठे हुए हैं। उनको पार्थिवता से संकोच होता है।

मैं कालात्मज····   ····   ····   ····ऊपर ॥१५॥

शब्दार्थ—कालात्मज=महाकाल यमराज के पुत्र। नभ-तत्त्व=आकाश तत्त्व। भू पर=पृथ्वी के ऊपर।

व्याख्या—युधिष्ठिर चिन्तन करते हैं, तथा बारम्बार उनके मन में यह प्रश्न उठता है कि वे तो महाकाल यमराज के पुत्र हैं। वे आकाश-तत्त्व होकर भला पृथ्वी पर क्यों आये। युधिष्ठिर आकाश की ओर दृष्टि किये हुए इस प्रकार चिन्तन में डूबे हुए थे।

निश्चेष्ट···· ···· ···· ···अव्यवहारी ॥१६॥

शब्दार्थ—निश्चेष्ट=चेष्टाओं से रहित, स्थिर। अविकारी=समस्त विकारों से रहित। कामार्थ भाव से मुक्त=काम और अर्थ की तृष्णाओं से युक्त। अव्यवहारी=अव्यवहारिक।

व्याख्या—आकाश तत्त्व युधिष्ठिर पृथ्वी के मटमैले और यथार्थ धरातल से ऊपर उठे हुए हैं। वे विकारों से रहित होकर निश्चेष्ट बने हुए आकाश की ओर देख रहे हैं। वे अविकारी हैं, तथा काम और अर्थ की तृष्णाओं से सर्वथा मुक्त हैं। उनमें केवल धर्म की तृष्णा है। वे विवेकी हैं, परन्तु संसारी नहीं हैं। इस प्रकार वे अव्यवहारिक हैं।

विशेष—युधिष्ठिर की उर्ध्वमुखी आदर्श प्रवृत्ति का चित्रण हुआ है।

निर्लिप्त अनीह···· ···· ····कृष्णा रानी ॥१७॥

शब्दार्थ—निर्लिप्त=विषयों आदि से अलग रहने वाला। अनीह=निस्पृह, इच्छा रहित। अकाम=कामनाओं से रहित। नभ स=आकाश तत्त्व निर्लिप्त, अनीह, अकाम आदि युधिष्ठिर के विशेषण हैं।

व्याख्या—युधिष्ठिर जो विषय, भोगों एवं भौतिक इच्छाओं से अलग रहने वाले अनीह, अकाम, सत्य-गुण-सम्पन्न आकाश तत्त्व थे, उनके चरणों में आकर्षण शक्ति रूपी कृष्णा रानी (द्रौपदी) झुक गई।

आकाश अवतरण करें···· ···· ····कृष्णा का ॥१८॥

शब्दार्थ—अवतरण करे=पृथ्वी पर उतरे। संचरण न हो तृष्णा=तृष्णा जागृत न हो। आत्मबल आकर्षण कृष्णा का=द्रौपदी जीवनी शक्ति है।

सन्दर्भ—यहाँ द्रौपदी को कवि ने युधिष्ठिर के लिए जीवनी शक्ति के रूप में चित्रत किया है—

व्याख्या—कृष्णा द्रौपदी जीवनी-शक्ति स्वरूपा हैं। युधिष्ठिर जो आकाश

तत्त्व थे अर्थात् जिनकी प्रकृति उर्ध्वमुखी थी और जो पृथ्वी के मटमैले धरातल से उठे हुए थे। उन आकाश-तत्त्व रूप युधिष्ठिर से द्रौपदी का मिलन इस प्रकार हुआ, मानों उनको जीवनी-शक्ति प्राप्त हो गई है। यद्यपि उर्द्ध्वमुखी आकाश तत्त्व में तृष्णा का संचरण न हुआ, परन्तु उससे कृष्णा का आत्मबल रूप आकर्षण प्रमाणित हो गया। ऐसा लगता है मानों आकाश ने पृथ्वी का चुम्बन लिया है।

प्राणों ने पाया ··· ···· ····पाया ॥१६॥

शब्दार्थ—प्राणों ने पाया वेग = प्राण-तत्व रूप भीम में वेग का संचार हुआ। 'अग्नि' तेज उदित हो आया'=अग्नि रूप अर्जुन में तेज और शक्ति का प्रसार हुआ। हो गया सलिल रसवन्त=नकुल रूप जल-तत्त्व में रसमयता आ गई। समस्थल=पृथ्वी तत्त्व रूप नकुल। समस्थल ने सुगन्ध को पाया= सहदेव रूप पृथ्वी तत्त्व में सुगन्ध फैलने लगी।

सन्दर्भ—इस छन्द में कवि स्पष्ट करता है कि पाँचों प्रकृति-तत्त्व कृष्णा रूपी जीवनी शक्ति को पाकर ही अपने विभिन्न रूपों में प्राणवान् हो उठे—

व्याख्या—कृष्णा का संगम पाकर आकाश तत्त्व युधिष्ठिर ने अपना स्वरूप सँवारा, उनमें आत्मबल आ गया। इस आकर्षण रूप आत्मबल की प्रेरणा से प्राण-तत्त्व रूप भीम में वेग का संचार हुआ। अग्निरूप अर्जुन में तेज और शक्ति का संचार हो गया। नकुल रूप जल-तत्त्व में रसमयता आ गई और सहदेव रूपी पृथ्वी तत्व में सुगन्धि फैलने लगी। इस प्रकार कृष्णा ने जीवनी-शक्ति बनकर पाँचों में जीवन और शक्ति का संचार कर दिया।

विशेष—प्रतीक शैली।

स्वागत है···· ···· ····भारत ॥२०॥

शब्दार्थ—आगत=आई हुई। व्याहली = व्याही हुई, नववधू।

व्याख्या—द्रौपदी को पाकर पांडवों में जीवनी शक्ति का संचार हो गया। वे बारम्बार उससे कहते हैं कि हे आगत देवि तुम्हारा बारम्बार स्वागत और अभिनन्दन है।

आनन्द पुलक···· ···· ····कल्याणी ॥२१॥

शदार्थ—आह्लाद=अत्यधिक प्रसन्नता।

सन्दर्भ—द्रौपदी पांडवों को जीवनी शक्ति के रूप में मिली। उसे प्राप्त करने पर पाडवों में जिस प्रेरणा और आह्लाद का संचार हुआ, उसका वर्णन कवि यहाँ कर रहा है—

व्याख्या—द्रौपदी पंच-तत्व रूप युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव को जीवनी शक्ति के रूप में प्राप्त हुई। वह उनके लिए कल्याणमयी प्रेरणा शक्ति है। उसको पाकर पंचतत्व रूप पांडवों का शरीर, मन और वाणी आनन्द, पुलक, आह्लाद और दिव्य उन्माद से भर गई।

योगेश्वर की····　　····　　····　　····कृष्णा ॥२२॥

शदार्थ—योगेश्वर=योगिराज श्री कृष्ण। योगिनी-शक्ति=महामाया दुर्गा की शक्ति से सम्पन्न। कर्म की तृष्णा=कर्म की प्यास लिये हुए।

सन्दर्भ—यहाँ कवि द्रौपदी का वर्णन जीवनी शक्ति के रूप में करता हुआ कहता है—

व्याख्या—द्रौपदी (कृष्णा) योगिराज श्री कृष्ण की बहन है। वह महामाया दुर्गा की शक्ति से सम्पन्न है और कर्म की प्रेरणा लिये हुए है। वह पंचाग्नि शक्ति का साकार रूप है और आकाश का पृथ्वी पर अवतरण करने वाली है। अर्थात् पांडव जो अपने अधिकार और अस्तित्व को भूलकर भिक्षाटन करते फिरते थे, उनमें कर्म की प्रेरणा भरने वाली है।

विशेष—१. "योगेश्वर की वह बहन"—कृष्ण को यज्ञ पुरुष कहा गया है और द्रौपदी की उत्पत्ति राजा द्रुपद द्वारा किये गये यज्ञ से हुई थी, अतः दोनों में भाई-बहन का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।

२. योगिनी शक्ति

द्रौपदी को द्वापर की कृत्या भी कहा गया है। कृत्याओं की परम्परा में रेणुका को सतयुग की और सीता को त्रेता की कृत्या कहा गया है। इस प्रकार शक्ति स्वरूपिणी द्रौपदी योगिनी शक्ति है।

आकर्षण की····　　····　　····　　····रेखा ॥२३॥

शब्दार्थ—अकर्षण की अति शक्ति=द्रौपदी रूपी आकर्षण की तीव्र शक्ति।

ओज आकाश पुरुश==ओजपूर्ण आकाश-पुरुष युधिष्ठिर। किरण-सोपान==किरण की सीढ़ियाँ। दिव्य अ तरण-सरण की रेखा==मौन युधिष्ठिर के रूप में दिव्य अकाश-तत्व पृथ्वी पर उतर आया।

सन्दर्भ—इस छन्द में कवि ने वर्णन किया है कि जीवनी शक्ति स्वरूपा द्रौपदी को पाकर उर्ध्वगामी युधिष्ठिर पृथ्वी पर आ गये।

व्याख्या—द्रौपदी रूपी आकर्षण तीव्र शक्ति को देखकर ओजमय आकाश पुरुष युधिष्ठिर के हृदय में कामना की लहरें उठने लगीं वे पृथ्वी के धरातल से ऊँचे उठे हुए उर्ध्व चिन्तन में निमग्न रहते थे। उनको पृथ्वी के धरातल पर लाने के लिए द्रौपदी किरणों का सोपान बन गई, जिसके सहारे दिव्य युधिष्ठिर पृथ्वी पर उतर आये अर्थात् अपने स्वत्वों और अधिकारों को पाने की ओर उन्मुख हुए।

विशेष—१. द्रौपदी पांडवों को जीवनी शक्ति के रूप में प्राप्त हुई। द्रौपदी-स्वयंवर से पुर्व पांडव ब्राह्मण-वेश में भिक्षाटन करते फिरते थे। द्रौपदी के संयोग से स्वधर्म और पैतृक राज्य को पुनः प्राप्त कर लेते हैं।

२. 'कामायनी' में श्रृद्धा से मिलन के पुर्व मनु की यही दशा थी, वे निरुपाय बनकर जीवन का दाँव हर बैठे थे। श्रृद्धा ने जीवनी-शक्ति बनकर उनको सन्देश दिया था—

"डरो मत अरे अमृत-सन्तान,
अग्रसर है मंगलमय बृद्धि।
पूर्ण आकर्षण जीवन-केन्द्र,
खिचीं आवेगी, सकल समृद्धि॥"

"विश्व की दुर्बलता जय बने,
पराजय का बढ़ता व्यापार।
हँसता रहे उसे सविलास,
शक्ति का क्रीड़ामय संचार॥

शक्ति के विद्युत-कण जो व्यस्त,
विफल बिखरे हैं, हो निरुपाय।
समन्वय उसका करे समस्त,
विजयिनी मानवता हो जाय॥"

फूला न समाया····   ····   ····वियोगी ॥२४-२५॥

शब्दार्थ—फुला न समाया=अत्यन्त उल्लास और प्रसन्नता से भर गया। पुरुष=आकाश पुरुष युधिष्ठिर। शक्ति-चितवन=द्रौपदी रूपी जीवनी-शक्ति की चितवन। प्रकृति हूँ=प्रकृति सुन्दरी हूँ। भूपाल=पृथ्वी का पालन करने वाले, राजा। धारणा शक्ति=धारण करने वाली शक्ति। ध्रुवा=अटल, दृढ़। धृति =धैर्य। यज्ञ=धर्म-यज्ञ, न्याय और रक्षा के लिए किया गया युद्ध धर्म-युद्ध है। धरा=पृथ्वी। आकाश=युधिष्ठिर। धरा=शक्ति रूपा द्रौपदी। सत्क्रिया= द्रौपदी। विचार=युधिष्ठिर। वियोग=पृथक।

सन्दर्भ—इस छन्द में कवि वर्णन करता है कि द्रौपदी को पाकर युधिष्ठिर में पूर्णता आ गई। वे पृथ्वी के यथार्थ धरातल पर आ गये। युधिष्ठिर आकाश पुरुष और द्रौपदी शक्ति, द्रौपदी सत्किया और युधिष्ठिर विचार है। दोनों का समन्वय ही शक्ति का वाहक है—

व्याख्या—आकर्षण की इस अति शक्ति को देखकर आकाश पुरुष युधिष्ठिर प्रसन्नता और आह्लाद में फूले न समाये। उनको द्रौपदी जीवनी-शक्ति के समान प्राप्त हुई। द्रौपदी रूपी शक्ति का चितवन मानों यह कह उठा कि वह तो प्रकृति-सुन्दरी है, धारण करने वाली धैर्यशीलनी एक परम शक्ति है। युधिष्ठिर भूमि का पालन करने वाले और धर्म का पालन करने वाले राजा हैं।

उस प्रकृति स्वरूपा जोवनी शक्ति द्रौपदी ने कहा कि यह पृथ्वी धर्म और न्याय के स्थान पर पशु बल पर शासित हो रही है, अर्थात् कौरवों का शासन पशु-बल का शासन है। धर्म युद्ध में पशुबल को बलि देकर नष्ट करना होगा। आकाश रूपी युधिष्ठिर और पृथ्वी रूपी द्रौपदी के समन्वय के बिना सत्क्रिया रूपी द्रौपदी और विचार रूपी युधिष्ठिर वियुक्त ही रहेंगे।

विशेष—१. अलंकार **रूपक**।

२. 'धारणाशक्ति ध्रुवा में **छेकानुप्रास**।

३. प्रतीकात्मकता

४. युधिष्ठिर ज्ञान और द्रौपदी सत्क्रिया है। दोनों के समन्वय के बिना मन की इच्छा पूरी नहीं हो सकती—

"ज्ञान दूर कुछ, क्रिया भिन्न है,
इच्छा क्यों पूरी हो मन की।
एक दूसरे से न मिल सके,
यह विडम्बना है जीवन की ॥"

—कामायनी

५. यहाँ **कवि ने स्पष्ट** किया है कि बिना धरती के आकाश की कल्पना नहीं हो सकती और बिना सत्क्रियाके विचार मात्र का कोई महत्व नहीं है।

३. युधिष्ठिर धर्म के प्रतीक हैं। धर्म निरसन्देह सर्वोपरि तत्व है, किन्तु शक्ति-प्रेरित सत्क्रिया के बिना धर्म भी दैन्य और निर्वासन भोगता है। धर्मराज का मार्ग शक्ति के बिना सार्थक नहीं हो सकता था, इसलिए धर्मराज के लिए द्रौपदी का बड़ा महत्व है।

आदर्श अवतरण करे····   ····   ····बस का ॥२६॥

शब्दार्थ—आदर्श अवतरण करे=आदर्श पृथ्वी के धरातल पर आये। बने भाव मानस का=ऊर्ध्वगामी भाव छोड़कर पृथ्वी के यथार्थ मानव के भाव को ग्रहण करे।

व्याख्या—द्रौपदी जीवनी शक्ति के रूप में धर्मराज युधिष्ठिर को यथार्थ की भूमि पर अवतरण करके अधिकारों और स्वत्वों को पाने के लिए प्रेरित करती हैं। वह कहती है कि पृथ्वी के धरातल से से **दूर आकाशी आदर्श व्यर्थ** है। उसे पृथ्वी पर अवतरण करके पृथ्वी की वास्तविकता ग्रहण करनी होगी। अभी आकाशी आदर्श स्वीकार नहीं हो सफता। कौरवों के रूप में जो पशुता और अत्याचार व्याप्त हो रहा है, उसका दूर करना सूक्ष्म के वश की बात नहीं है।

विशेष—१. युधिष्ठिर को पार्थिवता से संकोच था। वे सोचते थे कि आकाश का व्यापक प्रसार धरातल पर कहाँ। दुनियाँ के मटमैले यथार्थ धरातल पर अवतरण की इच्छा आकाश-तत्व युधिष्ठिर को नहीं थी।

संकोच····   ····   ····न खोले ॥२७॥

शब्दार्थ—अम्बर=आकाश, युधिष्ठिर से तात्पर्य है। घन्नाद=युद्ध का

व्याख्या—द्रौपदी के वचनों को सुनकर युधिष्ठिर ने कहा कि मुझे पृथ्वी के मटमैले धरातल पर आने में संकोच है। क्योंकि आकाश का व्यापक प्रसार धरातल पर कहाँ ? इसी समय युद्ध का भीषण गर्जन-तर्जन सुनाई दिया, परन्तु आकाष-तत्व युधिष्ठिर ने अपने नेत्र न खोले।

विशेष—१. कथा लाघव और समास-शैली से कवि अचानक महाभारत की युद्ध-भूमि में आ जाता है और आगे के छन्द में कर्ण भीषण युद्ध करता हुआ दिखाई पड़ता है।

२. उस आकाश-तत्व युधिष्ठिर को युद्ध के प्रति प्रेरित करना सहज न था। आज भी सदाचारी और सात्विक व्यक्ति शक्ति-प्रेरित उद्योग से बचने का ही प्रयत्न करते हैं। युधिष्ठिर के समान आज भी उर्ध्वचेता व्यक्ति इस दुनिया के मटमैले धरातल से बचकर चलते हैं। तभी तो द्रौपदी के प्रेरित करने पर तथा युद्ध का भीषण 'घन्नाद' सुनकर भी युधिष्ठिर नेत्र नहीं खोलते।

संघर्ष कर रहा···· ···· ····धुन का ॥२८॥

शब्दार्थ—पृथ्वी=पृथा, कुन्ती। अवैध=समाज की मर्यादा की दृष्टि से जो मान्य न हो। कर्ण की उत्पत्ति कुन्ती द्वारा सूर्य देव के आवाहन से कुमारी अवस्था में हुई थी, अत: कर्ण कुन्ती की अवैध सन्तान थी।

व्याख्या—देखो कर्ण से अर्जुन का युद्ध छिड़ा हुआ है। कर्ण युद्ध में भीषण संघर्ष कर रहा। वह कुन्ती का अवैध पुत्र है, परन्तु अपनी धुनि का पक्का है।

विशेष—१. **"पृथ्वी का पुत्र अवैध।"**

कुँवारेपन में कुन्ती ने सूर्य देवता का आवाहन किया। उनके संयोग से कर्ण की उत्पत्ति हुई। लोक-निन्दा के भय से कुन्ती ने उसे लहरों में बहा दिया। वह धृतराष्ट्र के सारथि अधिरथ को मिला। उसने उसका पुत्रवत् पालन किया। बड़े होने पर दुर्योधन से उसकी प्रगाढ़ मित्रता हो गई। दुर्योधन ने उसे अंग देश (वर्तमान भागलपुर) का शासक बना दिया।

कर्ण दान और वीरता के लिए बहुत प्रसिद्ध है। एक बार इन्द्र ने ब्राह्मण के वेश में अर्जुन की सहायता हेतु उसके कवच और कुण्डल जैसे दिव्य अस्त्र प्राप्त कर लिले।

अवैध सन्तान होने के कारण कर्ण, द्रोणाचार्य आदि से शिक्षा न प्राप्त कर सका। वह ब्राह्मण कुमार का रूप धारण कर परशुराम से युद्ध-कला की शिक्षा प्राप्त करने लगा। एक दिन परशुराम कर्ण की जंघा पर शीश रखकर सो रहे थे। इन्द्र कीट का का रूप धारण कर कर्ण की जंघा को काटने लगे। क्षत्रिय होने के कारण इस पीड़ा को कर्ण ने सहन कर लिया। कर्ण की जंघा से निकली हुई रक्त-धारा से परशुराम जग गये। कर्ण को ब्राह्मण कुमार जानकर उन्होंने शाप दिया। कर्ण का सम्पूर्ण जीवन अपमान, अभिशाय, दान और युद्ध में ही व्यतीत हुआ।

कर्ण महावीर थे। द्रोण और भीष्म के पश्चात् वे ही कौरव-सेना के सेनापति बने। वे तीन दिन तक पांडव सेना का भीषण संहार करते रहे। परन्तु तीसरे दिन अभिशाप वश उनके रथ का पहिया पृथ्वी में धस गया और अर्जुन के द्वारा वे मारे गये।

पृथ्वी का पुत्र···· ···· ····हेटा ॥२९॥

शब्दार्थ—कानीन=क्वारी कन्या से उत्पन्न। वैध=जो कानून और सामाजिक मर्यादा के अनुसार मान्य हो। हेटा=हीन।

व्याख्या—कर्ण क्वारी कन्या कुन्ती से उत्पन्न अवैध पुत्र है। कुँवारेपन में कुन्ती ने सूर्य का आवाहन किया। उनके संयोग से कर्ण की उत्पत्ति हुई। अतः वह सूर्य का पुत्र है। विश्व वैध को ही स्वीकार करता है। कर्ण वैध नहीं है। इसलिए उस भाग्य हीन को विश्व ने स्वीकार नहीं किया और उसकी माता कुन्ती ने लोक-निन्दा के कारण उसे जल-धारा में प्रवाहित कर दिया।

अलंकार—अनुप्रास।

है जो अवैध···· ···· ····जागा ॥३०॥

शब्दार्थ—अवैध — जो वैध नहीं है, अर्थात् जो समाज के नियम और मर्यादा के अनुसार मान्य नहीं है। त्याज्य=त्याग देने योग्य। धार=नदी की धारा। शयित=सुलाकर।

व्याख्या—संसार में जो समाज के नियमों और मर्यादा के अनुसार मान्य नहीं है, वह त्याज्य है। कर्ण भी कुन्ती का अवैध पुत्र था। अतः उसने सूर्य से जन्में इस इस पुत्र को त्याग दिया। उसे उसने नदी की धारा के ऊपर सुला

दिया। कर्ण कुन्ती के द्वारा नदी की धारा पर ऐसा सुलाया गया कि उसका कभी भी सोया हुआ भाग्य न जगा। वह सदैव अपमानित और लांछित ही रहा।

अलंकार—'शयित-शयित' में **यमक**।

पाया गुरुवर से····   ····   ····खिला था ।।३१।।

शब्दार्थ—आप्त=ऋषि आदि सम्मानित व्यक्ति। कृष्णा=द्रौपदी। **कर्दम**=कीचड़।

व्याख्या—अवैध सन्तान होने के कारण द्रोण आदि विद्वान कर्ण को शिक्षा देने को तैयार न हुए। तब उसने ब्राह्मण कुमार का वेष धारण कर महर्षि परशुराम से युद्ध-कला की शिक्षा प्राप्त की। परशुराम को जब यह विदित हुआ कि कर्ण क्षत्रिय कुमार है, तब उन्होंने उसे अवसर पर सीखी युद्ध-कला भूल जाने और जीवन भर अपमान मिलने का शाप दिया। महर्षि के इस शाप के कारण कर्ण जीवन भर अपमानित रहा। वह ऐसा कमल है जो कीचड़ में खिला हुआ है। कुँवारी कुन्ती से जन्म लेने के कारण वह अवैध पुत्र कहलाया और उसकी स्थिति कीचड़ में उत्पन्न होने के समान हो गयी। द्रौपदी के स्वयंवर में उसने मत्स्य-भेदन के लिए धनुष उठा लिया था। परन्तु द्रौपदी ने घोषणा की कि वह अवैध पुत्र कर्ण को वरण न करेगी। इस प्रकार द्रौपदी के द्वारा भी कर्ण अपमानित हुआ था।

जो नहीं धर्म····   ····   ····अर्जुन ।।३२।।

शब्दार्थ—दान-दाक्षिण्य=दान-दाक्षिणा। जेता=विजयी।

सन्दर्भ—यहाँ कवि का कथन है कि विजय सदैव धर्म की होती है। धर्म का साथ न होने पर दान-दक्षिणा आदि समस्त सद्गुण व्यर्थ होते हैं—

व्याख्या—कर्ण समाज की मर्यादा के विरुद्ध अवैध सन्तान है, साथ ही अन्याय के प्रतीक कौरवों का सहयोगी है। यद्यपि वह सद्गुणों से अलंकृत, वीर और महा दानी है। परन्तु जो धर्म के साथ नहीं होता, दान-दक्षिणा और उसके समस्त अच्छे गुण व्यर्थ हो जाते हैं। अधर्म रूपी कौरवों का साथी होने के कारण कर्ण अवश्य हारेगा। अर्जुन विजयी होगा, क्योंकि वह हौमकुमारी द्रौपदी का जेता है और धर्म उसके साथ है।

स्वेच्छा से करती····   ····   ····   ····देवेच्छा ॥३३॥

शब्दार्थ—स्वेच्छा=अपनी इच्छा से। रूपसी=सुन्दरी।

व्याख्या—जीवनी-शक्ति रूपी रूपसी स्वेच्छा से ही किसी को वरण करती है। द्रौपदी मूर्त्तिमान देवेच्छा है। उसने कर्ण को अस्वीकार कर स्वेच्छा से अर्जुन को वरण किया है। अत: अर्जुन की विजय अवश्य ही होगी।

"जीवनी शक्ति का हरण····   ····   ····होकर" ॥३४॥

शब्दार्थ—जीवनी-शक्ति=द्रौपदी। हरण=वस्त्र हरण, लज्जा का हरण।

व्याख्या—कर्ण ने अधर्म का साथ दिया। उसने दु:शासन आदि को जीवनी शक्ति रूपी द्रौपदी की लज्जा के हरण करने में योग दिया था। अत: इस अधर्म के पथ पर चलकर उसकी विजय की इच्छा किस प्रकार पूरी हो सकती है। द्रौपदी के वस्त्र हरण अनीतिपूर्ण इच्छा थी। वह किस प्रकार पूर्ण हो सकती थी। कर्ण धर्म के मार्ग से विमुख हो चुका है, अत: उसकी पराजय निश्चित है। नियति की सजीव मूर्त्ति जिस अर्जुन के साथ है, उससे कर्ण अवश्य हारेगा।

दिव्यास्त्रों····   ····   ····   ····समर्थन ॥३५॥

शब्दार्थ—रविसुत=सूर्य का पुत्र कर्ण।

व्याख्या—कर्ण जो अपने दिव्यास्त्रों को अभिमान के साथ प्रदर्शन कर रहा है, वह सब व्यर्थ जायगा। क्योंकि अर्जुन की तरह उसे दिव्य समर्थनन प्राप्त नहीं है। अत: वह अर्जुन से अवश्य हारेगा।

टंकार धनुष····   ····   ····   ···· छाए ॥३६॥

शब्दार्थ—टंकार=धनुष का शब्द। पार्थ=अर्जुन। विशिख=वाण। लक्ष्य पर आये=कर्ण को लक्ष्य बनाकर दौड़े। छाए रवि-सुत को घेर=सूर्य पुत्र कर्ण को अर्जुन के वाणों से चारों ओर से मण्डल बनाकर घेर लिया। सुरधनु=इन्द्रधनुष।

व्याख्या—कर्ण और अर्जुन का भीषण युद्ध चल रहा है। अर्जुन ने धनुष की टंकार करते हुए उस पर वाण चढाए और कर्ण पर अपने तीखे वाणों का लक्ष्य

संधान किया। वे वाण समूह सूर्य-पुत्र कर्ण के प्रभा-मण्डल के चारों ओर ऐसे छा गये, मानों सूर्य पर इन्द्र धनुषी आभा छा गई हो।

अलकार—उत्प्रेक्षा।

क्या सोच रहे हो···· ···· ···· ····**कोरी** ॥३७॥

शब्दार्थ—अचूक = न चूकने वाले।

व्याख्या—अर्जुन ने कर्ण को लक्ष्य बनाकर वाणों का समूह छोड़ा। उसने कर्ण को चारों ओर से घेर लिया। कर्ण ने भी वाण छोड़ने के लिए धनुष की डोरी कानों तक खींच ली। कवि उसको सम्बोधन धरता हुआ कहता है, कि हे कर्ण! तुम अपने धनुष की डोरी कानों तक खींच कर क्या सोच रहे हो। अर्जुन के तुम्हारे ऊपर छोड़े हुए वाण अचूक हैं। अब तुम विजय की कोरी कल्पना न करो।

श्री हीन हो गये···· ···· ···· ····**जी के** ॥३८॥

शब्दार्थ—श्रीहीन = तेज से हीन।

व्याख्या—अर्जुन के वार्णों ने कर्ण को चारों ओर से वेध दिया। कर्ण कान तक धनुष की डोरी खींचे हुए सोचते ही रह गये। उनकी श्री चली गई और कानों के सुवर्ण कुण्डल फीके पड़ गये। वे खून का सा घूँट पीकर रह गये। उनके हृदय में जो विजय के भाव थे, वे हृदय में ही घुटकर रह गये।

विशेष—'खून का घूँट' मुहावरे का सुन्दर काव्यात्मक प्रयोग हुआ है।

था कर्ण···· ···· ···· ···· ····**अँधेरा** ॥३९॥

शब्दार्थ—तेज का तनय = सूर्य का पुत्र। अनय = अन्याय, अधर्म। चेरा = दास, सेवक। अक्षय = कभी नाश न होने वाला।

व्याख्या—कर्ण परम तेजोमय सूर्य देवता का पुत्र था। परन्तु अनीति का दास बन गया। अर्थात् कौरव जो अन्याय, अनीति और अधर्म के प्रतीक थे, वह उसका साथी और सेवक बना। इस प्रकार वह भी अधर्म और अनीति के पथ पर चला। यही कारण है कि वह अक्षय प्रकाश का अंश होने पर भी उसे अज्ञान और अन्धकार ने आत्मसात कर लिया।

अस्ताचल····   ····   ····   ····   ····**जय में** ॥४०॥

शब्दार्थ—अस्ताचल=जहाँ सन्ध्या का सूर्य डूबता हुआ दिखाई पड़ता है। निलय=धर।

व्याख्या—सूर्य अस्ताचल को जाता हुआ ऐसा लग रहा था, मानों आहत सिंहपति सूर्य मीन के घर में प्रवेश कर रहा हो। इसी समय अर्जुन के द्वारा कर्ण का वध हुआ और द्रौपदी-पति पांडवों की विजय में कर्ण की कीर्ति खो गई।

विशेष १. **अलंकार**—उत्प्रेक्षा।

२. ज्योतिष के अनुसार सूर्य मीन राशि में प्रवेश करने पर ही राहु द्वारा ग्रसित होता है। वह पीला और आहत सा दिखाई देता है।

३. अस्ताचल गामी सूर्य को कवि ने कर्ण-वध की पृष्ठभूमि के रूप में प्रस्तुत किया है।

द्वितीय सर्ग

विषयवस्तु का विश्लेषण

प्रथम सर्ग परिचयात्मक है। पांडव निष्क्रिय और निराश्रय होकर ब्राह्मण वेश में भिक्षाटन करते फिरते थे। वे स्वयंवर में द्रौपदी को प्राप्त करते हैं। द्रौपदी जीवनी शक्ति की प्रतीक है। वह पंच तत्वों के प्रतीक पांडवों को संश्लिष्ट कर उन्हें शक्ति प्रदान करती है और कर्तव्य के पथ पर लाकर अधिकारों के लिए युद्ध के लिए प्रेरित करती है। प्रथम सर्ग में परिचय का अन्त करते-करते कवि कथा-शिल्प के लाघव से महाभारत के युद्ध तक आ जाता है। अर्जुन और कर्ण का भीषण युद्ध हो रहा है। कवि कर्ण का परिचय अवैध सन्तान के रूप में देता है। प्रथम सर्ग की समाप्ति अर्जुन द्वारा कर्ण की मृत्यु पर होती है—

"खो गई कर्ण की कीर्ति,
द्रौपदी-पति पांडव जय में।"

द्वितीय सर्ग का पहला छन्द पहले सर्ग के अन्त के सन्दर्भ में है, जो पिछली कथा से सम्बन्ध जोड़ देता है—

'हो गई कर्ण की हार,
विजय है, जहाँ यज्ञ की ज्वाला।
आर्जव कहलाया विजय,
पहन वर-माला पर जयमाला।।"

द्रौपदी से जीवन-शक्ति प्राप्त कर पांडव दानवी शक्तियों को परास्त और नष्ट करने लगे। द्रौपदी पांडवों के लिए जहाँ श्री-समृद्धि थी, वहाँ कौरवों के लिए विनाशक प्रचण्ड ज्वाला। धृतराष्ट्र सारी घटना सुनकर समझ गये कि भविष्य पांडवों के अनुकूल और उनके पुत्रों के प्रतिकुल है। उन्होंने सुयोधन को

पांडवों का भाग देने के लिए समझाया, परन्तु वह अपने दुराग्रह पर दृढ़ रहा। दुर्योधन धृतराष्ट्र के ही वासना-बीज का अंकुरित और विकसित बीज था। भीष्म पितामह ने पाण्डवों और कौरवों के संघर्ष को रोकना चाहा, परन्तु उनको सफलता नहीं मिली। वे दोनों के बीच में यातना भोगते रहे।

द्रौपदी राजमहल में धृतराष्ट्र से आशीर्वाद लेने आती है। उसकी रूप दीप्ति को देखकर दुर्योधन पर वज्राघात होता है। धृतराष्ट्र ऊपरी मन से द्रौपदी पर आशीष के रूप में गजमुक्ता की वर्षा करते हैं—

गज मुक्ता रहे बखेर,
बधू पर बार अम्बिकानन्दन।
मन में दुराव का भाव,
करों में केवल भाव-प्रदर्शन ।।"

हो गई कर्ण की हार" .... जयमाला ।।१।।

शब्दार्थ—यज्ञ की ज्वाला=यज्ञ से उत्पन्न कृष्णा, द्रौपदी। आर्जव=सरलता, सीधापन, व्यवहार की सरलता।

व्याख्या—अर्जुन से युद्ध में कर्ण पराजित हुआ और अर्जुन को विजय मिली। जहाँ यज्ञ की ज्वाला स्वरूप कृष्णा हो, वहाँ विजय क्यों न हो। सरलता ही विजय के नाम से पुकारी गई, अर्थात् पांडव जो सीधे, सच्चे और सरल व्यवहार के थे, उनको विजय मिली। पहले उन्होंने द्रौपदी के स्वयंबर में वरमाला प्राप्त की अर्थात् द्रौपदी प्राप्त की और फिर जीवनी-शक्ति द्रौपदी की प्रेरणा से विजय प्राप्त की।

विशेष—१. राजा द्रुपद के यज्ञ से द्रौपदी का जन्म हुआ था, इसीलिए इसे यज्ञ की ज्वाला कहा गया है।

२. **जयमाला**—स्वयंवर में मत्स्य को बेधन कर अर्जुन ने वर-माला प्राप्त की, फिर माता की आज्ञा से द्रौपदी पाँचों पांडवों की पत्नी बनी।

३. यहाँ पर यज्ञ की ज्वाला द्रौपदी का प्रतीक है।

मूर्धन्य युधिष्ठिर.... ....मन में जागृति ।।२।।

सन्दर्भ—यहाँ कवि कहता है, कि जीवनी-शक्ति द्रौपदी को प्राप्त कर

आकाश की तरह निर्मल एवं निर्विकार हृदय वाले युधिष्ठिर के हृदय में भी आकांक्षा जागृत हो गई ।

व्याख्या—युधिष्ठिर पाँचों पांडवों में आचार-विचार की दृष्टि से मूर्धन्य थे । वे सबों में बड़े थे । वे निर्मल आकाश की तरह विकार रहित और विरक्त थे, परन्तु जीवनी-शक्ति द्रौपदी का साथ पाकर उनके मन में प्रसुप्त आकांक्षाएँ जागृत हो गईं ।

अलंकार—प्रथम दो पंक्तियों में उदाहरण ।

छूकर अग्रज के जानु···· ···· ···· ····पाई ॥३॥

शब्दार्थ—अग्रज=पहले जन्मे हुए, बड़े । जानु=घुटने । जयी=विजयी आकाश पुरुष=युधिष्ठिर । आजानुबाहुता=जिसकी बाहें घुटनों तक पहुँचती हुई हों । यहाँ भाव यह है कि उर्ध्वगामी युधिष्ठिर के हृदय में भी विजय का समाचार सुनकर पौरुष जागृत हो गया ।

व्याख्या—कर्ण को विजय करके अर्जुन युधिष्ठिर के पास आये और उनके घुटनों को छूकर कर्ण पर अपनी विजय पाने की सारी कथा सुनायी । आकाश पुरुष युधिष्ठिर ने सारी कथा मनोयोग से सुनी और उनकी भी भुजाएँ घुटने तक लम्बी हो गईं अर्थात् अतुल शक्ति एवं पौरुष का संचार हो गया ।

विशेष—१. 'आजानुबाहुता पाई' लाक्षणिक प्रयोग है ।

२. **प्रतीकात्मकता**—युधिष्ठिर आकाश के प्रतीक हैं ।

प्राणों का शौर्य स्तम्भ···· ···· ···· ····मर जा ॥४॥

शब्दार्थ—प्राणी का शौर्य स्तम्भ=भीम मानों प्राणों की शूरता का दृ स्तम्भ ही था । वज्रांग=वज्र के समान कठोर शरीर वाला । व्योम= आकाश ।

सन्दर्भ—अर्जुन से कर्ण पर विजय की कथा सुनकर भीम में भी युद्धोत्स का संचार हो गया और उन्होंने गर्जना की—

व्याख्या—भीम, जो मानो प्राणों की शूरता के दृढ़ स्तम्भ ही थे, अ जिनका शरीर वज्र के समान कठोर था, उन्होंने आकाश में गर्जना क उन्होंने दुर्योधन को ललकारते हुए कहा कि अरे निर्लज्ज तू लाज से मर जा,

अलंकार—(१) उत्प्रेक्षा ।

(२) 'लाज से मर जा' मुहावरे का सुन्दर लाक्षणिक प्रयोग हुआ है ।

भोला विशुद्ध····   ····   ····   ····समाई ॥५॥

शब्दार्थ—भोला=भोले भाले । अबोध=सरल स्वभाव का । अनुचर= अनुगमन करने वाला, सेवक ।

व्याख्या—भीम में असीम बल विक्रम था । वे भोले-भाले और सरल स्वभाव के बन्धु थे । आज उनकी सारी शक्ति आकाश पुरुष युधिष्ठिर में अनुचर बनकर समा गई थी ।

दो चरण नकुल····   ····   ····   ····धरती ॥६॥

शब्दार्थ—अवतरण करती=पृथ्वी पर संचरित होती ।

व्याख्या—नकुल और सहदेव दोनों ही कोमल प्रकृति के वीर हैं । एक जल तत्व अर्थात् रसमय है और दूसरा धरती सा सहनशील है । परन्तु द्रौपदी रूपी जीवनी-शक्ति के पृथ्वी पर उतरने और उसका नकुल सहदेव से संयोग होने पर जल-थल अर्थात् नकुल-सहदेव में चेतना की लहरें उठने लगीं ।

विशेष—प्रतीकात्मकता ।

निर्मल जल श्यामल····   ····   ····   ····छाया ॥७॥

शब्दार्थ—व्योम=आकाश तत्व रूप युधिष्ठिर । बना व्योम की छाया= नकुल युधिष्ठिर के सहायक बने ।

व्याख्या—आकाश-पुरुष युधिष्ठिर जैसे निर्विकार वैरागी और तेजस्वी भावों से समाहित थे । नकुल के स्वच्छ हृदय सरोवर में उन आकाश-पुरुष युधिष्ठिर का तेज सहज ही प्रतिविम्बित हो उठा । पृथ्वी-सा स्थिर बुद्धि सहदेव ध्यान-मग्न हो गया ।

अलंकार—'पृथ्वी-सा ही स्थिर बुद्धि' में **उपमा** ।

हो गया खड़ा····   ····   ····   ····   ····कन्या ॥८॥

शब्दार्थ—पुरुषार्थ=पराक्रम । धन्या=धन्य हो गई । धरा=पृथ्वी । अग्नि की कन्या=द्रौपदी ।

व्याख्या—अर्जुन से कर्ण पर हुई विजय का समाचार सुनकर युधिष्ठिर में शक्ति का संचार हुआ। द्रौपदी की प्रेरणा से पांडव समग्र भाव से पुरुषार्थ के जीवन्त प्रतीक बनकर खड़े हो गये। यह पृथ्वी धर्म से सुरक्षित हो उठी और धन्य हो गई। अग्नि की कन्या रूपी द्रौपदी की प्रेरणा से सभी तत्व परस्पर संश्लिष्ट होकर शक्तिमान हो गये।

१. **अलंकार-रूपक** ।

२. **प्रतीकात्मकता** ।

ऋक् भीमसेन···· ···· ···· ···· ····धुरंधर ॥६॥

शब्दार्थ—ऋक=ऋगवेद। साम=सामवेद। अथर्व=अथर्व वेद।

सन्दर्भ—यहाँ कवि पांडवों में वेदों की सम्भावना करता हुआ कहता है—

व्याख्या—महा शक्तिशाली भीम ऋगवेद हैं और धनुर्विद्या में पारंगत अर्जुन सामवेद हैं, नकुल यजुर्वेद हैं और धैर्यशाली धुरन्धर वीर सहदेव अथर्व वेद हैं।

१. **अलंकार**—रूपक।

२. **प्रतीकात्मकता**।

राजर्षि युधिष्ठिर···· ···· ···· ····कराला ॥१०॥

शब्दार्थ—एल=आहुति, हवि। शशिप्रभा=चन्द्रमा की शीतल चाँदनी। बन्हि कराला=भीषण अग्नि।

सन्दर्भ और व्याख्या—पाँचों पांडव पुरुषार्थ प्रदर्शन के लिए उद्यत हो गये। पुरुषार्थ प्रदर्शन के इस महायज्ञ में युधिष्ठिर आहुति बने और द्रौपदी इस यज्ञ की पवित्र ज्वाला बनी। यह ज्वाला पांडव कुल के लिये चन्द्रमा की शीतल चाँदनी के समान और कौरव-वंश को नष्ट करने के लिये अग्नि की भीषण ज्वाला बनी।

शत हस्तिद्वार···· ···· ···· ····राज्यासन ॥११॥

शब्दार्थ—हस्तिद्वार=महल के प्रवेश द्वार।

सन्दर्भ—कर्ण के बध से धृतराष्ट्र अपने पुत्रों के हित के लिए चिन्तित हो उठे—

व्याख्या—द्रौपदी जीवनी-शक्ति है। उसकी प्रेरणा से पांडव अपना स्वर

पाने के लिए युद्ध में प्रवृत्त हुए। उनकी विजय पर विजय होने लगी। पांडवों की गर्जना के रूप में जीवनी-शक्ति द्रौपदी का गर्जन ही शत हस्तिद्वार को पार कर धृतराष्ट्र को सुनाई पड़ा। ऐसा लगता था, मानों द्रौपदी के रूप में प्रकृति ही हुँकार उठी हो, उसकी हुँकार से धृतराष्ट्र का सिंहासन डोल उठा हो।

अलकार—उत्प्रेक्षा।

धृतराष्ट्र हुए···· ···· ···· ··· ····**घातें** ॥१२॥

शब्दार्थ—पीत मुख पड़ा=भय से मुख पीला हो गया। घातें=कूटनीति की चालें।

सन्दर्भ—यहाँ पाण्डवों की विजय का समाचार सुनकर धृतराष्ट्र की चिन्ता का वर्णन है—

व्याख्या—पाण्डवों की विजय की सारी बातें सुनकर धृतराष्ट्र का मुख पीला पड़ गया। वे भयभीत हो गये। उन्होंने मन ही मन में यह बात समझ ली कि उनके पुत्र दुर्योधन ने पाण्डवों को नष्ट करने की जो-जो कूटनीतिक चालें चलीं वे सब व्यर्थ हो गईं।

विशेष—१. 'पीत मुख पड़ा' मुहावरे का सुन्दर काव्यात्मक प्रयोग है।

२. भाषा में **लाक्षणिकता** है।

चाहा कि न मानें···· ···· ···· ····**वह बीते** ॥१३॥

शब्दार्थ—रीते हाथों रहना=खाली हाथों रहना, कुछ भी न मिलना।

व्याख्या—धृतराष्ट्र ने पाण्डवों की विजय और उत्कर्ष की बातें सुनीं। उन्होंने मन में बहुत स्थिर करना चाहा कि पाण्डवों की विजय नहीं हुई। परन्तु अन्त में उनको यह सत्य स्वीकार ही करना पड़ा कि पाण्डु के पुत्र उनके पुत्रों पर विजयी हुए। वह (धृतराष्ट्र और उनके पुत्र) खाली हाथों रहे अर्थात् पाण्डवों के प्रति उनकी सारी घातें व्यर्थ गईं और उनके हाथ कुछ भी नहीं आया। पाण्डवों ने अब तक बहुत से दुःख भोगे और क्लेश सहे, परन्तु उनके दुःख और कष्टों के दिवस व्यतीत हो गये। आज वे विजयी हैं।

विशेष—१. **"रीते हाथों वह रहे"** इस पंक्ति का यह भी अर्थ किया जा सकता है कि "पाण्डव जो अब तक रीते रहे थे, अब वे विजयी हुए।"

२. यहाँ धृतराष्ट्र के चिन्तन में बड़ी मनोवैज्ञानिकता है। अपने पक्ष की हार कोई सहज ही स्वीकार नहीं करता।

३. 'रीते हाथों' मुहावरे का सुन्दर काव्यात्मक प्रयोग हुआ है।

पांचाली का गह पाणि ....सुन पाए ॥१४॥

शब्दार्थ—पांचाली=द्रौपदी। का गह पाणि=पाणिग्रह करके। पाँच अँगुलियाँ=पाँचों पाण्डव। के दिन आये=अच्छा समय आया। द्रौपदी उनकी प्रेरणा शक्ति बनी। पद-चाप=पैरों की आवाज।

सन्दर्भ—धृतराष्ट्र को अपने अन्धे नेत्रों से पाण्डवों के सुख, समृद्धि और सौभाग्य के दिन आने और अपने पुत्रों के विनाश का आभास मिल गया—

व्याख्या—पांचाली द्रौपदी का पाँचों पाण्डवों से विवाह हुआ। द्रौपदी जीवनी शक्ति का प्रतीक है। द्रौपदी ऐसी मधुरता से पाँचों पाण्डवों की विभिन्न शक्तियों को समन्वित कर सकी कि धृतराष्ट्र की आँखों में पाण्डवों के सुख, समृद्धि और सौभाग्य के दिन प्रतिफलित हो उठे। वे पाण्डवों की विजय और कौरवों के विनाश की भी पद-चाप सुनने लगे। उनको भावी युग का आभास मिल रहा है।

विशेष—१. अन्धे धृतराष्ट्र प्रज्ञाचक्षु हैं। उनको सारा भविष्य दिखाई दे रहा है।

दुश्चिन्ताओं.... ....अँधेरी रातें ॥१५॥

शब्दार्थ—दुश्चिन्ताओं=अनिष्टकारी बुरी चिन्ताओं। शत दीपक= धृतराष्ट्र के सौ पुत्र। अँधेरी रातें=निराशा का घना अन्धकार।

व्याख्या—धृतराष्ट्र को भविष्य दिखाई दे रहा है। वे अनिष्ट की दुश्चिन्ताओं में डूबे हुए हैं। उनके चिन्तन में समस्त बातें आ रही हैं। उनको शत दीपक बुझते दिखाई दे रहे हैं और उनको अपने सौ पुत्रों को मारे जाने का आभास मिल रहा है। उनके मुख से अनायास ही निकल जाता है कि हाय मेरे शत दीपक बुझ गये। अब तो मेरे सामने अन्धकार से भरी हुई निराशा की रातें ही हैं।

विशेष—शैली में प्रतीकात्मकता और भाषा में लाक्षणिकता है।

जो जग के हित···· ···· ···· ····लिख जाता ।।१६।

शब्दार्थ—नेत्रांध=नेत्रों का अन्धा। आता भविष्य दिख जाता=आता हुआ भविष्य दिखाई दे जाता है। रीते=खाली। अन्त:तम=हृदय। भावी=भविष्य।

सन्दर्भ—कवि कहता है कि नेत्रांध प्रजाचक्षु के सामने भविष्य का सारा लेख आ जाता है।

व्याख्या—जो मनुष्य संसार के कल्याण के लिए अपने चर्म चक्षुओं को मूँदे रहता है, अर्थात् नेत्रांध होता है, उसे अपनी उन अन्धी आँखों में भविष्य का चित्र अंकित होता दिखाई पड़ जाता है। नेत्रांध होने के कारण रिक्त हृदय-पट पर भावी का यही चित्र उभर आता है। धृतराष्ट्र के हृदय में अपने कुल के भावी विनाश का चित्र उभर आया।

निज को समझाकर···· ···· ···· ····हा हा ।।१७।।

शब्दार्थ—स्वयम्=अपने आप। हा हा खाना=खुशामद करना। आत्मज=पुत्र।

व्याख्या—नेत्रांध धृतराष्ट्र को अपने पुत्रों का अन्धकारपूर्ण भविष्य दीख गया। वह हृदय से पाण्डवों की पराजय और अपने पुत्रों का उत्कर्ष चाहते थे। परन्तु उनको पाण्डवों की विजय के समाचार से यह आभास मिल गया था कि उनके पुत्र विनाश को प्राप्त होंगे। अत: उन्होंने पहले सब को समझाया और फिर सुयोधन को विग्रह छोड़ने के लिए समझाने का प्रयास किया। परन्तु इससे कुछ भी परिणाम न निकला। सुयोधन की हा हा खाना और उससे सारा कहना सुनना व्यर्थ गया।

विशेष—'हा हा खाना' मुहावरे का सुन्दर काव्यात्मक प्रयोग हुआ है।

आत्मज उनका ही अंग···· ···· ····झुकाना ।।१८।।

शब्दार्थ—आत्मज उनका ही अंश=सुयोधन धृतराष्ट्र का ही आत्मज और अंश है। रार=विग्रह, झगड़ा।

व्याख्या—सुयोधन धृतराष्ट्र का ही आत्मज और अंश था। उस पर धृतराष्ट्र के समझाने का कुछ भी प्रभाव न पड़ा और उसने विग्रह बढ़ाना न छोड़ा। उसने धृतराष्ट्र की शान्ति की बातें उद्धृत बनकर अस्वीकार कीं।

कारण यह है कि नियति की इच्छा यही थी, कि युद्ध हो ; जिससे अत्याचारी कौरवों का विनाश हो।

जो कर न सके" ....अनिच्छा ॥१६॥

शब्दार्थ—अनिच्छा =किसी काम को करने की इच्छा न होना।

व्याख्या—दुर्योधन धृतराष्ट्र का अंश और उन्हीं की वासना का बीज है। धृतराष्ट्र अननयन होने के कारण उन कामों को न कर पाये, जिनके कि करने की वे इच्छा रखते थे। सुयोधन में धृतराष्ट्र के ही वासना के बीज थे। जिसको चाह कर भी धृतराष्ट्र दबा न पाये।

अंकुरित हुआ वह ... .अन्तर ॥२०॥

शब्दार्थ - अकुत = वासना। धर कर=धारण कर। अन्तर=हृदय।

व्याख्या—सुयोधन धृतराष्ट्र का पुत्र था। उसके अन्य सौ भाई थे। वे सभी के सब मानों धृतराष्ट्र की दमित इच्छाओं के प्रतीक थे। धृतराष्ट्र अपनी जिन इच्छाओं को कार्यान्वित न कर सके, वे दमित वासनाएँ सुयोधन के तन मन के रूप में सक्रिय हो उठीं। दुर्योधन अपने कार्यों के द्वारा धृतराष्ट्र की ही इच्छाओं को पूरा करने लगे।

बनता अभाव ... .पितामह ॥२१॥

शब्दार्थ—अभाव=चाहना करने पर किसी वस्तु का न मिलना, कमी। दुर्भाव=बुरा भाव।

व्याख्या—यहाँ कवि कौरव पाण्डवों के बीच में स्थित भीष्म-पितामह की स्थिति का वर्णन कर रहा है—

व्याख्या—अभाव ही दुर्भाव बन जाता है। तात्पर्य यह है कि धृतराष्ट्र जो कुछ प्राप्त न कर सके, उसका अभाव उनके लिए दुर्भाव बन गया। इसी प्रकार अभाव जनित आग्रह घोर दुराग्रह बन जाता है। इस अभाव-दुर्भाव, आग्रह और दुराग्रह को एक भीष्म पितामह ही ऐसे थे, जो आँखें खोलकर इसको त्यागे हुए थे।

हो रहे प्रफुल्लित.... ....लाली ॥२२॥,

शब्दार्थ—प्रफुल्लित=प्रसन्न। पार्थ=अर्जुन। पांचों पाण्डव। पांचाली=द्रौपदी।

व्याख्या—पाण्डवों को वधू रूप में द्रौपदी की प्राप्ति से भीष्म प्रसन्न हो

रहे थे। द्रौपदी ऐसी जीवनी शक्ति थी, जिसने पाण्डवों को प्रेरणा दी। इससे पाण्डवों में पूर्व में उषा के खिलने के समान उल्लास छा गया और कौरवों में पश्चिम में सन्ध्या होने के समान अवसाद छा गया।

पांडव कौरव···· ···· ···· ····दुराग्रह ॥२३॥

शब्दार्थ—संघर्षण = रगड़, घर्षण। वासुकि-डोर = समुद्र मंथन के समय वासुकि को नेति बनाया गया था। "**पौत्र सत्याग्रह और दुराग्रह**" = पाण्डव और कौरव दोनों ही जीवन-संघर्ष की एक डोर के दो छोर थे, जिनके केन्द्र भीष्म पितामह थे। एक ही वंश के इन दो छोरों में बड़ा भारी अन्तर था। पाण्डवों में सत्य के प्रति प्रबल आग्रह था और कौरवों में असत्य के प्रति उग्र दुराग्रह था।

सन्दर्भ—यहाँ कवि कौरव और पाण्डवों के बीच में भीष्म-पितामह की स्थिति का वर्णन कर रहा है—

व्याख्या—एक ही वंश के कौरव और पाण्डव दो छोर थे, जिनके केन्द्र-बिन्दु भीष्म-पितामह थे। भीष्म-पितामह के कौरव और पाण्डव दोनों ही पौत्र थे। समुद्र-मंथन के समय संघर्षण का केन्द्र वासुकि बना। देवता वासुकि के पूछ भाग को खींचते थे और राक्षस मुख भाग को। इस प्रकार नेति के समान भीष्म को गौरव-पांडवों को संघर्षण सहन करना पड़ा था। भीष्म-पितामह का कौरव और पांडवों दोनों पर ममत्व था। परन्तु कौरव और पांडव ऐसे दो छोर थे। जिनमें बहुत अधिक अन्तर था। युधिष्ठिर आदि पांडवों को सत्य के प्रति प्रबल आग्रह था, किन्तु दुर्योधन आदि कौरवों को असत्य के प्रति उग्र दुराग्रह था।

अलंकार—रूपक।

"हैं सुदृढ़···· ···· ···· ····उल्का" ॥२४॥

शब्दार्थ—मेरु से = पर्वत के समान। "वासुकि कलह-सूत्र कुरुकुल का" = कुरवंश का कलह-सूत्र मानों वासुकि है। उल्का = एक बड़ा पूँछवाला तारा, जिसका उदय होना और टूटना अमंगल सूचक माना जाता है।

सन्दर्भ—इस छन्द में कवि स्पष्ट करता है कि कौरव-पांडवों के केन्द्र विन्दु भीष्म हैं। द्रौपदी जहाँ पांडवों के लिए लक्ष्मी है, वहाँ कौरवों के लिए वह उल्का है—

व्याख्या—कौरव और पांडव रूपी दो छोरों के केन्द्र बिन्दु भीष्म पितामह मेरु के समान सुदृढ़ और अटल हैं। कुरुकुल का कलह-सूत्र ही वासुकि नाग है, जो भीष्म के हृदय को मथ रहा है। द्रौपदी जो पांडवों के लिए भाग्य-लक्ष्मी और राज्य-लक्ष्मी है, वही कौरव वंश के विनाश का संकेत देने वाली उल्का है।

अलंकार—(१) "हैं सुदृढ़ मेरु से भीष्म" में **उपमा**।

(२) 'कुरु वंश के कलह-सूत्र' में 'वासुकि' की संभावना होने से **उत्प्रेक्षा**।

(३) द्रौपदी में लक्ष्मी और उल्का का आरोप होने से **रूपक**।

(४) **अनुप्रास**।

कर याज्ञसेनि···· ···· ···· ····होगा ॥२५॥

शब्दार्थ—याज्ञसेनि=द्रौपदी। तुष्ट=सन्तुष्ट, प्रसन्न। दुस्साध्य=जो कठिनता से पूरा हो सके।

व्याख्या—भीष्म पितामह का कथन विदुर के प्रति है। भीष्म पितामह समझ गये थे कि द्रौपदी जो पांडवों के लिए लक्ष्मी है, वही कौरवों को नष्ट करने के लिए उल्का। अतः कौरवों के अनिष्ट को हटाने के लिए द्रौपदी को सन्तुष्ट करना पड़ेगा। द्रौपदी को सन्तुष्ट करने से ही दुस्साध्य इष्ट की साधना हो सकती है। हे विदुर! कौरव और पांडवों के बीच में स्नेह का सेतु बाँधने से विग्रह रुक सकता है।

कुन्ती द्रुपदा···· ···· ···· ····मुसकाए ॥२६॥

शब्दार्थ—कौन्तेय=कुन्ती के पुत्र अर्थात् पांडव।

व्याख्या—जब से विदुर के साथ कुन्ती, द्रौपदी और पांडव घर आ गये तब से भीष्म-पितामह को शान्ति मिली। वे मन में बहुत प्रसन्न हो गये।

शत हस्तिद्वार···· ···· ···· ···उर में ॥२७॥

शब्दार्थ—सिंहिनी=द्रौपदी। शकुनी=शकुनि, गांधारी का भाई और दुर्योधन का मामा था। महाभारत के विग्रह में शकुनि का बड़ा हाथ था। शकुनि को महाभारत में द्वापर का अवतार कहा गया है। यही कारण है कि द्रौपदी को कृत्या रूप में देखकर उसे प्रसन्नता होती है। गांधारी के हृदय में

यदि श्रद्धा की सुधा थी, तो शकुनि के मन में प्रतिहिंसा का विष भरा हुआ था। भाई-बहन एक ही धुरी के दो ध्रुवों के समान थे। विपरीत तत्वों से ही जगत का निर्माण होता है। शकुनि प्रेरित कपट-द्युत में पांडव अपनी स्वयंवरा शक्ति तक को लगा देते हैं।

व्याख्या—शत हस्तिद्वारों को पार कर द्रौपदी ने हस्तिनापुर में इस प्रकार प्रवेश किया, मानों सिंहनी ने प्रवेश किया हो। उसको देखकर शकुनि का निष्ठुर हृदय आनन्द-पुलक की लहर से भर गया।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

ऋजु हुआ···· ···· ···· ··· देखा ॥२०॥

शब्दार्थ—ऋजु = सीधा।

व्याख्या—द्रौपदी की दीप्ति को देखकर शकुनि का अधर सीधा हो गया और उसके ओष्ठ पर कुटिलता की रेखा खेलने लगी। उसके हृदय का असमंजस चला गया। उसे निश्चय हो गया कि द्रौपदी द्वापर के विनाश का कारण बनेगी।

कौरव-कुल···· ···· ···· ····ईंधन ॥२९॥

शब्दार्थ—तमस = अन्धकार। पावक तनया = द्रौपदी।

व्याख्या—कौरव-कुल में अंधकार और विनाश का जो तत्व वर्तमान है, शकुनि का जीवन उसी का मूर्तिमान रूप है। वह हृदय का बडा ही कुटिल था। अग्नि-सुता द्रौपदी को देखकर द्वापर युग का ईंधन रूप शकुनि हँस पड़ा।

विशेष—१. महाभारत के युद्ध को सुलगाने में शकुनि ने ईंधन का काम किया था।

२. **अलंकार**—(क) रूपक।

(ख) अनुप्रास।

शोणित पंकिल···· ···· ···· ····दिग्गज ॥३०॥

शब्दार्थ—शोणित = रक्त। पंकिल = कीचड़। शोणित-पंकिल गंधार = गंधार शोणित पंकिल है। शकुनि लोहित अहिंसा-पंकज = शकुनि उसमें खिला हुआ प्रतिहिंसा का रक्त कमल है। लोहित = रक्त।

सन्दर्भ—यहाँ शकुनि का चित्रण कौरव-कुल के विनाशक के रूप में किया गया है—

व्याख्या—शकुनि कौरव-कुल के नाश का प्रतीक है। वह कुटिल गज-लक्ष्मी का नैवेद्य नहीं है। वह तो प्रतिहिंसा के रक्त में लिप्त मानों गंधार के कीचड़ में खिला हुआ कमल है। शकुनि सुख और शान्ति के स्थान पर चारों ओर रक्तपात और सर्वनाश का सृजन करेगा।

अलंकार—रूपक।

कर हस्तिद्वार···· ···· ···· ···· ····उर में ॥३१॥

शब्दार्थ—वधूटी = नव वधू।

व्याख्या—फिर हस्तिद्वार को पार करके द्रौपदी अन्तःपुर में गांधारी के पास गई। उसने गांधारी के चरण स्पर्श किये। उसे गांधारी ने अपने हृदय से लगा लिया।

वह पतिम्वरा···· ···· ···· ····किया है ॥३२॥

शब्दार्थ—पतिम्वरा=पति का वरण करने वाली। धनी=पति। स्वेच्छा=अपनी इच्छा से।

सन्दर्भ—यहाँ कवि द्रौपदी और गांधारी की स्थिति को स्पष्ट कर रहा है। यहाँ शकुनि का कथन भीष्म-पितामह के प्रति है—

व्याख्या—द्रौपदी पति को वरण करने वाली नव वधू है, जिसने स्वेच्छा से अपने पति का वरण किया है। वह गंधार-नरेश की पुत्री गांधारी नहीं है, जिसका भीष्म ने धृतराष्ट्र के लिये अपहरण किया था।

विशेष—अनयन धृतराष्ट्र को कोई अपनी राजकुमारी नहीं देना चाहता था। अतः भीष्म ने धृतराष्ट्र के लिए गंधार पुत्री गांधारी का अपहरण किया था। द्रौपदी और गांधारी में बहुत बड़ा अन्तर था। द्रौपदी ने अपने हृदय से अर्जुन को वरण किया था। जबकि गांधारी ने अनयन धृतराष्ट्र को स्वेच्छा से वरण नहीं किया था। उसका तो धृतराष्ट्र के लिए भीष्म के द्वारा अपहरण किया गया था।

यों बोला···· ···· ···· ····बेला ॥३३-३४॥

शब्दार्थ—निठुराई=कठोरता।

व्याख्या—शकुनि के शब्दों को सुनकर पितामह चौंक पड़े। उनको वह सारी घटना स्मरण आ गई। जबकि उन्होंने धृतराष्ट्र के लिए गांधारी का अपहरण किया था। वे कहते हैं, कि उन्होंने कुल की ममता के लिए ही यह निष्ठुरता की थी। हे शकुनि! नियति के हाथों में पड़कर मैंने जो यह खेल खेला था, उसे अब भुला दो। अब युग बदल चुका है, आज नये युग की मंगल वेला आ गई है।

विशेष—"कुल की ममता के हेतु" कुल की रक्षा के लिए ही भीष्म ने गांधारी और काशी नरेश की पुत्री अम्बा और अम्बालिका का अपहरण किया था।

गूंजे कुंकुम" ....अभिभावक ॥३५॥

शब्दार्थ—कुंकुम = रोली। जावक = महावर। अभिभावक = रक्षक।

व्याख्या—पितामह भीष्म ने कुंकुम के समान नव-वधू द्रौपदी के गूँजते हुए बोल सुने, उन्होंने उसका उषा के समान हँसता हुआ जावक देखा। वे कुरु-वंश के अभिभावक पितामह आनन्दमग्न हो गये।

अलंकार—उपमा।

उद्दीप्त हुआ.... ....मन में ॥३६॥

शब्दार्थ—उद्दीप्त = प्रकाशित। प्रासाद = राजमहल। बधूटी = नव-वधू द्रौपदी। दिग्दाह = दिशाओं को जलाने वाली। वज्राहत = वज्र से आहत।

व्याख्या—द्रौपदी के पैर रखते ही कौरवों का राजमहल उसके रूप और शोभा से सहसा आलोकित हो उठा। तृप्तिदायक वह शोभा दुर्योधन के वज्राहत मन में दिग्दाह की भीषण ज्वाला सुलगा रही थी।

अलंकार—रूपक।

गजमुक्ता.... ....प्रदर्शन ॥३७॥

शब्दार्थ—अम्बिकानन्दन = काशी नरेश की पुत्री अम्बिका विचित्र वीर्य की बड़ी पत्नी थी। व्यास के संसर्ग से धृतराष्ट्र का जन्म अम्बिका से हुआ था।

व्याख्या—धृतराष्ट्र द्रौपदी को आशीष देते हुए उस पर गजमुक्ताओं की

वर्षा करने लगे। गजमुक्ताओं की यह वर्षा उनके करों का भाव-प्रदर्शन मात्र था। उनके मन में दुराव छिपा हुआ था।

आँखों में···· ···· ···· ···· ····**गांधारी** ॥३८॥

शब्दार्थ—अन्ध ममत्व=अपने पुत्रों के प्रति अन्धी ममता।

सन्दर्भ—इस छन्द में कवि ने गांधारी और धृतराष्ट्र के अन्तर को स्पष्ट किया है—

व्याख्या—अंधे धृतराष्ट्र के नेत्रों में अपने सौ पुत्रों के लिए अन्धी ममता छाई हुई थी। वे हृदय से अपने शत पुत्रों के रूप में अपनी इच्छाओं को बल देते थे। वे संसारी पुरुष थे, परन्तु गांधारी पतिव्रत की साक्षात मूर्ति थी। धृतराष्ट्र जहाँ अपनी क्षुद्र इच्छाओं और स्वार्थ से ऊपर नहीं उठ पाते थे, वहाँ गांधारी इच्छाओं के दमन और संयमन की साधना कर रही थी।

शतखण्ड···· ····**नाता** ॥३९-४०॥

शब्दार्थ—शतखण्ड=सौ पुत्र। अहंता पुँज=अहंकार से धरित्री=पृथ्वी। उर्वरा=उपजाऊ।

व्याख्या—गांधारी अपने स्वार्थ से ऊपर उठी हुई थी। वह पतिव्रता थी और इच्छाओं के दमन और संयमन की साधना कर रही थी। फिर भी उसने अहंकार से परिवेष्टित शतपुत्रों को जन्म दिया। इसमें उसका दोष ही क्या है! धरती पर हम जैसा बीज बोएँगे, वैसे ही उत्पन्न होंगे। बबूल का बीज बोकर आम के सरस फल पाने की कामना नहीं की जा सकती। धृतराष्ट्र ने गांधारी रूपी क्षेत्र में अपनी वासनाओं के बीज बोए थे। यही कारण है कि दुर्योधन, दुःशासन जैसे उद्धृत और हीन चरित्र के पुत्र उत्पन्न हुए। मनुष्य अपने भाव के अनुसार ही पिता बनकर वर और शाप प्रगट करता है। प्रकृति तो उर्वरा भूमि है, उसमें जैसा बीज डाला जायगा, वैसा ही वृक्ष उत्पन्न होगा।

विशेष—१. "पाकर बबूल· ·उगाए" लोकोक्ति का सुन्दर काव्यात्मक प्रयोग हुआ है।

अलंकार—दृष्टान्त।

तीसरा सर्ग

कथानक का विश्लेषण

हस्तिनापुर के राजमहल में द्रौपदी धृतराष्ट्र और गांधारी से आशीष लेने आती है। शकुनि द्रौपदी के मोहक रूप की ज्वाला देखता है। गांधारी नव-वधू द्रौपदी को अपने अंक में बिठलाकर आनन्द के अश्रुओं से उसका अभिषेक करती है। इस प्रेम-मिलन को देखकर शकुनि के हृदय में यह शंका उत्पन्न होती है, कि इस मिलन के परिणामस्वरूप कहीं कौरवों का नाश न रुक जाय। परन्तु वह निश्चय करता है कि चाहे कुछ भी हो, परन्तु वह जुए के सहारे कौरवों का नाश कराकर ही रहेगा।

धृतराष्ट्र युधिष्ठिर पर प्रसन्न थे। वे दुर्योधन से उनका अभिनन्दन करने और उचित राय देने को कहते हैं, परन्तु दुर्योधन किसी प्रकार भी राजी नहीं होता। विदुर भी समझाते हैं, किन्तु उनके न्यायपूर्ण उपदेश दुर्योधन को विष के समान लगते हैं। धृतराष्ट्र को दुर्योधन के दुराग्रह के सामने झुकना पड़ता है। अन्त में विदुर के समझाने पर धृतराष्ट्र युधिष्ठिर को खाण्डवप्रस्थ बसाने का आदेश देते हैं। यहाँ पाण्डव 'जंगल में मंगल' कर देते हैं। खाण्डवप्रस्थ नगरी इन्द्रपुरी के समान जगमगा उठती है। युधिष्ठिर सम्राट बनते हैं। द्रौपदी इन्द्राणी के समान साम्राज्ञी का गौरव प्राप्त करती है। युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ करते हैं, जिसमें समस्त देश के राजा सम्मिलित होते हैं। दुर्योधन पाण्डवों की इस श्रीवृद्धि को देखकर जल उठता है। वह पाण्डवों के विनाश के लिए शकुनि से मन्त्रणा करता है। शकुनि जुए में पाण्डवों को हराकर उनकी भाग्य लक्ष्मी को हरण करने की योजना बनाता है। वह युधिष्ठिर से कहता है—

> "युधिष्ठिर को व्यसन है,
> पर नहीं जिसका ज्ञान।
> द्यूत क्रीड़ा की कला—
> वह, सुनो, आयुष्मान॥
> लगा दूँगा दावँ पर सब,

विजय निश्चय जान।
भाग्य लक्ष्मी द्रौपदी,
का धर हृदय में ध्यान।।"

शकुन अच्छा···· ···· ···· ····**सिंदूर** ।।१-२।।

शब्दार्थ—प्रस्तर मूर्ति=पाषाण की प्रतिमा। अंगारा बनेगा कपूर=कपूर की शीतलता में अंगार की ज्वाला सुलग उठेगी। रज=धूल। भानु का सिन्दूर=सूर्य की लाली, क्रान्ति की ज्वाला।

सन्दर्भ—द्रौपदी को गांधारी के निकट जाते देखकर कुटिल शकुनि के मन में तरह-तरह के संकल्प विकल्प उठने लगते हैं—

व्याख्या—शकुनि कुछ सोचकर बोला कि यह शकुन अच्छा ही हुआ, जो आज प्रातः वेला में पाषाण-प्रतिमा में मुस्कान दिखाई दी। द्रौपदी शकुनि को प्रस्तर मूर्ति देख रही है। मेरा यह शकुन कहता है कि द्वापर के इस संघर्षपूर्ण युग में कपूर की शीतलता में अंगारा की ज्वाला सुलगेगी। अर्थात् जो यह कृष्णा कपूर के समान शीतल दीखती है। कौरव वंश को नष्ट करने के लिए आग का अंगारा बन जायगी। द्रौपदी के चरणों की धूल में सूर्य की लाली अर्थात् क्रान्ति की ज्वाला भड़क उठेगी।

विशेष—१. शकुनि संघर्षपूर्ण द्वापर का अवतार माना गया है।

२. शैली में प्रतीकात्मकता और भाषा में लाक्षणिकता है।

३. अंगारा क्रान्ति का प्रतीक है।

२. 'भानु का सिन्दूर' क्रान्ति और ज्वाला का प्रतीक है।

मैं तुम्हें पहचानता···· ···· ···· ····**कृतकृत्य** ।।३-४।।

शब्दार्थ—ऊर्ध्वगामिनी=ऊपर उठने वाली। भावी काल=महा काल। अनल जा=द्रौपदी। भृत्य=सेवक, दास।

सन्दर्भ—शकुनि द्रौपदी को कृत्या रूप में आह्वान करता हुआ कहता है कि वह क्रान्ति की ज्वाला सुलगा दे—

व्याख्या—हे क्रान्ति की देवी मैं तुम्हें पहचानता हूँ। तुम होमजा हो और ऊर्ध्वगामिनी ज्वाला हो। तुम्हारे चरण-चिन्हों का अनुकरण महाकाल भी

करता है। मैं शकुनि स्वयं ही संघर्ष, कलह और पारस्परिक विद्वेष भावना से युक्त द्वापर युग हूँ। तुम अग्नि की शिखा हो। तुम्हारे चरणों की धूल में सूर्य की रक्ताभ सुन्दरता है। मैं अनुचर बनकर तुम्हारा आह्वान करता हूँ। हे देवि ! तुम कृत्या बनकर इस स्वार्थ-विद्वेष से जर्जर युग का कृतकृत्य कर दो।

विशेष—१. प्रतीक शैली।

(क) द्रौपदी ऊर्ध्वगामी ज्वाला, और कृत्या का प्रतीक है।

(ख) शकुनि द्वापर युग का प्रतीक है।

२. जीवनी-शक्ति द्रौपदी को द्वापर की कृत्या भी कहा गया है। कृत्याओं की परम्परा में रेणुका को सतयुग की और सीता को त्रेता की कृत्या कहा जाता है। शक्ति-स्वरूपिणी द्रौपदी इस प्रकार रेणुका और सीता के समकक्ष है।

५. महाभारत के विग्रह को बढ़ाने में शकुनि का बड़ा हाथ था। शकुनि को महाभारत में द्वापर का अवतार कहा गया है। द्रौपदी को कृत्या रूप में देख कर शकुनि का इस हेतु प्रसन्न होना सहज स्वाभाविक था।

कुछ न बोली···· ···· ···· ····है शक्ति ।।५-६।।

शब्दार्थ—द्रुपदतनया=राजा द्रुपद की पुत्री अर्थात् द्रौपदी। "**बहन-भाई** में नियति ने लिखे हैं दो लेख" शकुनि और गांधारी भाई बहन हैं, परन्तु दोनों की प्रकृति में बहुत अधिक अन्तर है। नहीं जन्मांध=गांधारी जन्मान्ध नहीं है। वह भीष्म पितामह द्वारा धृतराष्ट्र के लिए हरण करके लाई गई थी। उसने देखा कि उसके पति नेत्र-हीन हैं। अतः पति-श्रद्धा वश उसने भी अपने नेत्रों में पट्टी बाँध ली, जिसको वह आजीवन बाँधे रही। मधु=शहद। मधु-सूदन=श्रीकृष्ण। शक्ति के पद चाप को=द्रौपदी की शक्ति को। शक्ति=गांधारी स्वयं शक्ति स्वरूपा है।

सन्दर्भ—इस छन्दों में गांधारी की पति-भक्ति और कृष्ण के प्रति श्रद्धा को व्यक्त किया गया है—

व्याख्या—शकुनि ने द्रौपदी को अग्नि की ज्वाला और कृत्या के रूप में आह्वान किया। परन्तु द्रौपदी कुछ नहीं बोली। वह शकुनि का मुख ही देखती रह गई। वह सोचने लगी कि शकुनि और इसकी बहन गांधारी की प्रकृति में कितना अधिक अन्तर है। शकुनि जहाँ छल द्वेष और विग्रह से युक्त है, वहाँ

गांधारी जन्मान्ध नहीं है, किन्तु फिर भी अपने पति के अन्धे होने के कारण अपने नेत्रों पर पट्टी बाँध ली। उन्होंने अपने नेत्र बन्द कर लिये। महादेवी गांधारी के लिये प्रत्येक क्षण मधु बिन्दु है।

गांधारी के इष्ट श्रीकृष्ण हैं, और उनकी सारी भावना पति-भक्ति में निवेदित है। वे स्वयं शक्तिस्वरूप हैं। अतः वे द्रौपदी की शक्ति को पहचानती हैं।

बाँह फैलाए बढ़ीं···· ···· ····**अभिषेक** ॥८-१४॥

शब्दार्थ—वह = गांधारी। नववधू = द्रौपदी। इन्दीवरी = श्याम छवि। विगत = बीता हुआ। आँखें मीच = गांधारी ने अपनी आँखों पर पट्टी बाँध रखी थी। मधु-छन्द – मीठी बोली। मौनालाप = मौन संभाषण। अलक्षित = छिपी हुई। स्नेह के अतिरेक = प्रेम के आधिक्य में।

व्याख्या—गांधारी द्रौपदी को अंक में लेने के लिये अपनी दोनों भुजाएँ फैलाए हुए आगे की ओर बढ़ी। उनके अंचल का छोर विपरीत दिशा को उड़ रहा था।

गांधारी ने आगे की ओर बढ़ते हुए कहा कि हे द्रुपद तनया ! मैं तुझे मुँह दिखाई में क्या दूँ। यद्यपि मेरे नेत्रों पर पट्टी बँधी हुई है, परन्तु मैंने मन के नेत्रों से तेरी श्याम छवि देख ली है।

हे द्रौपदी ! तू मेरी विगत युग की सुखद स्मृति है। तू मेरी भुजाओं के बीच में आकर समा जा। देख मैं नेत्रों को बन्द किये हुए तुझे भेंटने के लिये कब से भुजाएँ फैलाए हुए हूँ।

हे कुल-वधू ! तू कुछ तो बोल, जिससे मैं भी तेरे मधुर बोल सुन लूँ। मुझ दृग-बंचिता को कुछ श्रवणों का ही आनन्द मिले। महादेवी गांधारी ने इस प्रकार बहुत कुछ कहा, किन्तु द्रौपदी मौन थी, दोनों में कुछ मौनालाप हुआ। क्या हुआ इसे कौन जान सकता है।

गांधारी और द्रौपदी का मिलन हो रहा था। एक पर्वत शिखर थी, तो दूसरी स्रोत-सी। द्रौपदी कुल की श्रेष्ठ आर्या गांधारी की कृपा की अभिलाषिणी थी और गांधारी होमकुमारी द्रौपदी की शुभाकांक्षिणी की। दोनों ही एक दूसरे के प्रति स्नेह से ओतप्रोत थे। दोनों में स्नेह का अतिरेक था, जिसकी

लहरें एक दूसरे से टकरा रही थीं। गांधारी दृग-सुख से वंचित थी, पर उसने अपने स्नेह-निर्झर आनन्द के अश्रुओं से ही वधू का मानों अभिषेक किया।

अलंकार—(क) 'इन्दीवरी छवि' में उपमा।

(ख) 'सुखद सुधि' में 'स' वर्ण की एक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास।

(ग) 'अलक्षित.........स्रोत' में रूपक।

(घ) 'लहर... ....अभिषेक' में दृष्टान्त।

शकुनि शंकित हुआ.... ....नाश ॥१५॥

शब्दार्थ—शकुनि शंकित हुआ=शकुनि शंका से भर गया। हुआ यह आभास=क्षण भर ऐसा लगा।

व्याख्या—द्रौपदी और गान्धारी के स्नेह-मिलन को देखकर शकुनि को एक क्षण के लिए यह आभास हो गया कि अब कौरव और पाण्डवों में मेल हो जायगा। अत: कौरवों का विनाश कदाचित न होगा।

हुआ पहली.... ....पुष्ट ॥१६॥

शब्दार्थ—निज पर रुष्ट=अपने ऊपर क्रोधित।

व्याख्या—आज शकुनि पहली बार अपने ऊपर रुष्ट हुआ। वह संघर्ष पूर्ण द्वापर का प्रतीक था। महाभारत के कलह में उसका बहुत बड़ा योग था। एक क्षण के लिए उसे यह संशय होता है कि अब कदाचित कौरवों का नाश न हो, परन्तु उसका यह संशय उसके संकल्प को और अधिक पुष्ट कर देता है।

कहा मन ही मन.... ....आराध्य ॥१७॥

शब्दार्थ—युक्ति=उपाय। दुस्साध्य=बहुत कठिन। द्यु त=जुआ। आराध्य=उपास्य देव।

व्याख्या—शकुनि द्रौपदी और गांधारी के स्नेह-मिलन को देखकर एक क्षण के लिये शंकित हो जाता है कि शायद अब कौरवों का नाश न हो। परन्तु वह मन-ही-मन में सोचता है कि युक्ति के द्वारा कठिन-से कठिन कार्य भी सम्पन्न हो सकता है। हे द्यु त के देव ! अब तुम्हीं मेरे आराध्य हो। अर्थात् मैं जुए का जाल फैलाकर कौरवों के विनाश की भूमिका तैयार करूँगा।

न दूँगा अवसर···· ···· ···· ····आप्त ॥१८॥

शब्दार्थ—सन्मति=सद्‌बुद्धि। आप्त=सम्मानित स्वजन।

व्याख्या—द्रौपदी और गांधारी के स्नेह को देखकर शकुनि शंकित हो उठता है, परन्तु वह जुए का जाल फैलाने का दृढ़ संकल्प करता हुआ कहता है कि मैं ऐसा अवसर ही नहीं दूँगा कि शक्ति को सन्मति प्राप्त हो जाय। अर्थात् दुर्योधन शक्ति के मद में उन्मत्त हो रहा है। मैं इसको ऐसी सलाह नहीं दूँगा, जिससे वह पांडवों से वैर-भाव छोड़ दे। मैं जुए का जाल बिछाकर विरोध को बढ़ाऊँगा और इस प्रकार शकुनि के रहते हुए कौरव और पाडव कभी भी मन से नहीं मिलेंगे। परिणाम स्वरूप भीषण युद्ध और उसमें कौरवों का विनाश होकर ही रहेगा।

अतल गत···· ···· ···· ····कामार्थ ॥१९॥

शब्दार्थ—अतल गत=निम्न गामी, निम्न विचारों को सोचने वाला। गगन में थे पार्थ=पांडव ऊर्ध्वगामी थे, वे आदर्श को सोचते थे। युधिष्ठिर सारे संसार को द्युत-रत देख रहे थे। वे अनुभव करते हैं, कि स्वार्थ की चाहना में समस्त जगत ही द्युत-रत है।

कौन खोता···· ···· ···· ····नेत्र ॥२०-२४॥

शब्दार्थ—मात्र व्यंग्य-विनोद=केवल व्यंग्य-विनोद मात्र है। द्युत=जुआ। मृत्तिका=मिट्टी, पृथ्वी। गोद=चौपड़ की गोटें। अदेखे=अदृश्य। लेख=लिपि। देना-पावना=देना और पाना। युधिष्ठिर··········शून्य विकार=युधिष्ठिर आकाश के समान ही समस्त विकारों से रहित हैं। अस्थि-पासे=हड्डियों के पासे, यहाँ मनुष्यों से तात्पर्य है। बाहु=भुजाएँ। मातुल=मामा। सुबल सुत=राजा सुबल का पुत्र अर्थात् शकुनि। पार्थिव क्षेत्र=भौतिक संसार। "किन्तु··············नेत्र"=युधिष्ठिर की चेतना ऊर्ध्वमुखी थी। वे पृथ्वी के मटमैले धरातल से ऊँचे उठे हुए थे।

सन्दर्भ—यहाँ कवि ने संसार में द्युत का रूपक बाँधा है। शकुनि द्युत का जाल फैलाकर युधिष्ठिर को उसमें फँसाता है। इसके परिणाम स्वरूप ही महाभारत का विनाशकारी युद्ध होता है।

व्याख्या—यह संसार चौपड़ का खेल मात्र है। इसमें कौन खोता है और

कौन पाता है, यह बात व्यंग्य-विनोद मात्र है। यथार्थ में यह संसार (मृत्तिका की गोट) द्यूत की चौपड़ है। सभी जन्म-धारी इसके खेल में भाग लेते हैं। इस खेल में खोना-पाना कुछ भी नहीं है।

इस विश्व में चौपड़ बिछी हुई है, जिसमें ग्रह-उपग्रह की गोटें बिछी हुई हैं और अदृश्य लिपि के पासे फेंके जा रहे हैं। कुछ बिन्दु और रेखाओं पर ही पाना और खोना चलता है। भाव यह है कि अदृश्य के चक्र में पड़ा हुआ मनुष्य इस संसार में अपने जीवन के पासे फेंकता रहता है।

युधिष्ठिर आकाश-तत्व हैं। उनका व्यापक दृष्टिकोण द्वेष रहित और संसार के मटमैले धरातल से ऊँचा उठा हुआ है। वे आकाश के समान समस्त विकारों से रहित हैं। उनकी ऊर्ध्वगामी चेतना आकाश के समान शून्य है।

द्वापर में धर्म के चार चरणों में से दो चरण टूट कर केवल दो ही रह गये हैं। शकुनि के दो हाथ द्वापर में धर्म के दो टूटे हुए चरण ही हैं। शकुनि को महाभारत में संघर्ष पूर्ण द्वापर का अवतार माना गया है। दुर्योधन का मामा शकुनि चन्द्रवंश के कौरवों को ग्रसने के लिए राहु के समान है।

राजा सुबल के पुत्र शकुनि ने इस भौतिक क्षेत्र में जुआ खेलने की सलाह दी। परन्तु युधिष्ठिर के नेत्र ऊर्ध्व-चिन्तन में लीन थे।

विशेष—१. शकुनि ने कौरव और पांडवों की जय-पराजय का निश्चय करने के लिए जुआ खेलने की मंत्रणा युधिष्ठिर को दी थी। युधिष्ठिर द्यूत खेलने के लिए तैयार हो गये। शकुनि की यह मंत्रणा ही महाभारत के युद्ध का कारण बनी। युधिष्ठिर इस मंत्रणा से सहमत होकर अपने कुल के भविष्य का अध्ययन कर रहे थे। वे ग्रह और उपग्रहों में विनाश का लेख पढ़ चुके थे।

२. "**धर्म के टूटे हुए**···· ···· ····**बाहु**।"

धर्म के चार चरण माने गये हैं। सतयुग में धर्म के चारों चरण रहे। त्रेता में तीन और द्वापर में धर्म के दो ही चरण रह गये। शकुनि को संघर्षपूर्ण द्वापर का अवतार माना गया है। द्वापर में धर्म के टूटे हुए दो चरण ही शकुनि की दो भुजाएँ हैं। महाभारत के युद्ध को उद्दीप्त करने में शकुनि विशेष रूप से सहायक था।

३. "ग्रह उपग्रह···· ···· ···· ····लेख

यहाँ कवि ने नियति को अखिल विरह की नियंत्रिका शक्ति के रूप में स्वीकार किया है।

४. "किन्तु उलझे थे···· ···· ····नेत्र"।

युधिष्ठिर पृथ्वी के मटमैले धरातल और भौतिकता से ऊँचे हुए ऊर्ध्व चेता थे। वे आकाश-तत्व के प्रतीक तथा समस्त भौतिक विकारों से रहित थे।

५. **अलंकार—(१) सांगरूपक**—सृष्टि में चौपड़ के खेल का अंगों-सहित आरोप किया गया है—

(क) मृत्तिका की गोद चौपड़ बिछने का स्थान है।

(ख) 'ग्रह-उपग्रह' गोटें हैं।

(ग) अदृश्य लिपि (नियति) पासे हैं।

(घ) संसार का मनुष्य मात्र खेलने वाला है।

(२) 'द्यूत' में 'चौपड़', 'पृथ्वी' में 'गोट', 'ग्रह-उपग्रह' में 'गोट', 'अदृश्य लेख', में 'पासों', 'युधिष्ठिर' में 'आकाश', 'अस्थि' में 'पासे' का आरोप होने से रूपक।

(३) शकुनि की बाहुओं में धर्म के दो टूटे हुए चरणों का आरोप होने से रूपक।

(४) 'वही मातुल······················राहु' में रूपक।

(५) 'सुबल सुत························क्षेत्र' में रूपक।

युधिष्ठिर पर आज···· ···· ····सोत्साह ॥२५-२८॥

शब्दार्थ—अतिशय=अत्यधिक। मुग्ध=प्रसन्न। कुरु-पंचाल=कुरु-पांचल राज्य। पुष्ट आर्यावर्त्त=आर्यावर्त्त शक्ति प्राप्त करेगा। "सरोवर पर अब न काई का रहेगा पर्त्त"=लाक्षणिक प्रयोग है, जिसका अर्थ कहीं अत्याचार, द्वेष आदि बुराइयों का न रहना है। युगल=दोनों। मधु मकरन्द=प्रसन्नता और आह्लाद। नरनाह=राजा, राजा धृतराष्ट्र। तनय=पुत्र। सोत्साह=उत्साह के साथ।

सन्दर्भ—युधिष्ठिर महाराज धृतराष्ट्र से शुभाशीष लेने आते हैं। धृतराष्ट्र

युधिष्ठिर से प्रसन्न हैं। वे पांडवों का राज्य-भाग उनको देने और पांचाल-नरेश द्रुपद से मित्रता का सम्बन्ध स्थापित करने के लिए दुर्योधन से कहते हैं—

व्याख्या—आज धृतराष्ट्र दुर्योधन पर बहुत अधिक प्रसन्न है। वे सोचते हैं कि युगों से बिछुड़े हुए दोनों राष्ट्र आज मिलेंगे और कुरु-पांचाल राज्य के मिलने से आर्यावर्त्त की शक्ति दृढ़ होगी। राज्यों के सरोवर में कलह, द्वेष आदि की जो काई छाई हुई है, वह अब न रहेगी।

धृतराष्ट्र अपने पुत्र सुयोधन से कहते हैं कि कौरव-पांडव दोनों मिलकर आनन्दोत्सव मनाये। आज दोनों द्वेष और कलह को 'प्रेम' के मकरन्द में डुबो दें। अन्त में वे सुयोधन से कहते हैं कि हे पुत्र ! तुम उत्साह के साथ युधिष्ठिर का स्वागत करते हुए उनका उचित भाग दो और पांचाली द्रौपदी के कुलवधू होने पर पांचाल राज द्रुपद का अभिनन्दन करो।

अलंकार—(१) "सरोवर·······पर्त्त" में **प्रतीकात्मकता**।

(२) 'जन-मन' और 'मधु-मकरन्द' में **अनुप्रास**।

युधिष्ठिर का करूँ····   ····   ····यह बात ॥२१-२५॥

शब्दार्थ—किस हेतु=किस लिए। रवि को ग्रस रहा है केतु=सूर्य को राहु ग्रस रहा है। अर्थात् कौरवों पर पांडव छाते जा रहे हैं। पद दलित=कुचला हुआ। उत्कर्ष=उन्नति, विकास। विशद हो पंचाल=पांचाल राज्य का विस्तार हो। पांचाली=द्रौपदी। जटिल=उलझा हुआ। जामात्र=दामाद। दुहिता=पुत्री। अपकर्ष=पतन। अनुज्ञा=आज्ञा। सौ बात की यह बात=सार रूप में मुख्य बात यह है।

सन्दर्भ—धृतराष्ट्र सुयोधन का पांडवों को देय भोग देने और पांचाल-नरेश का अभिनन्दन करने को कहते हैं। सुयोधन उनके इस प्रस्ताव को अस्वीकार करता हुआ कहता है—

व्याख्या—हे पिता ! आप युधिष्ठिर का अभिनन्दन करने को कहते हैं। परन्तु मैं किसलिये अभिनन्दन करूँ, क्या मैं पांडवों का इसलिए अभिनन्दन करूँ कि आज सूर्य को राहु ग्रस रहा है अर्थात् कौरवों पर पांडव हावी होते जा रहे हैं।

जो द्रुपद पद-दलित था, आज उसका उत्कर्ष हो रहा है। क्या मैं इस उत्कर्ष के लिए हर्ष मनाऊँ !

द्रुपद ने अपनी पुत्री द्रौपदी का विवाह करके बहुत बड़ी राजनैतिक चाल चली है। इस रूप में वह पांचाल राज्य को विशाल बनाना चाहते हैं। उन्होंने द्रौपदी नहीं दी, अपितु जादू डाल दिया है।

पांचाल-नरेश द्रुपद ने राज्य के भूखे युधिष्ठिर को अपना दामाद बनाया। इस प्रकार उन्होंने विषम राजनीतिक खेल खेला है। उन्होंने कुरुवंश को अपनी पुत्री के रूप में विष-पात्र दे दिया है। द्रुपद की इस योजना में द्रुपद का उत्कर्ष और पांडवों का अपकर्ष है। हे पिता ! क्या मैं इसी लिए हर्ष मनाऊं।

मैं अपने दृढ़ स्वार्थ के कारण वर्तमान स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं चाहता। युधिष्ठिर (पांडवों) का तभी कुछ मिलेगा, जबकि वह कौरवों से छीना जायगा। परन्तु मैं अपने वर्तमान किसी भी अधिकार और स्वत्व को छोड़ना नहीं चाहता। सार रूप में सौ बात की एक बात यह है कि मैं राज्य और अधिकारों में से पांडवों को कुछ भी देना स्वीकार नहीं करता हूँ।

अलंकार—(क) 'रवि को ग्रस रहा है केतु' में **प्रतीक शैली, रूपक अलंकार**।

(ख) 'दा न..........डाल' में **अपन्हुति**।

(ग) 'खिलाया है खेल' मुहावरे का सुन्दर काव्यात्मक प्रयोग हुआ है।

(घ) "दुहिता नहीं दे विष-पात्र' में **अपन्हुति**।

सुयोधन कहता.... ....अनजान ॥३६-३७॥

शब्दार्थ—चाह = इच्छा। "पुत्र..........चाह" = सुयोधन जो कुछ कह रहा था, वह धृतराष्ट्र ही की इच्छा थी। मतिमान = बुद्धिमान और नीतिमान।

सन्दर्भ—धृतराष्ट्र ने दुर्योधन से पांडवों को उनका उचित भाग देने को कहा, परन्तु दुर्योधन ने इसे अस्वीकार कर दिया। दुर्योधन की वाणी यथार्थ में धृतराष्ट्र की ही इच्छा थी। धृतराष्ट्र इस विषय में विदुर से सम्मति देने को कहते हैं —

व्याख्या—सुयोधन कहता गया और धृतराष्ट्र उसके कथनों को सुनते चले गये। दुर्योधन के मुख से जो बचन निकल रहे थे, वे धृतराष्ट्र का ही प्रति-

निधित्व करते थे । अर्थात् वे भी दुर्योधन से अधिकार लेकर पांडवों को देना नहीं चाहते थे । परन्तु वे कुछ विचलित हो गये, तब मतिमान और नीतिज्ञ विदुर ने कहा कि हे अनुज ! आप धर्म से अनजान नहीं है । अतः आपको धर्म-युक्त और न्याय-युक्त कार्य ही करना चाहिए ।

विशेष—धृतराष्ट्र ने आरम्भ में अपने ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधन को प्रेरित किया कि वह युधिष्ठिर का अभिनन्दन करे । उनका मन केवल अपनी इच्छाओं से ही शासित है । धृतराष्ट्र की सौ इच्छाएँ उनके सौ पुत्रों के रूप में फूलती-फलती और पराभव और विनाश को प्राप्त होती हैं । अंधे धृतराष्ट्र अपनी इच्छाओं को विवेक से शासित नहीं कर पाते । वह अपनी इच्छाओं के वश में हैं । दुर्योधन धृतराष्ट्र की अव्यक्त आशाकांक्षाओं का ही घनीभूत स्वरूप है । दुर्योधन जो कहता—करता है, धृतराष्ट्र के ना-ना कहते—करते हुए भी वह सब धृतराष्ट्र के अपने अचेतन की ही अभिव्यक्ति है ।

अलंकार—"पुत्र.......... चाह" में **उत्प्रेक्षा** । और उनको पैतृक पाप दे दें पांचाली द्रौपदी अब कुरु-वंश की कुलवधू है अतः उसके पिता पांचाल नरेश द्रुपद का अभिनन्दन हो । दोनों कुलों में मेल-जोल बढ़े । परन्तु अपने स्वार्थ में अन्धे बने हुए दुर्योधन ने पिता के इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया । धृतराष्ट्र को दुर्योधन का हठ ही प्रिय लगा । क्योंकि दुर्योधन की वाणी के रूप में उन्हीं के हृदय के भाव प्रकट हो रहे हैं ।

२. **"पुत्र की वाणी.... ....चाह"** ।

"धृतराष्ट्र अनयन" अचेतन मानस, यानी इनकॉन्शिमेंट के प्रतीक हैं ।

स्वयम् प्रज्ञाचक्षु.... ....सब संसार ॥३८-३६॥

शब्दार्थ—प्रज्ञाचक्षु=ज्ञानी, अन्तर के खुले हुए नेत्र । सिद्ध पैतृक दाय= जो पांडवों का न्याय संगत अधिकार है ।

सन्दर्भ—यहाँ विदुर का कथन युधिष्ठिर के प्रति है । वे युधिष्ठिर को उनका पैतृक अधिकार देने का समर्थन करते हुए कहते हैं—

व्याख्या—हे नरनाह आप स्वयं प्रज्ञाचक्षु और ज्ञानी हैं । इसलिए आपके द्वारा न्याय ही होना चाहिए । युधिष्ठिर जिस पैतृक अधिकार के अधिकारी हैं वह उनको दिया जाना चाहिए ।

युधिष्ठिर सत्यवादी और धर्म के अवतार हैं। उनके इन गुणों को समस्त संसार स्वीकार करता है।

विशेष—१. युधिष्ठिर के चरित्र की विशेषताओं का उद्घाटन हुआ है। वे सत्यवादी और धर्म के अवतार हैं।

चुप न रह पाया···· ···· ····**कर्म** ॥४०-४३॥

शब्दार्थ—व्यंग शर से=व्यंग्य वाणों से। आघात=चोट।

सन्दर्भ—विदुर युधिष्ठिर की सत्यवादिता और धर्म परायणता की प्रशंसा करते हुए उनका पैतृक अधिकार देने का समर्थन करते हैं। दुर्योधन उनके कथन का विरोध करता हुआ कहता है—

व्याख्या—युधिष्ठिर को सत्यवादी एवं धर्म-परायण बतलाते हुए विदुर ने जो उनको पैतृक अधिकार देने की बात कही, उसको सुनकर दुर्योधन चुप न रह सका। उसको महात्मा विदुर की नीति पूर्ण बात रुचिकर न लगी। वह अपने व्यंग्य वाणों से सत्य पर आघात करने लगा।

सत्य क्या है और उसका स्वरूप क्या है, इस बात पर कोई सर्व-सम्मत मान्यता नहीं है। कोई मौन रहता है, इसीलिए वह सत्यवादी है और उसकी सत्यवादिता के समर्थन में अन्य लोग बोला करते हैं। युधिष्ठिर जिनको धर्म का अवतार कहा गया है, उनके हाथ तो केवल कौर ही गिनना अर्थात् पेट ही भरना जानते हैं। जो धर्म कौरवों के कौरों पर पल रहा है, वह बहुत दिनों तक भिक्षुकों के कर्म कर चुका है।

विशेष—दुर्योधन के कथन में तीखा व्यंग्य है। उसके कथन उसके हृदय की कुभावना को व्यक्त करते हैं।

धर्मसुत नृप-तनय···· ···· ····**पार्थ** ॥४४-४५॥

शब्दार्थ—धर्मसुत=धर्म पुत्र युधिष्ठिर। भिक्षुक=भिखारी। स्वतः=स्वयं ही। अम्बिका नन्दन=अम्बिका के पुत्र अर्थात् धृतराष्ट्र।

सन्दर्भ—यहाँ विदुर का कथन धृतराष्ट्र के प्रति है। वे युधिष्ठिर को युवराज पद देने का समर्थन करते हुए कहते हैं—

व्याख्या—विदुर कहते हैं कि हे कुरुराज ! धर्म सुत और नृप-तनय होकर

भिक्षुक बनें, यह शोभनीय बात नहीं है। अर्थात् युधिष्ठिर जो राजपुत्र हैं और धर्म-सुत करके विख्यात हैं, वे भिक्षुक बनकर रहें, यह उचित नहीं है। युधिष्ठिर तो हस्तिनापुर के स्वतः ही युवराज हैं। हे कुरुराज ! अब आप स्वार्थ की भावना को हृदय से निकालकर न्याय कीजिए। क्या युधिष्ठिर युवराज के पद पर प्रतिष्ठित नहीं थे ? अतः धर्म और न्याय की यही माँग है कि युधिष्ठिर को उनका स्वत्व और अधिकार दिया जाय।

पुन विदुर की बात····　　····　　····प्रवीण ॥४६-४८॥

शब्दार्थ—पृथा के ज्येष्ठ=पृथा (कुन्ती) के ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिर। वागार्थ=बात चीत में। विछोह=पृथक होना। अर्थात् दुर्योधन को जो अधिकार दिये जा चुके हैं, वे उससे अलग न किये जायँ। आसीन=सुशोभित।

सन्दर्भ—विदुर ने युधिष्ठिर को युवराज पद पर सुशोभित करने का औचित्य बतलाया। धृतराष्ट्र को विदुर की यह मंत्रणा न्याय संगत तो जान पड़ी, परन्तु दुर्योधन के प्रति उनके मन में मोह अधिक था। वे यह नहीं चाहते थे कि जिस युवराज पद पर दुर्योधन आसीन है, उस गौरव पूर्ण पद पर उसे हटाकर युधिष्ठिर को प्रतिष्ठित कर दिया जाय—

व्याख्या—विदुर ने युधिष्ठिर को युवराज पद पर प्रतिष्ठित करने का औचित्य धृतराष्ट्र को बतलाया। विदुर की बात को सुनकर युधिष्ठिर प्रसन्न होकर बोले कि आप बहुत बड़े नीतिमान हैं और समस्त मन्त्रियों में श्रेष्ठ हैं, क्योंकि आपने न्याय पक्ष का समर्थन किया है।

धृतराष्ट्र ने विदुर की नीति पूर्ण मन्त्रणा को सुनकर कहा कि आप की कही हुई नीति से मैं सहमत हूँ, किन्तु मुझे अपने पुत्र दुर्योधन पर ही मोह है। आप तो ऐसी युक्ति बतावें, जिसमें इन बातों में भी दुर्योधन को युवराज पद से वंचित न होना पड़े। आज जिस युवराज पद की शोभा दुर्योधन बढ़ा रहा है, हे सुन्दर नीति में प्रवीण आज मैं उसे दूसरे को कैसे दे दूँ।

इसलिए····　　····　　····पार्थ ॥४९-५५॥

शब्दार्थ—सन्त गृहस्थ=गृहस्थ होकर सन्त धर्म का पालन करने वाले विदुर। परित्यक्ता-सी=त्यागी हुई सी। देवेश=इन्द्र। क्लांत=आक्रमण से आक्रान्त। अन्तर्वेदिका=आर्यावर्त्त।

सन्दर्भ—यहाँ धृतराष्ट्र का कथन विदुर के प्रति है। यद्यपि युधिष्ठिर न्याय से युवराज पद के अधिकारी हैं, परन्तु अब इस पद पर दुर्योधन सुशोभित है। अतः वे दुर्योधन को इस पद से हटाकर युधिष्ठिर को आसीन करना नहीं चाहते। वे युधिष्ठिर को खांडवप्रस्थ का राज्य दे देते हैं—

व्याख्या—हे नीति-प्रवीण सन्त विदुर जिस युवराज पद पर दुर्योधन आसीन है, वह युधिष्ठिर को किस प्रकार दूँ। इसलिए मैं युधिष्ठिर को पुरातन 'भूमि खांडवप्रस्थ देना चाहता हूँ। आज खांडव प्रस्थ की ऊसर भूमि परित्यक्ता-सी पड़ी हुई है, परन्तु इस भूमि पर कुरुवन्श के राजा राज्य करते रहे हैं। पूज्यनीय महाराज ययाति यहीं के राजा थे, जिनको राजा के रूप में पाकर मनुष्य जाति सनाथ हो रही थी।

आज यदि खाँडवप्रस्थ ऊजड़ पड़ा है, तो कोई बात नहीं है। युधिष्ठिर अपने बाहुबल से इसे समृद्धशाली बना लेंगे और यहाँ के राजा बनेंगे।

युधिष्ठिर खाँडवप्रस्थ के राजा होकर नाग लोगों के उपद्रव को शान्त करेंगे और हस्तिनापुर में जो आभीर लोग आकर आये दिन उपद्रव करते हैं, उनको भी रोकेंगे।

यमुना नदी के उस पार खांडवप्रस्थ बसे और वह हस्तिनापुर का पश्चिम द्वार बनकर उसकी रक्षा करे।

युधिष्ठिर खांडवप्रस्थ की बंजर भूमि को बसाकर पुरुषार्थ दिखावें और इस प्रकार वे अन्तर्वेद के रक्षक बनें।

विशेष—धृतराष्ट्र युधिष्ठिर को खांडवप्रस्थ की भूमि देना निश्चित करते हैं। यह हस्तिनापुर के पश्चिम में यमुना के उस पार थी। यह कुरुवंश के राजाओं के द्वारा शासित होती आई थी, परन्तु अब निर्जन पड़ी हुई थी। यहाँ से होकर नाग और आभीर जातियाँ हस्तिनापुर में आकर उपद्रव किया करती थीं।

सांध्य तारक···· ···· ····राहु ॥५६-६०॥

शब्दार्थ—सांध्य तारक की दिशा में=संध्या का तारा जिस दिशा में

निकला है, अर्थात् पश्चिम दिशा में। कौन्तेय=कुन्ती की पुत्री अर्थात् युधिष्ठिर आदि। अग्नि-प्रेरित=द्रौपदी से तात्पर्य है। आग्नेय=अर्जुन का धनन्जय नाम अग्नि का पर्याय है। कहा जाता है कि स्वर्ग में जो इन्द्र है, पृथ्वी पर वही अग्नि है। श्री वार्णय=लक्ष्मी का वरण करने वाले। चतुर्दिक=चारों ओर।

सन्दर्भ—यहाँ धृतराष्ट्र की आज्ञा से युधिष्ठिर के द्वारा खांडवप्रस्थ के बसाने का वर्णन है। धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को खांडवप्रस्थ बसाने की आज्ञा दी। युधिष्ठिर ने वहाँ जाकर अपने पुरुषार्थ से जंगल में मंगल कर दिया।

व्याख्या—धृतराष्ट्र के आदेश को पाकर युधिष्ठिर अपने चारों भाइयों सहित जिस ओर संध्या का तारा निकलता है अर्थात् हस्तिनापुर से पश्चिम की ओर चल पड़े। कुन्ती के पुत्र होमजा द्रौपदी के द्वारा प्रेरित, धीर, वीर और अजेय थे।

धनंजय अर्जुन युधिष्ठिर के बाहुवल बने और लक्ष्मी का वरण करने वाले पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान श्रीकृष्ण उनके सखा थे।

अर्जुन ने इन्द्र से मित्रता कर दिव्य रथ और शास्त्रास्त्र प्राप्त किये। उनको इन्द्र से शाश्वत मित्रता का वरदान मिला।

विश्वकर्मा के पुत्र मय ने अपने शिल्प-कौशल से खांडवप्रस्थ के महलों का निर्माण किया। दुर्योधन तो राजा ही था, परन्तु युधिष्ठिर राजाओं के भी राजा हो गये।

युधिष्ठिर के चारों भाई इस प्रकार थे, मानों उनकी चार भुजाएँ ही हों। सारे राजा उनकी आधीनता स्वीकार कर और कर देकर उनको उसी प्रकार सम्मान देते थे, जिस प्रकार विष्णु को राहु से अमृत-घट मिला था।

विशेष—१. 'चतुर्दिक..........राहु' में दृष्टान्त।

२ 'पूर्ण पुरुषोत्तम.... ....वरदान।"

"दिव्यास्त्रों की प्राप्ति के लिए अर्जुन की स्वर्ग-यात्रा प्रसिद्ध है। यज्ञपुरुष श्रीकृष्ण से अर्जुन का सम्बन्ध सहकारी मित्र और मंत्रदाता उपदेष्टा का है।

कृष्णार्जुन ने खांडव वन को जलाकर इन्द्रप्रस्थ नगर की स्थापना के लिए भूमि सिद्ध की थी।"

—भूमिका

मथित सागर····   ····   ····होते रिक्त ॥६१-६३॥

शब्दार्थ—पार्थ = युधिष्ठिर। सुधाधर = अमृत को धारण करने वाला अर्थात् चन्द्रमा। अमरेन्द्रपुर-सा = इन्द्रपुरी के समान। चक्रधर = चक्रसुदर्शन धारण करने वाले। हर वाट = प्रत्येक गली।

सन्दर्भ—यहाँ कवि इन्द्रप्रस्थ पुरी के वैभव और समृद्धि का वर्णन कर रहा है—

व्याख्या—इन्द्रप्रस्थ नगरी में विराजमान युधिष्ठिर इन्द्र के समान थे। उनके द्वारा समस्त वसुधा सागर के समान मथित थी। अर्थात् समस्त पृथ्वी और उसके राजा उनके वशवर्ती हो गये थे। अमृत को धारण करने वाले चन्द्रमा से युक्त इन्द्रपुरी के समान महान् समृद्धि और वैभव से युक्त इन्द्रप्रस्थ शोभा दे रहा है।

महाराज युधिष्ठिर सुदर्शन चक्रधारी श्रीकृष्ण जी से सरक्षित थे। इस प्रकार इन्द्रप्रस्थ पुरी की प्रत्येक गली में सुख की सरिता प्रवाहित हो उठी थी। ऐसा लगता था मानो सारी वसुधा की संपदा को मथकर इन्द्रप्रस्थ पुरी का शृंगार किया गया हो।

इन्द्रप्रस्थ पुरी में युधिष्ठिर सप्त-सरिता तीर्थ से अभिषिक्त थे। वहाँ रत्नों की न्यौछावर होती थी, परन्तु हाथ पर कभी रिक्त न होते थे।

विशेष—१. यहाँ इन्द्रप्रस्थ पुरी की समृद्धि और वैभव का वर्णन हुआ है।

२. अलंकार—(क) 'मथित ··········समान' में **उपमा** अलंकार।
(ख) 'सुधाधर ··· ·······महान्' में **उपमा**।
(ग) 'सुख-सिन्धु सरिता' में **रूपक**।
(घ) 'सप्त सरिता तीर्थ··········अभिषिक्त' में उपमा।
(ङ) 'रत्न न्यौछावर···· ···· ··· रिक्त' में **विशेषोक्ति**
(कारण के होने पर भी कार्य न होने का वर्णन है।)

द्रौपदी सम्राज्ञि····   ····   ····शान्ति ।।६४-६५।।

शब्दार्थ—सम्राज्ञि=महारानी । भूतल की शची=पृथ्वी की इन्द्राणी । अग्निजा=द्रौपदी । कांति=तेज । प्रसारित=फैला रहे थे ।

सन्दर्भ—यहाँ कवि ने युधिष्ठिर की समृद्धि और वैभव का वर्णन किया है—

व्याख्या—युधिष्ठिर इन्द्रप्रस्थ के सम्राट बने और द्रौपदी पृथ्वी की इन्द्राणी के समान सम्राज्ञि बनी । होमजा द्रौपदी की प्रेरणा से ही युधिष्ठिर को यह श्री सम्पदा और समृद्धि प्राप्त हुई ।

लक्ष्मीपति चतुर्भुज भगवान विष्णु की तरह ही युधिष्ठिर की कांति थी । उनके चारों भाई चारों दिशा में सुख और शान्ति का प्रसार कर रहे थे ।

अलंकार—(क) 'द्रौपदी············शची' में **रूपक** ।
(ख) अनुप्रास ।
(ग) 'चतुर्भुज······ ····कान्ति' में **उपमा** ।

बढ़े नारायण सखा····   ····   ····शिशुपाल ।।६६-६८।।

शब्दार्थ—नारायण सखा=नारायण अर्थात् श्रीकृष्ण के मित्र अर्जुन । पवन सुत -भीम । धर दबाई उदय गिरि की कोर=दक्षिण दिशा में जाकर उदय गिरि को विजय किया । दिये झकझोर=पराजित कर दिये । चक्रहत= कृष्ण के सुदर्शन चक्र से मारा गया ।

सन्दर्भ—यहां युधिष्ठिर के इन्द्रप्रस्थ . के राजा होने के पश्चात् राजसूय यज्ञ और दिग्विजय का वर्णन किया गया है—

व्याख्या—युधिष्ठिर ने इन्द्रप्रस्थ पुरी का सम्राट बनने के पश्चात् राजसूय यज्ञ किया । इसमें श्रीकृष्ण अपने सखा अर्जुन हिमालय की ओर विजय करने के लिये गये और भीम ने दक्षिण दिशा में जाकर उदयगिरि को विजय किया । नकुल ने पश्चिम दिशा में जाकर राजाओं को पराजित किया और सहदेव सुदूर दक्षिण में विजय करते हुए आगे बढ़े । उनको देखकर वन के मोर नृत्य करते थे ।

युधिष्ठिर ने जो राजसूय यज्ञ किया उसमें देश का समस्त नृप-समाज

उपस्थित हुआ । युधिष्ठिर ने चक्रवर्ती की पदवी धारण की । इस राजसूय यज्ञ में शिशुपाल अपनी वाचलता और उदण्डता के कारण श्रीकृष्ण के चक्र सुदर्शन से मारा गया ।

हुआ मर्माहत···· ····**ऐश्वर्य** ॥६९-७२॥

शब्दार्थ—पार्थ = युधिष्ठिर आदि पांडव । श्री = सम्पदा और वैभव । सीधी कुटिल दो भृकुटियों की रेख = भृकुटियाँ टेढ़ी होती हैं, किन्तु क्रोध में सीधी हो जाती हैं । अभेद्य = न भेदने वाले । प्राण-दुर्ग = प्राण रूपी किला । सव्यसाची = अर्जुन । छिद्रहीन अछेद्य = उसको कोई छेद नहीं सकता अर्थात् उसे कोई पराजित नहीं कर सकता । वृकोदर = भीमसेन । पुरोचन = एक शिल्पी जिसके द्वारा दुर्योधन ने पांडवों को जलाकर भष्म कर देने के लिये लाख का महल बनवाया था ।

सन्दर्भ – दुर्योधन ने पांडवों का विनाश करने के अनेक प्रयास किये, परन्तु सभी असफल रहे । पांडवों की शक्ति, श्री और समृद्धि की वृद्धि से वह चिन्तित हो उठा । यहाँ इसी प्रसंग का वर्णन है –

व्याख्या—युधिष्ठिर ने अपने पुरुषार्थ से इन्द्रप्रस्थ पुरी को श्री और सम्पदा से सम्पन्न कर दिया । पांडवों के इस उत्कर्ष को देखकर दुर्योधन मर्माहत हो गया । उसकी दोनों भृकुटियों की रेखायें सीधी हो गईं और वह पांडवों के विनाश के लिए चिन्तित हो उठा ।

इधर पांडवों की शक्ति एवं समृद्धि का विकाश होता जा रहा था । दुर्योधन ने पाडवों को नष्ट करने के जो-जो उपाय किये, उनमें उसको सफलता नहीं मिली । उसने भीम को जल में डुबाने का प्रयत्न किया, परन्तु उनके प्राणों को अभेद्य दुर्ग बचा गया । अर्जुन का पराक्रम इतना प्रबल और अछेद्य था कि उसके सामने दुर्योधन की एक न चली ।

दुर्योधन ने पुरोचन से पांडवों को जलाकर भस्म कर डालने के लिए लाक्षागृह का निर्माण कराया, परन्तु पांडव तो उससे बचकर निकल गये और पुरोचन ही उसमें जलकर नष्ट हो गया । इस घटना से संसार को यह प्रकट हो गया कि साँच को कहीं आँच नहीं है ।

शकुनी ने दुर्योधन से व्यंग्य पूर्ण शब्दों में कहा कि पांडवों ने जो शक्ति और

समृद्धि का अर्जन किया है, वह कितना आश्चर्य पूर्ण है। उनके ऐश्वर्य की आज विश्व में समानता ही कहाँ है ?

विशेष—'कुटिल भृकुटियों की रेखा सीधी हो गई', 'साँच क्या आँच' लोक-प्रसिद्ध लोकोक्तियों का सुन्दर काव्यात्मक प्रयोग हुआ है।

क्या करूँ···· ···· ···· मर्म ॥७३-७७॥

शब्दार्थ - निरुपाय=विवश, मेरा कुछ भी वश नहीं चलता। युक्ति-धन बरसो=कुछ अचूक उक्ति बतलाओ। सुहानी=अच्छी लगने वाली। घात= चोट। मर्म=भेद।

सन्दर्भ—अपनी असफलता एवं पांडवों की सफलता एवं समृद्धि से दुर्योधन चिन्तित हो जाता है। वह शकुनि से कोई ऐसी युक्ति पूछता है, जिससे पांडवों का विनाश हो सके।

व्याख्या—दुर्योधन ने शकुनि से कहा कि मैं सब प्रकार से विवश हूँ। अब मैं क्या करूँ। पांडवों के नाश के लिये मेरे द्वारा किये गये सारे प्रयास असफल हो गये। मेरे स्वजन शत्रु पांडवों की सुख समृद्धि बढ़ती ही जा रही है और उसे निरुपाय होकर देखता हूँ।

पुरोचन ने मेरे कहने से पांडवों को भस्म कर देने के लिए मायावी भवन के समान लाक्षागृह बनाया। परन्तु पांडव उससे भी बच गये और उसमें पुरोचन ही जल गया। जिस प्रकार कृष्ण पांडवों के लिए हैं, हे मामा शकुनि तुम उसी तरह मेरे लिए घनश्याम बन जाओ और युक्ति घन की वर्षा करो अर्थात् कुछ ऐसी युक्ति बतलाओ जिससे पांडवों का नाश हो सके और मेरे प्राण बच सकें तुम्हारी युक्ति से मुझे दुःखों से मुक्ति मिले और वह पांडवों के प्राणों के लिए विष बन जाय।

दुर्योधन ने अपने स्वजन पांडवों के सुख और समृद्धि से दुःखी हो कहा था। उसने शकुनि से पांडवों के विनाश की युक्ति पूछी। इससे शकुनि को प्रसन्नता हुई और वह दोनों कुलों का नाश करने की घात करने लगा।

शकुनि ने दुर्योधन से कहा कि यह सबसे बड़ा नृप-धर्म है कि जिस प्रकार भी हो सके, स्वजन शत्रु का भेद जानकर उसे नष्ट कर दिया जाय।

विशेष—'कृष्ण..........सुयोधन के प्राण' में रूपक अलंकार।

युधिष्ठिर को व्यसन....   ....ध्यान ॥७८-७९॥

शब्दार्थ—व्यसन=आदत, स्वभाव। द्यु त-क्रीड़ा=जुआ खेलना।

व्याख्या—युधिष्ठिर की सुख-समृद्धि को देखकर दुर्योधन के आग-सी लग गयी। वह उनका सुख-सौभाग्य सहन नहीं कर सका। शकुनि के सामने उसने अपना यह दुःख प्रकट किया। शकुनि ने सोचा—पांडवों का पतन एक ही प्रकार से हो सकता है और वह द्यु त से। युधिष्ठिर को द्यु त का व्यसन है, परन्तु इस कला की उनको समुचित जानकारी नहीं है। वे इसमें निश्चय ही हारेंगे। द्यु त की छल-पूर्ण कला के द्वारा पांडवों पर विजय निश्चित है। इसी चतुरता से सौभाग्य लक्ष्मी द्रौपदी को भी हम निश्चय ही वश में कर लेंगे। और हारते हुए युधिष्ठिर द्रौपदी को अवश्य ही दावँ पर लगा देंगे।

चतुर्थ सर्ग

विषयवस्तु

शकुनि की योजना से युधिष्ठिर जुआ खेलने के जाल में फँस जाते हैं। वे सारा राजपाट हारकर अपनी पत्नी द्रौपदी तक को भी दाँव पर लगा देते हैं। धृतराष्ट्र की भरी सभा में दुर्योधन और दुःशासन आदि द्रौपदी को निर्वसन करने का प्रयास करते हैं। भीष्म, द्रौण आदि भी चुप होकर यह सब कुछ देखते रहते हैं। द्रौपदी चारों ओर से निराश होकर अपनी लज्जा की रक्षा के लिए आर्त्त-स्वर से भगवान श्रीकृष्ण से पुकार करती है। दुःशासन द्रौपदी का चीर खींचता हुआ थक जाता है, परन्तु उसे उसका छोर नहीं मिलता। कौरवों के द्वारा नारी का यह अपमान ही कौरवों के विनाश का कारण बनता है। युधि-: अपने भाइयों और द्रौपदी सहित वन-वन में मारे-मारे फिरकर अज्ञात वास की अवधि व्यतीत करते हैं। इस अवधि में उनकी वीरता और यश का प्रसार होता है तथा अनेक राजा उनके मित्र बन जाते हैं। कौरवों पर द्रौपदी के अभिशाप की छाया काल बनकर मँडरा रही थी। वह कृष्ण के संधि प्रस्ताव को भी अस्वीकार कर देता है। महाभारत का १८ दिवस तक भीषण युद्ध होता है, जिसमें पांडव विजयी होते हैं और कौरवों का विनाश होता है।

शकुनि जीता····   ····उपकरण ॥१॥

शब्दार्थ—पार्थ=युधिष्ठिर। यामिनी=रात्रि। रात्रि का अवतरण=रात्रि आ गई। दिव=दिन। अपहरण=बलपूर्वक छीनना। उपकरण=सामग्री। देवदत्ता यज्ञजा=देव-यज्ञ से उत्पन्न अर्थात् द्रौपदी। राक्षस=दुर्योधन दुःशासन आदि। दिव की प्रभा=दिन का प्रकाश, स्वर्ग की प्रभा, द्रौपदी।

सन्दर्भ—शकुनि ने द्यूत का कपट-जाल बिचाकर युधिष्ठिर को हरा दिया।

युधिष्ठिर सामान्य पार्थिव वस्तु की तरह द्रौपदी तक को दाँव पर लगाकर हार गये—

व्याख्या— द्यूत में युधिष्ठिर हार गये और शकुनि जीत गया। युधिष्ठिर आदि पांडवों के सामने निराशा की रात्रि उतरकर आ गई। निशाचर रूप दुर्योधन, दुःशासन आदि दिन या स्वर्ग-प्रभा द्रौपदी को लज्जा-हीन करने के लिए उसके चीर का अपहरण करने लगे। युधिष्ठिर ने जब सामान्य पार्थिव वस्तु की तरह अग्नि-कन्या सती द्रौपदी को दाँव पर लगा दिया, तब युधिष्ठिर अपने जीवन का चरम सत्य ही खो बैठे। उनके जीवन के आकाश का प्रकाश और सुख लुप्त हो गया और उनके सामने निराशा एवं अन्धकार के बादल उमड़ने लगे।

विशेष—१. **प्रतीक शैली**—निशाचर दुर्योधन, दुःशासन आदि के प्रतीक है। दिव की प्रभा द्रौपदी का प्रतीक है।

२. महाभारत के समय नारी का सम्मान सुरक्षित नहीं रह गया था। उसे सामान्य भौतिक पदार्थ की तरह जुए में दाँव पर लगा दिया जाता है, और भरी सभा में उसका चीर हरण किया जाता है।

थी निरस्त्रा···· ···· ····भीष्मव्रती ॥२॥

शब्दार्थ—एकवस्त्रा=केवल एक वस्त्र पहने हुए थी। ऋतुमती=जो स्त्री रजस्वला हो। अशिव=दीन। यज्ञजा=द्रौपदी। यज्ञेश=यज्ञ पुरुष अर्थात् श्रीकृष्ण। विनत लोचन=नेत्रों को नीचा किये हुए। कृप=कृपाचार्य।

सन्दर्भ – दुःशासन ने द्रौपदी का चीर हरण करके उसकी लज्जा को उघारना चाहा, द्रौपदी ने चारों ओर से निराश होकर श्रीकृष्ण की पुकार की और कृष्ण ने चीर को बढ़ाकर उसकी लज्जा की रक्षा की—

व्याख्या—दुष्ट दुःशासन ने भरी सभा में द्रौपदी का चीर उतारना प्रारंभ किया। इस समय द्रौपदी केवल एक वस्त्र पहने हुए थी और वह रजस्वला थी। दुष्ट और अविचारी दुःशासन ने उस नारी की इस अवश दशा का भी विचार नहीं किया। निरस्त्र होने के कारण चाहे वह जितनी अवश और दीन हो परन्तु उसके हृदय में अपमान की ज्वाला सुलग रही थी। वह चिता की लपट की तरह अशिव तो अवश्य थी, परन्तु वह सती थी। द्रौपदी की इस दारुण

दशा को भीष्म, द्रौण और कृपाचार्य जैसे महाबली और नीतिज्ञ अपने नेत्रों से देख रहे थे, परन्तु किसी से कुछ भी करते नहीं बना। यज्ञ-पुरुष श्रीकृष्ण यद्यपि दूर थे, परन्तु अग्नि-कन्या द्रौपदी की करुण पुकार उन्होंने सुन ली। वे द्रौपदी के चीर में ही समा गये। दुःशासन चीर खींचकर हार गया, किन्तु द्रौपदी को निर्वसन न कर सका। कृष्ण ने कृष्णा की लाज रखली।

विशेष—१. कृष्ण यज्ञ-पुरुष हैं ! और द्रौपदी अग्निजा है। इस प्रकार दोनों में भाई-बहन का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। यहाँ भाई ने बहन की लज्जा की रक्षा की।

२. अलंकार—(क) 'थी चिता की लपट-सी ही अशिव' में **उपमा**।

दुष्ट दुःशासन करो··· ···· ····**आमरण**।।३।।

शब्दार्थ—अग्निजा=द्रौपदी। निर्वसन=वस्त्रहीन। भूमिगत गंधक नदी =पृथ्वी के भीतर प्रवाहित होने वाली गंधक को नदी। आवरण ≈ पर्त, पर्दा। अयोनिज=जो योनि से उत्पन्न न हो, स्वयं भू=स्वयं जन्मा। अनल=अग्नि।

सन्दर्भ—दुःशासन द्रौपदी को निर्वसन करके उसकी लज्जा को उघारना चाहता है। कवि उसे सम्बोधन करता हुआ कहता है—

व्याख्या—हे दुष्ट दुःशासन ! तुम यज्ञजा द्रौपदी को निर्वसन न करो। पवित्र नारी की लज्जा का अपहरण शोभनीय नहीं है। जिस प्रकार पृथ्वी के अन्दर गंधक की धारा प्रवाहित रहती है और भूमि का ऊपरी पर्त हटाते ही वह उबलकर ऊपर आ जाती है उसी प्रकार द्रौपदी के वस्त्रों के नीचे अग्नि-प्रवाह उबल रहा है। वह वस्त्र को हटाते ही फूट पड़ेगा और इसके फूटते ही समस्त कौरव-वंश नष्ट हो जायगा। यह यज्ञ-कन्या द्रौपदी अपने शरीर में स्वयंभू अग्नि धारण किये हुए है। हे दुःशासन यदि तुम इसकी लपट छुओगे, तो उसको आमरण याद रखोगे।

विशेष—१. **अलंकार**—द्रौपदी में भूमिगत गंधक नदी का आरोप होने से **रूपक**।

२. भाव-साम्य।

"नृशंस कर्मन् त्वमनार्यवृत्त मा मा विवस्त्रां कुरु माँ विकर्षीः,
न मर्षयेयुस्तव राज पुत्रा सेन्द्राश्च देवा यदि ते सहायाः" ॥

—द्यूत पर्व

सहज पाई हुई···· ···· ····स्वरति ॥४॥

शब्दार्थ—निधि=खजाना, सम्पदा राज्यश्री=राज्य का वैभव और सम्पदा। स्वरति=अपनी अनुरक्ति।

सन्दर्भ—युधिष्ठिर द्यूत में राज्य-वैभव आदि सब कुछ हार गये। उन्होंने सहज ही पाई हुई निधि को सहज ही में खो दिया। इसी प्रसंग का कवि यहाँ वर्णन कर रहा है—

व्याख्या—यदि राजा यह मान भी ले कि सारा राज्य और खजाना मेरा है और मैं राष्ट्र का स्वामी हूँ, परन्तु बात ऐसी नहीं है। यथार्थ में राजा प्रजा है—वह प्रजा द्वारा राजा बनाया गया है। राज्य की सारी निधि प्रजा का धन और प्रजा की राज्यश्री है। वह राज्य और उसकी निधि को जिस सहज भाव से पाता है, उसी सहज भाव से उसे खो भी देता है। युधिष्ठिर ने इन्द्रप्रस्थ के राज्य के रूप में जो निधि पाई थी, उसको सहज ही में उन्होंने द्यूत में खो दिया। युधिष्ठिर में द्यूत की यह रति कैसे उत्पन्न हुई, जिसमें उन्होंने राज्य-लक्ष्मी और भाग्य-लक्ष्मी द्रौपदी को सामान्य भौतिक पदार्थ की तरह जुए के दाँव पर लगा दिया।

विशेष—"प्रजा का············राज्यश्री" में आधुनिक प्रजातन्त्र की भावना व्यक्त हुई है।

शमन मन का···· ···· ···· पापाचार्य था ॥५॥

शब्दार्थ—शमन=शान्त होना। दुष्कर=कठिन। धर्मसुत=युधिष्ठिर। पापाचार्य=पाप की दीक्षा देने वाला आचार्य।

व्याख्या—द्यूत में सर्वस्व हारकर युधिष्ठिर का मन अत्यधिक अशान्त हो रहा था। वन-गमन और वन में एकान्त चिन्तन के बिना उनकी मन की अशान्ति दूर होना बहुत ही मुश्किल कार्य था। इसलिए भी युधिष्ठिर का वन जाना अनिवार्य हो गया। धर्मसुत युधिष्ठिर ने वन में रहकर बड़े धैर्य से

पुण्य संचित किया । इधर पाप के आचार्य शकुनि से प्रेरित होकर सुयोधन पाप रत था ।

पास जिनके शकुनि···· ···· ····ग्रास थे ॥६॥

शब्दार्थ—सौ बली के बली=शक्तिशाली धृतराष्ट्र के सौ पुत्र । सुबलसुत=शकुनि । मृत्तिका के ग्रास=महाकाल के ग्रास ।

सन्दर्भ—यहाँ कवि वर्णन कर रहा है कि कौरवों को प्रेरित करने वाला शकुनि उनके लिए महाकाल के समान था—

व्याख्या—जिन कौरवों के समीप अर्थात् प्रेरणा देने वाला शकुनि था, समझ लो कि यम-दूत ही उसके पास हों । भाव यह है कि शकुनि कौरवों को महा विनाश की ओर ले जाने वाला था । वह उनको मृत्यु के समीप लिये जा रहा था । धृतराष्ट्र के शक्तिशाली सौ भाई इस कुटिल शकुनि के दास बन गये थे । इन कौरवों ने जिस दिन भरी सभा में द्रौपदी को अपमानित किया था, उसी दिन से और उसी पाप के परिणाम के कारण वे महाकाल के दास बन चुके थे ।

१. अलंकार— (क) 'शकुनि' में 'यम के दूत' का आरोप होने से रूपक ।
(ख) 'सौबली', 'सौ बली' में यमक ।
(ग) 'सौबली············थे' में अनुप्रास ।

२. लाक्षणिकता ।

३. भावसाम्य ।

"नूनमन्तः कुलस्यायं भविता नाचिरादिय ।
तथा हि कुरवः सर्वे लोभ, मोह परायणः ॥"

जो किसी का नहीं···· ···· ····अनर्थ है ॥७॥

शब्दार्थ—अर्थ=धन । टिका जिस पर सभ्यता का साज=सारी सभ्यता का जो आधार है । आसुरी=राक्षसी ।

सन्दर्भ—यहाँ कवि स्पष्ट करता है धन जहाँ सभ्यता के विकास का कारण है वहाँ वह अन्याय के सहयोग से आसुरी सम्पत्ति एवं विपत्ति भी बन जाता है—

व्याख्या—संसार में धन की बड़ी महत्ता है, परन्तु धन किसी का नहीं है। आज जो धनवान है, कल वह रंक हो सकता है। परन्तु इतने पर भी मनुष्य धन का दास बना हुआ है। धन के ऊपर ही इस संसार का समस्त व्यापार आधारित है। मानवीय सभ्यता का विकास धन के सहारे ही होता रहा है। सभ्यता का सारा साज-सँवार धन के ऊपर ही आश्रित है। परन्तु इतना महत्वपूर्ण अर्थ (धन) यदि अन्याय के प्रभाव में आ जाता है, तो वह आसुरी सम्पत्ति बन जाता है और जीवन में विपत्ति एवं अनर्थ को लाता है।

विशेष—यहाँ वर्तमान भौतिक युग का यथार्थ स्वरूप चित्रित हुआ है। जिसमें मनुष्य धन का दास हो रहा है, और सभ्यता का महल धन के आश्रय पर ही खड़ा हुआ है।

विविध जनपद····   ····   ····समर्थ थे ॥८॥

शब्दार्थ—अखिल=सम्पूर्ण। हित=लिए। अहंता=अहंकार। दृष्टि सब की मन्द थी=सभी का दृष्टिकोण संकुचित था।

सन्दर्भ—इस छन्द में कवि आर्यावर्त्त की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का चित्र उपस्थित कर रहा है—

व्याख्या—इस समय आर्यावर्त्त में अनेक जनपद थे। प्रत्येक क्षत्रिय राजा राज्य करता था, परन्तु सभी शासक अपने स्वार्थ एवं धन के लोभ में खोये हुए थे। आर्यावर्त्त की समृद्धि की दृष्टि से इन शासकों का कोई महत्व नहीं था। सभी राजा अपने स्वार्थ में अपने जनपद की संकुचित सीमा में ही घिरे हुए थे। उनको समस्त आर्यावर्त्त के हित-चिंतन का ध्यान नहीं था। सभी की दृष्टि ऐसी मन्द हो रही थी, अर्थात् सभी का दृष्टिकोण ऐसा संकीर्ण हो रहा था कि वे अपने-अपने अहंकार और ममत्व के वशीभूत हो रहे थे। वैसे सभी राजा चतुर,शक्तिशाली और सब प्रकार से समर्थ थे। परन्तु समस्त आर्यावर्त्त के संगठन और समृद्धि से उदासीन थे।

विशेष—तत्कालीन जनपदीय राजाओं की स्थिति का यथार्थ चित्रण हुआ है।

इसलिए भी युधिष्ठिर····   ····   ····कार्य था ॥९॥

शब्दार्थ—विजन वन=निर्जन जंगल। भावी=होनहार, नियति।

व्याख्या—युधिष्ठिर के वन-गमन के औचित्य को बतलाता हुआ कवि कहता है कि आर्यावर्त्त के जनपदों को संगठित करने की दृष्टि से भी युधिष्ठिर का वन-गमन अनिवार्य था। वनवास की अवधि उन्होने आर्यावर्त्त के राजाओं की शक्ति को संगठित करने में लगाई। इसके द्वारा ही यह प्रमाणित होना संभव था कि सच्चा आर्य कौन है। वन में युधिष्ठिर के साथ द्रौपदी भी थी। मानों भविष्य की होनी ही उनके साथ में हो। नियति अपने चक्र को घुमाकर यह अवसर उपस्थित कर रही थी कि युधिष्ठिर आगे चलकर आर्यावर्त्त के योग्य नृप बन सकें।

देखने निकले···· ···· ····क्लेश को ॥१०॥

शब्दार्थ—अखिल = सम्पूर्ण। धर्मनन्दन = धर्म पुत्र युधिष्ठिर।

व्याख्या—युधिष्ठिर के वन-गमन का औचित्य बतलाता हुआ कवि कहता है कि युधिष्ठिर समस्त भारतवर्ष को देखने और भ्रमण करने के लिए निकल पड़े। समस्त देश में वे जहाँ-जहाँ जाते, मनुष्य उनको भावी राष्ट्रपति के वेश में देखते थे। धर्मपुत्र युधिष्ठिर बन के दुःख और क्लेश इसलिए सहन करेंगे, जिससे कभी वे देश के समस्त दुःखों और क्लेशों को दूर कर सकें।

विशेष—युधिष्ठिर की यह देश-यात्रा शक्ति-संगठन एवं अपने पक्ष को सबल बनाने के लिये थी।

विजन वन···· ···· ····श्यामला ॥११॥

शब्दार्थ—गिरिशृंग = ऊँची श्रेणियों वाले पर्वत। ह्रद = सरोवर। मिस = बहाने। कवि रचयिता की कला = कवि की सुन्दर सृष्टि-कला के दर्शन किये। व्यक्त है = प्रस्तुत है। भाव = भावलोक। भव की देह वसुधा श्यामला = यह शस्य श्यामला उस विराट देव का सुन्दर सुकुमार शरीर है।

सन्दर्भ—युधिष्ठिर सृष्टि के सौन्दर्य को देखने के लिए निकले। उनको समस्त सृष्टि विधाता रूपी कवि की भावमय सृष्टि दिखाई थी—

व्याख्या—युधिष्ठिर शकुनि द्वारा जुए में सर्वस्व हार कर द्रौपदी और अपने चारों भाइयों-सहित वन में भ्रमण करते हुए तपोवन की साधना का पवित्र जीवन व्यतीत करने लगे। उन्होंने समस्त भारतवर्ष की

परिक्रमा की और इस परिक्रमा में वन, पर्वत-शिखर, नदी और सरोवरों के दर्शन किये। उन्होंने विधाता रूप कवि की इस सुन्दर सृष्टि कला को देखा। उनको ऐसा लगता था, मानों सृष्टि के रूप में विधाता की वह उत्तम कलाकृति ही मानो सामने उपस्थित हो। वह उस विधाता का मानो हृदय परम सुन्दर काव्य सृष्टि के रूप में व्यक्त हुआ हो। यह विराट नीला आकाश भाव लोक है और यह स्वरूप-श्यामला वसुधा उस परम देव का सुकुमार शरीर है। इस प्रकार युधिष्ठिर को सारी सृष्टि विधाता रूपी कवि की एक सुन्दर कलाकृति लग रही है।

विशेष—१. कवि ने यहाँ भारत की भव्य-प्रकृति में विराट सत्ता के भावात्मक दर्शन किये हैं।

२. **अलंकार**—(क) 'विजन वन' में 'व' और 'नदी-नदी' में 'न' वर्ण की एक बार आवृत्ति होने से **छेकानुप्रास**।

(ख) 'देव-दर्शन' में **छेकानुप्रास**।

(ग) 'कलाकृति..........श्यामला' में **उत्प्रेक्षा**।

प्रवज्या का व्रत.... ....फलदायक बना ॥१२॥

शब्दार्थ— प्रवज्या = सन्यास और विराग। जन-नायक = जन-नेता। आत्म-परिचायक = आत्मज्ञानी। कुन्ति नन्दन = कुन्ती के पुत्र।

सन्दर्भ—इस छन्द में कवि वर्णन कर रहा है कि युधिष्ठिर आदि पांडवों के लिए वन की साधना लाभदायक ही सिद्ध हुई—

व्याख्या—बिना प्रवज्या और तपःपूत साधना के इस संसार में न तो कोई जन-नायक ही बना और न आत्मज्ञानी ही बन सका। राम और बुद्ध तथा अन्य महापुरुषों का जीवन इसी सत्य को ओर संकेत करता है। वनवास के पश्चात् राम जन-नायक के पद पर आसीन हुए। शाक्यसिंह 'महाभिनिष्क्रमण' के पश्चात् ही बुद्ध हो सके। हमारी भारतीय संस्कृति इसी तथ्य से भरी हुई है। देश की आत्मा का निवास कोलाहल पूर्ण नगरों में नहीं अपितु सदैव तपोवनों में प्रतिष्ठित रहा है। हमारे तपोवन ही उच्च मानवीय संस्कृति और उदात्त भावों के सृष्टिकर्त्ता थे। ज्ञान के भण्डार वेद और उपनिषदों की रचना तपोवन में ही हमारे महर्षियों ने की। इस प्रकार कुन्ती के पुत्र युधिष्ठिर के लिए वनवास फलदायक ही बना।

विशेष—कवि ने यहाँ भारतीय संस्कृति के महान् और उदात्त रूप को प्रस्तुत किया है।

त्याग का फल मधुर···· ···· ····अभिषिक्त है ।।१३।।

शब्दार्थ—प्रथमतः=पहले। तिक्त=कड़ुवा। रिक्त=खाली। अपहरण =बलात् छीनना।

व्याख्या—इस छन्द में कवि इस सामान्य सत्य को स्पष्ट कर रहा है कि त्याग का फल यद्यपि मीठा होता है, परन्तु वह पहले कड़वा ही होता है। अर्थात् त्याग करने वाले व्यक्ति को प्रारम्भ में पहले कष्ट उठाने पड़ते हैं, परन्तु अन्त में उसका फल मधुर ही होता है। त्यागी पुरुष हृदय से सम्पन्न लगता है, चाहे उसमें व्यावहारिक ज्ञान भले न हो। उसकी राज्यश्री का अपहरण कौन कर सकता है, जो सप्त सरिता-तीर्थ रूपी द्रौपदी की जीवनी-शक्ति से अभिषिक्त हो रहा है।

विशेष—जो मनुष्य कष्ट को सहन करके जितना ही त्याग करता है, उतना ही उसका जीवन गौरवशाली बनता है—

"जितने कष्ट-कंटकों में हैं,
जिनका जीवन-सुमन खिला।
गौरव-गंध उन्हे उतना ही,
यत्र-तत्र सर्वत्र मिला।।

अन्नपूर्णा द्रौपदी···· ···· ···· ····क्षात्र था ।।१४।।

शब्दार्थ—अक्षय=कभी नाश न होने वाला। द्यावा=ऊषा, स्वर्ग। अग्निजा=द्रौपदी। गात्र=शरीर। अपराजिता=जो कभी पराजित न हो।

सन्दर्भ—यहाँ कवि ने द्रौपदी के तेज-बल का गुणगान किया है—

व्याख्या—द्रौपदी अन्नपूर्णा थी। वह ऐसी अक्षय पात्र थी, कि उसका हस्त कभी भी रिक्त नहीं होता था। उसके साथ होने से पाण्डवों को बनवास में भी किसी वस्तु का अभाव नहीं रहता था। अग्निजा द्रौपदी का शरीर स्वर्ग के समान निष्कलुष था। वह जीवनी-शक्ति बनकर पंच-तत्व रूपी पाण्डवों को प्रकाशित कर रही थी। इस समय अपने पतियों के साथ वह स्वत्वों से वंचित

थी, परन्तु वह कभी न हारने वाली थी। उसका क्षात्र-तेज चिर अंकपित था अर्थात् वह सदैव प्रेरणामयी और साहस की साकार मूर्त्ति थी।

विशेष—१. द्रौपदी को अन्नपूर्णा कहने में **रूपक अलंकार**।

२. द्रौपदी के शरीर की समानता निष्कलुष द्यावा से होने में **उपमा**।

३. **अन्नपूर्णा द्रौपदी**—पाण्डव वनवास की अवधि व्यतीत कर रहे थे। दुर्वासा ऋषि अपने शिष्यों सहित आकर भोजन की माँग करते हैं। पाण्डव चिन्तित हो जाते हैं, परन्तु द्रौपदी अपनी अन्नपूर्णा शक्ति से उनको भोजन कराकर तृप्त करती है।

नदी वैतरिणी···· ···· ···· ····**आ रही ॥१५॥**

शब्दार्थ—"नदी वैतरिणी········रही"=द्रौपदी की खुली हुई वेणी वैतरणी नदी के समान लहरा रही थी। गहरा रहा=गर्जना कर रही थी। धरा=पृथ्वी। मरण-वेला=मृत्यु का समय। धराशायी=मृत्यु को प्राप्त।

सन्दर्भ—यहाँ कवि द्रौपदी को कौरव-वंश का विनाश करने वाली कृत्या के रूप में देखता है—

व्याख्या—द्रौपदी की खुली हुई वेणी लहराती हुई ऐसी लगती थी, मानों कौरवों को डुबोने के लिए वैतरणी नदी है। उसके काले केश कौरवों को डुबोने के लिए भँवर बनकर गर्जना कर रहे थे। द्रौपदी के खुले हुए काले केश पृथ्वी को छू रहे थे और शत्रुओं की मरण बेला का संकेत कर रहे थे—

विशेष—१. द्रौपदी की वेणी की समानता वैतरणी नदी से होने में **उपमा**।

२. केशों में भँवर का आरोप होने से **रूपक**।

३. द्रौपदी के पृथ्वी को स्पर्श करते हुए केशों में मरण-वेला के संकेत की संभावना होने से **उत्प्रेक्षा**।

४. द्रौपदी के खुले हुए केश ही कौरवों को डसने वाले काले नाग बन गये थे। कृष्ण सन्धि का प्रस्ताव लेकर कौरवों के पास चलते हैं। द्रौपदी उनसे कहती है—

"जाउ भले कुरुराज पै धारि दूत वर वेश।
जैहौ भूलि न कर कबौं, द्रौपदि कुंचित केश॥"

अधोगति धृतराष्ट्र'''' ....**अज्ञेय की ॥१६॥**

शब्दार्थ—अधोगति=अवनति। ऊर्ध्वगति=उन्नति। कौन्तेय=कुन्ती के पुत्र अर्थात् पाण्डव। अग्नि-तत्व=अर्जुन। पाशुपत=पाशुपत अस्त्र। अज्ञेय=भगवान।

सन्दर्भ—यहाँ कवि अर्जुन की इन्द्र से मैत्री होने, शिव जी से पाशुपत अस्त्र पाने और अर्जुन को उर्वशी के शाप की घटना का वर्णन कर रहा है—

व्याख्या—अपने अन्यायपूर्ण आचरणों के कारण धृतराष्ट्र के पुत्र कौरवों की अवनति हो रही थी और कुन्ती के पुत्र पाण्डवों की उन्नति हो रही थी। अब अग्नितत्व अर्जुन की पहुँच इन्द्रपुर तक थी। अर्जुन ने शिव की तपस्या करके पाशुपत अस्त्र प्राप्त किया, परन्तु उर्वशी का साप भी उनको मिला। अर्जुन ने कामातुर उर्वशी को मातृ भाव से देखा। उर्वशी ने उनको एक वर्ष तक नपुंसक रहने का शाप दिया।

विशेष—१. 'इन्द्रपुर''''''अज्ञेय की'—अर्जुन का इन्द्र से मैत्री सम्बन्ध हो गया था। इन्द्र ने अर्जुन के लिए कर्ण से कवच कुण्डल प्राप्त किये थे।

२. पाशुपत वरदान पाया—अर्जुन ने पाशुपत अस्त्र पाने के लिये शिव जी की कठोर तपस्या की। भगवान शिव किरात वेश में अर्जुन की परीक्षा लेने आये। एक सूअर को लक्ष्य करके दोनों में भीषण युद्ध हुआ। शिव जी अर्जुन की वीरता और भक्ति से प्रसन्न हुए। उन्होंने अर्जुन को पाशुपत अस्त्र दिया।

३. उर्वशी का शाप भी—एक बार इन्द्र के आमन्त्रण पर अर्जुन स्वर्ग की सैर करने गये। वहाँ पर उन्होंने इन्द्र की प्रेरणा से चित्रसेन से गीत-नृत्य आदि की शिक्षा प्राप्त की। अप्सरा उर्वशी कामातुर होकर अर्जुन के पास आई। परन्तु अर्जुन ने उसे मातृ भाव से देखा, क्योंकि वह पुरुरवा की जननी थी। उर्वशी ने क्षुब्ध होकर अर्जुन को एक वर्ष तक नपुंसक रहकर स्त्रियों के बीच नर्तक का जीवन बिताने का शाप दिया। अर्जुन की इस जितेन्द्रियता ने उन्हें देवताओं की कोटि में पहुँचा दिया। इस प्रकार अर्जुन को ईश्वर की दुहरी कृपा प्राप्त हुई। अर्जुन को वृहन्नला के वेश में विराट के यहाँ रहकर एक वर्ष का अज्ञातवास व्यतीत करने में सुविधा हुई।

प्राणबल के धाम····   ····   ····   ····निर्भ्रान्त थे ॥१७॥

शब्दार्थ—दुर्जय=कभी न जीते जाने वाले। विक्रान्त=वीर, योद्धा। सांत=अन्त-युक्त, जिसका अन्त अवश्य होता है। कपिकेतन=ध्वजा पर हनुमान की प्रतिकृति।

सन्दर्भ—यहाँ कवि ने महाबली भीम की अलकापुरी की यात्रा और उनके हनुमान से मिलन का वर्णन किया है—

व्याख्या—भीमसेन जो प्राण-शक्ति के घर थे और जो दुर्जेय एवं अत्यन्त वीर थे। वे अलकापुरी को देखने की तीव्र अभिलाषा लिये हुए थे। उनकी यह अभिलाषा पूर्ण हुई। वे अलकापुरी पहुँच गये। वहाँ उनकी भेंट हनुमान से हुई और हनुमान से भेंट होते ही उनको अपनी विजय का निश्चित विश्वास हो गया। हनुमान ने उनको वचन दिया था, कि वे पार्थ के रथ की ध्वजा पर कपिकेतन के रूप में विराजमान होंगे, हनुमान के इस आश्वासन को पाकर भीमसेन अपनी विजय के लिये पूर्ण आस्वस्त हो गये थे।

हो गये वन में····   ····   ····   ····समस्थल ॥१८॥

शब्दार्थ—पुष्ट=शक्तिशाली। यमल=जोड़ा। माद्री के यमल=माद्री के युग्म पुत्र—नकुल और सहदेव। अति रथी=वीर योद्धा।

सन्दर्भ—यहाँ कवि नकुल और सहदेव की शक्ति का परिचय दे रहा है—

व्याख्या—वन में भ्रमण करते हुए माद्री के युग्म पुत्र नकुल और सहदेव पुष्ट होकर अति बलशाली हो गये। वे युधिष्ठिर के चरण चिन्हों पर इस प्रकार चलने वाले थे, मानों उनके चरण तल में जल-थल रूपी दो कमल खिले हुए हों। अब वे दोनों कोमल नहीं थे, अपितु बलवान महारथी योद्धा भी थे, उनके लिए समस्त पृथ्वी अथवा समुद्र में पहुँच सुगम थी।

विशेष—१. 'जल-थल-कमल' में रूपक।

२. 'युधिष्ठिर··········कमल' में उत्प्रेक्षा।

३. **जल-थल-कमल**—अश्व विद्या-विशारद श्यामसुन्दर नकुल जल-तत्व का प्रतीक हैं। सहदेव क्षिति-तत्व के समान ही शीलवन्त हैं।

एक दिन····   ····   ····   ····श्रम की हुई ॥१९॥

शब्दार्थ—चरम परिणति=किसी बात का अपनी सीमा पर पहुँचाना।

इतिश्री=समाप्ति। अनघ=जो पाप-रहित हो, धर्मराज युधिष्ठिर। सुघर=सुन्दर, युक्तिपूर्ण।

सन्दर्भ—इस छन्द में कवि ने युधिष्ठिर के द्वारा दक्ष को उत्तर देकर परीक्षा में सफल होने की घटना का उल्लेख किया है—

व्याख्या—वनवास की अवधि व्यतीत करते हुए एक दिन पाण्डवों का अति श्रम अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया। इसी दिन पाण्डवों को जो सूक्ष्म मति-भ्रम घेरे हुए था, उसकी भी समाप्ति हो गई। धर्मराज युधिष्ठिर ने यक्ष के प्रश्नों के सुन्दर और युक्तिपूर्ण उत्तर दिये। इस प्रकार वे परीक्षा में सफल हुए और यमराज की भी उन पर कृपा हो गई, युधिष्ठिर के भाइयों को जीवन मिल गया।

विशेष—यक्ष-प्रश्न—महाभारत में यक्ष द्वारा प्रश्न किये जाने और युधिष्ठिर द्वारा उनका सफलता से उत्तर दिये जाने का प्रसंग विस्तार से आया है। एक ब्राह्मण यज्ञ कर रहा था, उसके मंथन काष्ठ को कोई मृग अपने सींग से खुजलाते हुए भाग चला। उस ब्राह्मण ने बनवासी पाण्डवों से अनुरोध किया, वे उसे ढूँढ़ दें, अन्यथा उसका अग्निहोत्र खण्डित हो जायगा। पाँचों पाण्डव उसे खोजते-खोजते थक गये, किन्तु वह न मिला। वे प्यास से आकुल हो उठे। सहदेव ने वृक्ष पर चढ़कर एक सरोवर का पता लगाया। वहाँ पानी पीने को गये। तट पर पहुँचे, तो यक्ष ने उनसे प्रश्नों का उत्तर देकर जल पीने के लिये कहा, पर वे प्यासे थे, न माने। परिणामस्वरूप जल पीते ही वहीं गिर पड़े। अन्त में युधिष्ठिर उस सरोवर के तट पर पहुँचे। उन्होंने यक्ष के समस्त प्रश्नों का उचित उत्तर दिया। युधिष्ठिर के दिये हुए उत्तरों को सुनकर दक्ष वेषधारी धर्म बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने पाँचों भाइयों को जिला दिया और वरदान भी दिया। धर्मराज युधिष्ठिर के उत्तर में सभी समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया गया था।

हो गए···· ···· ···· ····कर्म की ॥२०॥

शब्दार्थ—हर=प्रत्येक। दासता ही कसौटी=दासता ही उसके जीवन की सच्ची परीक्षा होती है।

व्याख्या—यक्ष वेषधारी धर्म ने धर्मराज युधिष्ठिर से जो प्रश्न किये, उनके

उपयुक्त उत्तर देकर वे धर्म की इस परीक्षा में उत्तीर्ण हो गये। अतः अब उनको मर्म की अदृश्य गति मिलेगी। निर्वासित पाण्डव वन में कठोर आत्म-संयम और साधना का जीवन व्यतीत करते थे। उनके बनवासी जीवन में वैभव और ऐश्वर्य का विलास नहीं था। वे दासों की तरह अकिंचन वन का अज्ञातवास जीवन व्यतीत कर रहे थे। यथार्थ में राजा के कर्त्तव्य की वास्तविक शिक्षा इस दासता के जीवन में ही पूरी होती है। प्रत्येक राजा दास बनकर ही प्रजा की वास्तविक दशा को जान पाता है। वहीं उसके जीवन की सच्ची परीक्षा होती है। इसमें जो खरा उतरता है, वही सच्चा प्रशासक होता है।

शमी तन में···· ···· ···· ····रात है ॥२१॥

शब्दार्थ—शमी-तन=एक प्रकार का पवित्र वृक्ष, इसका प्रयोग यज्ञ की समिधाओं के रूप में होता था। हुताशन=यज्ञ की ज्वाला। आवरण=पर्दा। पंच भूतों=पाँच भूतों के प्रतीक पाँचो पाण्डव।

व्याख्या—शमी के वृक्ष में अज्ञात रूप से अग्नि छिपी रहती है। इस प्रकार शमी के वृक्ष का हर पत्ता दिव्यास्त्र का आवरण हो रहा है। अर्थात् वह अपने में अग्नि को छिपाये हुए है। यह शमी का वृक्ष अर्जुन का प्रतिनिधि बनकर शव साधना करेगा। अज्ञातवास का वह काल पांचों पाण्डवों के लिये रात्रि के समान था। रात्रि के गहरे अन्धकार में जिस प्रकार पंचभूत अदृश्य और निश्चेष्ट रहते हैं, पांडव भी निश्चेष्ट रहकर विराट के यहाँ छिपकर जीवन की कठोर साधना कर रहे थे।

विशेष—शमी का वृक्ष बहुत पवित्र माना जाता है। प्राचीन काल में इसका उपयोग यज्ञ की समिधा के रूप में होता था। पाण्डवों ने अपने अज्ञात-वास के काल में अपने धनुष आदि आयुध शमी के वृक्ष पर ही रख दिये थे। अर्जुन विराट के पुत्र उत्तर के सारथि बनकर आये और कौरवों के विरुद्ध उसकी सहायता की तो अपने अस्त्र वहीं से लिये थे। कोई उस वृक्ष के निकट न आए इसलिए वहाँ पर एक शव भी शाखा से लटका दिया था।

कर रहे अज्ञातवासी···· ···· ····आविर्भावना ॥२२॥

शब्दार्थ—गुह्य=गुप्त रूप में। 'कर रहे······आराधना'=पांचों पांडव

और द्रौपदी विराट के यहाँ गुप्त रूप से अपने अज्ञातवास की अवधि व्यतीत कर रहे थे।

व्याख्या—पाण्डव द्रौपदी सहित मत्स्य देश के राजा विराट के यहाँ छिपे हुए वेश में अपने अज्ञात वास की अवधि व्यतीत कर रहे थे। जो कभी सम्राट थे, वे विभिन्न रूपों में विराट के सेवक बनकर छिपकर रहने की आराधना कर रहे थे। मत्स्य-नरेश विराट के सहयोग से ही उनकी साधना सफल होगी। अग्नि तत्व अर्जुन गन्धर्व के वेश में उत्तरा को नृत्य-गान की शिक्षा देते थे। इसी प्रकार सभी पाण्डव अपने वेश को छिपाये महाराज विराट के यहां रहते थे। एक दिन पाण्डवों का दिव्य आविर्भाव होकर ही रहेगा।

आ गया दिन···· ···· ····रण-रास का ॥२३॥

शब्दार्थ—निर्दिष्ट=निश्चित। कीचकों=कीचक मत्स्य देश के सेनापति और विराट की रानी के भाई थे। वर्षान्त=वर्ष के अन्त में। संशप्तकों=युद्ध-प्रिय जातियाँ जिन्हें अर्जुन ने बारम्बार हराया था।

व्याख्या—पाण्डवों की एक वर्ष के अज्ञातवास की अवधि समाप्त हो गई। भीम को अपने उद्योग एवं पूर्वाभ्यास-जनित पराक्रम को दिखाने का अवसर मिला। उनके द्वारा अत्याचारी कीचकों का नाश हुआ। अज्ञात वास के समाप्त होने पर पाण्डव प्रकट हो गये,। उन्होंने भीषण युद्ध में संशप्तकों और कौरवों को पराजित किया।

विशेष—१. कौरवों ने विराट पर चढ़ाई की थी। अर्जुन ने उनको मार भगाया था।

३. **कीचकों के नाश का**—कीचक विराट की रानी का भाई और मत्स्य देश का सेनापति था। द्रौपदी सैरन्ध्री के वेश में विराट की रानी के केशों का शृंगार करती थी। कीचक द्रौपदी के सौन्दर्य को देखकर मुग्ध हो गया, और उसने द्रौपदी से रतिदान की याचना की। द्रौपदी के विरोध करने पर उसने बलात्कार करना चाहा। भरी सभा में उसे युधिष्ठिर और भीमसेन के सामने अपमानित किया। भीमसेन ने राजा की नृत्यशाला में उसका वध किया। उन्होंने उसके भाइयों को भी मार डाला।

बृहन्नला के रूप में···· ····हृदय॥२४॥

शब्दार्थ—वृहन्नला=नपुंसक और स्त्रियों का वेश। उत्तर=विराट का पुत्र। उत्तरा=विराट की पुत्री।

व्याख्या—एक वर्ष की अज्ञातवास की अवधि में अर्जुन वृहन्नला के रूप में विराट के यहाँ रहते थे। उनकी इस रूप में भी विजय हुई। वे विराट की पुत्री उत्तरा को वृहन्नला के वेश में नृत्यशाला में नृत्य और संगीत की शिक्षा देते थे। विराट-पुत्र उत्तर के युद्ध में पीठ दिखाने पर अर्जुन ने कौरव-सेना पर विजय प्राप्त की, इससे मत्स्यराज विराट का हृदय अर्जुन से बहुत प्रभावित हुआ। वे उनके पैर पूजने लगे और उन्होने अपनी पुत्री उत्तरा को उन्हें अर्पित करना चाहा।

विशेष—उर्वशी अप्सरा के शाप के कारण अर्जुन विराट के यहाँ वृहन्नला के वेश में रहते थे और नर्तकी का जीवन व्यतीत करते थे। वे वृहन्नला के रूप में ही विराट-पुत्र उत्तर के सारथि बनकर युद्ध-क्षेत्र में गये। युद्ध में उत्तर पीठ दिखाने लगा। इस पर वृहन्नला रूप अर्जुन ने उसे प्रेरित किया। वह सारथि बना और वृहन्नला (अर्जुन) ने अपने शस्त्र सँभाले। द्रोण, भीष्म, कर्ण अश्वत्थामा आदि महान् योद्धा पराजित हुए। उत्तर ने अर्जुन की वीरता की प्रशंसा की, विराट ने अपनी पुत्री उत्तरा को स्वीकार करने का अर्जुन से अनुरोध किया। अर्जुन उसे अपनी शिष्या मान चुके थे। अतः उन्होंने उसे पुत्र-वधू के रूप में स्वीकार किया—

"किया सभी रनिवास का, जननी सम सत्कार।
अर्पित जो यह उत्तरा, सुत, हित है स्वीकार!"

उत्तरा अभिमन्यु की पत्नी बनी।

कंक हो निःशंक···· ···· ····प्रज्ञाहीन थे ॥२५॥

शब्दार्थ—कंक=अज्ञातवास के समय युधिष्ठिर ने अपना यही नाम रखा था और वे विराट के साथ पाशा खेलते थे। आसीन=विराजमान। मत्स्य=मत्स्यराज विराट। शाल्व=उत्तरी भारत की एक जाति। वृष्णि=यादव।

व्याख्या—युधिष्ठिर अब समस्त शंकाओं से रहित होकर भारत-सम्राट के रूप में विराजमान थे। मत्स्य राजा विराट से उनके सम्बन्ध बन गये थे और शाल्व उनके प्रेम के अधीन थे। यादव गण, द्रुपद वंश आदि के योद्धा पांडवों की

विजय यात्रा का पथ-प्रशस्त कर रहे थे। वे पांडवों का जयघोष बोलते थे। धृतराष्ट्र की बाहरी दृष्टि नहीं थी, किन्तु उनको प्रज्ञाचक्षु प्राप्त थे। पुत्रों के मोह ने उनके प्रज्ञा चक्षुओं की ज्योति भी मन्द कर दी थी। उनके सौ पुत्रों के चर्म दृष्टि तो प्राप्त थी, पर मर्म-दृष्टि नहीं। अपनी बुद्धि-हीनता के कारण वे अपने सामने उपस्थित विनाश को नहीं देख पा रहे थे।

विशेष—१. शाल्व—उत्तरी भारत की एक शक्तिशाली जाति थी। इसकी सहायता पांडवों को प्राप्त हुई थी। काशी-नरेश की पुत्री अम्बा शाल्व-राज से प्रेम करती थी। भीष्म ने उसका हरण किया था। भीष्म को जब अम्बा के शाल्वराज के प्रति प्रेम की बात ज्ञात हुई, तब उन्होंने उसे शाल्वराज के पास भेज दिया, परन्तु उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया। शाल्वराज ने भीष्म के वध के अनेक उपाय किये।

हस्तिनापुर में सभी···· ···· ····अन्यथा ॥२६॥

शब्दार्थ—अहन्ता-मुक्त=गर्व से रहित। देवकीसुत=श्रीकृष्ण। विफल=असफल।

व्याख्या—पांडवों की शक्ति का बराबर उत्कर्ष हो रहा, परन्तु हस्तिनापुर में कौरवों की शक्ति विनाश की ओर जा रही थी। वहाँ सभी कुछ अज्ञान, मोह और ममता में अंधा हो रहा था। वहाँ एक भी राजा ऐसा नहीं था, जो अहंकार से मुक्त हो। कौरव द्रौपदी के शाप से अभिशप्त हो रहे थे। देवकी-सुत श्रीकृष्ण संधि का प्रस्ताव लेकर कौरवों के पास गये। परन्तु उनको संधि कराने में सफलता नहीं मिली, क्योंकि कौरव अहंकार में डूब रहे थे।

उठ रही थी···· ···· ····प्रतिरोध की ॥२७॥

शब्दार्थ—प्रतिशोध=बदला लेना। आह्वान=ललकार। प्रतिरोध=रोकना, विरोध करना। पंच-शोणित-सरोवर=पांचों पांडव रक्त भरने के सरोवर थे।

व्याख्या—द्रौपदी के क्रोध की यज्ञ-ज्वाला भीषण होकर उठ रही थी। इस प्रकार कौरवों से प्रतिशोध लेने की भूमिका प्रति क्षण निकट आती जा रही थी। पांडव अपनी शक्ति को संचित कर कौरवों से युद्ध के लिए सन्नद्ध हो रहे थे। यज्ञजा जीवन-शक्ति से संश्लिष्ट किये गये पांडव पंच-शोणित सरोवर बनकर

कौरवों को उनके रक्त से सरोवर भरने के लिए ललकार रहे थे। अब भला किसमें इतनी शक्ति थी, जो शक्ति-प्रेरित पांडवों का प्रतिरोध करने में समर्थ हो सके।

अलंकार—द्रौपदी के क्रोध में यज्ञ-ज्वाला का प्रयोग होने से रूपक।

हस्तिनापुर की···· ···· ····नोंक सी ॥२८॥

शब्दार्थ—अहन्ता=अहंकार। मरण-गज=मृत हाथी। नियति=भाग्य।

व्याख्या—हस्तिनापुर में अहंकार में डूबे हुए कौरव मृत गज के समान हो रहे थे। जिस प्रकार जोंक मृत गज का रक्त चूसती है, और गज को आभास नहीं होता। उसी प्रकार अहंकार और ममता जोंक बनकर कौरव रूपी गज का रक्त पी रही थी। सम्पूर्ण अहंकारी क्षत्रियों के लिए दुर्योधन की दुर्बुद्धि नियति बन रही थी। वह शर की शूल भूलकर सुई की नोंक के समान चमक रही थी। अर्थात् दुर्योधन के साथ होकर समस्त क्षत्रिय विनाश की ओर जा रहे थे।

अलंकार—रूपक।

जीव अतिचारी···· ···· ····विकट ॥२९॥

शब्दार्थ—जीव=बृहस्पति, अश्लेषा नक्षत्र। अतिचारी=बहुत अधिक चाल वाला। श्रवणा=बाइसवाँ नक्षत्र। मंद=मन्दग्रह अर्थात् शनिश्चर। रोहिणि-शकट=रोहिणी नक्षत्र का रथ। सिंह-मुख=सिंह राशि में। कुज=मंगल। कुज मघा पर वक्री हुआ=मंगल वक्र होकर मघा पर स्थिति हो गया। पुष्य=एक नक्षत्र। धूमायत विकट=भीषण अनिष्टकारी धूमकेतु।

सन्दर्भ—महाभारत का युद्ध प्रारम्भ होने से पूर्व आकाश में अमंगल योग उपस्थित हो रहे थे—

व्याख्या—बृहस्पति ग्रह की गति बहुत अधिक तीव्र हो गई। वह श्रवण नक्षत्र पर स्थित हो गया। मन्द ग्रह शनिश्चर रोहिणी ग्रह के रथ पर बैठ गया, जिससे उसका रथ चरमराने लगा, अर्थात् शनिश्चर रोहिणी को पीड़ा देने लगा। मंगल ग्रह सिंह राशि पर अग्नि के समान उदित होकर मघा नक्षत्र पर वक्र दृष्टि डालने लगा, और भीषण विनाश का सूचक विकट धमकेत पुष्य नक्षत्र को आक्रान्त करने लगा।

विशेष—ज्योतिष के अनुसार बृहस्पति का श्रवण के समीप अतिचार करना, शनिश्चर का रोहिणी में स्थित होना, मंगल का मघा पर वक्र दृष्टि डालना और धूमकेतु का मघा को आक्रान्त करना महा विनाश और अमंगल का सूचक होता है।

केतु चित्रा····   ····   ····कसने लगा ॥३०॥

शब्दार्थ—केतु = ग्रह विशेष का नाम है, जो चन्द्रमा को ग्रसता है। चित्रा = ग्रह विशेष का नाम। इन्दु = चन्द्रमा। सिंहिका सुत = सिंहिका नाम की राक्षसी का पुत्र अर्थात् राहु। अदिति-सुत = कश्यप की पत्नी का पुत्र अर्थात् सूर्य। निगलकर = ग्रसकर। व्यवधान = अन्तर।

सन्दर्भ—कवि यहाँ वर्णन करता है कि महाभारत के युद्ध के प्रारम्भ में किस प्रकार समस्त अनिष्टकारी ग्रह एक साथ उपस्थित हो गये थे—

व्याख्या—केतु ग्रह चित्रा नक्षत्र पर उदित होकर चन्द्रमा को ग्रसने लगा, और सिंहिका के पुत्र राहु ने अदिति के पुत्र को निगल कर हँसते हुए प्रसन्नता प्रकट की। यही नहीं, जो अमावस्या चौदह या पन्द्रह दिनों पर हुआ करती है, वह तेरह दिनों के अन्तर पर हो गई। इस बार एक ही महीने के दोनों पक्षों में त्रयोदशी को ही सूर्य ग्रहण और चन्द्र ग्रहण हो गये थे। इस प्रकार काल-रूप व्याल सृष्टि के महा विनाश के लिए अपनी कुँडली को कस रहा था।

विशेष—१. 'काल-व्याल' में रूपक।

२. ज्योतिष के अनुसार केतु का चित्रा नक्षत्र में उदित होकर चन्द्रमा को ग्रसना, राहु का सूर्य को निगलना, एक पक्ष में दो ग्रहण पड़ना आदि महां-अमंगल ओर विनाश के सूचक हैं। 'महाभारत' में इनका बड़े विस्तार से वर्णन हुआ है। महाभारत के युद्ध से पूर्व सारी सृष्टि में अपशकुन दिखाई देने लगे।

ऋत अनृत की नियत गति····   ····   ····उद्रेक था ॥३१॥

शब्दार्थ—ऋत = सत्य। अनृत = असत्य, मिथ्या। व्यतिरेक = बाधा, व्यतिक्रम, व्यवधान। उद्रेक = आधिक्य।

व्याख्या—सत्य और असत्य का अन्तर मिट गया था। सारी सृष्टि की चाल ही जैसे अपनी धुरी से अलग हो चुकी हो। धर्म और अधर्म दोनों ही

सर्वनाश का ही संकेत कर रहे थे। सत्य-असत्य एवं देवता और दानव भीषण रूप से मोह-ग्रस्त थे। सारे ज्योति-पिंड अन्धकार ही उगल रहे थे।

साँवले मृग····   ····   ····महाकालेश का ॥३२॥

शब्दार्थ—राकेश = चन्द्रमा।

व्याख्या—महाभारत के युद्ध से पूर्व विनाश के सारे चिन्ह उपस्थित हो गये थे। चन्द्रमा के हृदय से श्याम-कलंक दूर हो गया था और सूर्य का मंडल श्याम-धब्बों से युक्त होकर व्यथित और व्याकुल हो रहा था। काल-दण्ड अपने काल का क्रम भूलकर घूम रहा था और महाकाल का रथ भीषण धूल उड़ा रहा था।

विशेष—चन्द्रमा में जो काले दाग हैं, उनको मृगांक कहा जाता है। चन्द्रमा का कलंक रहित होना महा उत्पात और विनाश का सूचक है—

'ज्यौं निकलंक नयंक लखि, गनै लोग उत्पात।'

इसी प्रकार सूर्य का काले धब्बों से युक्त होना भी विनाश का सूचक माना जाता है।

चतुर्दिक····   ····   ····लगीं ॥३३॥

शब्दार्थ—चतुर्दिक = चारों ओर। दिग्दुन्दुभी = दिशाओं में दुन्दुभी बजना। स्वमेव = स्वयं ही।

व्याख्या—विनाशकारी महाभारत के युद्ध की तैयारी होने लगी। चारों अक्षौहिणी सेनाएँ बलि-पशु के समान युद्ध के लिए सन्नद्ध हो उठीं। चारों ओर दिशाओं में स्वयं ही युद्ध की दुन्दुभी बज उठी। सभी लोग अपने स्वभाव की सहज वृत्ति को छोड़कर युद्ध के लिए सन्नद्ध हो गये। ब्रह्मज्ञानी विप्र तक शस्त्रों को धारण करके क्षात्र-धर्मा हो रहे थे।

विशेष—प्रथम पंक्ति में उपमा अलंकार है।

भ्रंशमति····   ····   ····खोह में ॥३४॥

शब्दार्थ—भ्रंशमति = अधः पतन या नीचे गिरा हुआ। क्षेत्रज्ञ = जीवात्मा। विजड़ित = जगमगाते हुए। खोह = गुफा।

सन्दर्भ—महाभारत के युद्ध के प्रारम्भ होने से पूर्व श्रीकृष्ण ने अर्जुन का

रथ दोनों सेनाओं के बीच में खड़ा कर दिया। अर्जुन को मोह हुआ और उन्होंने युद्ध न करने की प्रतिज्ञा की। यहाँ अर्जुन के इस मोह तथा श्रीकृष्ण के गीता--उपदेश से उनके मोह को दूर होने का वर्णन कवि ने किया है—

व्याख्या—महारथी अर्जुन की आत्मा युद्ध के लिए प्रस्तुत अपने स्वजनों को देखकर मोह में खो गई थी, वे मूढ़ बन गये और उनके चरण काँपने लगे। उनकी ज्ञान की सूक्ष्म दृष्टि पर मोह का आवरण पड़ गया। भगवान श्रीकृष्ण उनको कुरुक्षेत्र से अलग ले जाकर कर्म-क्षेत्र का उपदेश देते हैं। वे मोह-जनित भय की जिस अँधेरी गुफा में भय-ग्रस्त हो रहे थे, कृष्ण की वाणी ने उनको अभय किया, और वे युद्ध के लिए प्रस्तुत हो गये।

पंचजन मन को··· ···· ····मनभावनी ॥३५॥

शब्दार्थ—पंचजन=पांडव। गिरा नारायणी=कृष्ण द्वारा अर्जुन को दिया गया गीता का उपदेश।

सदन्भ—यहाँ कवि कृष्ण द्वारा अर्जुन को दिये गये गीता के उपदेश का वर्णन कर रहा है—

व्याख्या—कृष्ण के द्वारा दिया गया गीता का उपदेश नारायणी गिरा बन कर पांडवों के मन में गूँज रहा था। वह नारायणी गिरा पंचतत्वों के प्रतीक पांडवों के लिए प्रेरणामयी धारा बन गई। वह धर्म-कर्म का प्रकाश करने वाली और भय, मोह एवं द्रोह का विनाश करने वाली थी। गीता-उपदेश की वह वाणी ज्ञान से परिपूर्ण और भक्तजनों के मन को भाने वाली है।

बाहुबल···· ···· ····अग्निरथ ॥३६॥

शब्दार्थ—तूणीर=तरकष। देवदत्त अग्नि-तनया=होमजा द्रौपदी। तपन=ज्वाला। यज्ञेश=यज्ञ पुरुष। नरवर=श्रेष्ठ नर अर्थात् अर्जुन।

व्याख्या—महाभारत का भीषण युद्ध प्रारम्भ हो गया। योद्धाओं ने उस युद्ध में विजय पाने के लिए अपना बाहुबल शस्त्रास्त्र, तन और बुद्धि के उन्माद से प्रेरित होकर अपने मन को सौंप दिया। अर्थात् वे युद्ध में लग गये। अग्नि-कन्या द्रौपदी के मन में वर्षों से अपमान की जो आग जल रही थी, दहकने लगी इस अपमान की ज्वाला का प्रचंड अग्नि-रथ युद्ध-स्थल में दौड़ने लगा। उसने

न जाने कितने योद्धाओं को कुचलकर नष्ट कर दिया। उसके मन रूपी अग्नि-रथ के सारथि स्वयं भगवान श्रीकृष्ण हुए और उस कपिध्वज-युक्त रथ के रथी द्रौपदी के मनोराज्य के स्वामी धनुर्धर अर्जुन हुए। इस प्रकार नियति-गति का अग्नि-रथ युद्ध पथ पर अग्रसर हुआ।

अलंकार—रूपक।

अवधि अष्टादश···· ···· ····बांधना ॥३७॥

शब्दार्थ—अष्टादश=अट्ठारह, महाभारत का युद्ध अट्ठारह दिन तक हुआ था।

व्याख्या—महाभारत का भीषण विनाशकारी युद्ध अट्ठारह दिवस तक हुआ था। वह तो ऐसी साधना थी जो युद्ध की ज्वाला पर ही सम्पन्न हो सकी। द्रौपदी ने स्वत्व की रक्षा के लिए जो प्रतिशोध की ज्वाला प्रज्वलित की, उसमें दोनों पक्षों के असंख्य योद्धाओं की आहुति पड़ी। द्रौपदी के पांच पुत्र भी उसमें वलि चढ़े। स्वत्व की प्रतिष्ठा और पंच-तत्वों की रक्षा के लिए तो बड़े से बड़ा बलिदान भी तुच्छ है। इस अग्नि-किरण रूपी द्रौपदी ने पाँच पांडव रूप पंचभूतों को कितनी यातना और दुःसह साधना से एक सूत्र में बाँधा था; तभी तो उनको कौरवों की राक्षसी शक्ति पर विजय मिली।

अलंकार—रूपक।

पंचभूत···· ···· ····अन्तगत ॥३८॥

शब्दार्थ—पंचभूत=पंच-तत्व रूप पांडव। विभूति=जीवनी-शक्ति द्रौपदी। विभु=श्रीकृष्ण। अन्तगत=अन्त में।

व्याख्या—कौरव और पांडवों में भीषण-युद्ध हुआ। पंचतत्व रूप पांडव, विभूति रूप द्रौपदी. श्रीकृष्ण—इस प्रकार सत्व गुण से युद्ध कर रहे थे। इस प्रकार पांडव पक्ष में सम्पूर्ण रूप से धर्म और न्याय था। पांडवों के वाण षटरस विषयों का भोग करने वाले थे और इसके लिए उनका लक्ष्य शत्रु (कौरव और कौरव सेना) थे। इस प्रकार दोनों सेनाएँ भीषण युद्ध में रत रहीं। बड़ा भीषण युद्ध हुआ, जिसमें अन्त में धर्मसुत युधिष्ठिर को विजय प्राप्त हुई।

अलकार—रूपक।

कठिन थी····   ····   ····खेलना ॥३६॥

शब्दार्थ—दिव्य जन्मा=द्रौपदी दिव्य-जन्मा थी, उसका जन्म राजा विराट के यज्ञ-अग्नि की ज्वाला से हुआ था। झेलना=बरदास्त करना। नभ=आकाश तत्व युधिष्ठिर। यज्ञाग्नि=युद्ध रूपी यज्ञ की अग्नि।

व्याख्या—कौरवों ने उस दिव्य-जन्मा द्रौपदी की शक्ति का अपमान और अवहेलना की। इसी के परिणाम स्वरूप वे विनाश को प्राप्त हुए। होमजा द्रौपदी के तेज को झेलना आकाश के लिए भी कठिन था। महाभारत के युद्ध में उस यज्ञाग्नि से सभी योद्धा मारे गये। अतः कवि अन्त में उपदेश देता हुआ कहता है कि इस प्रकार नारी की अवहेलना और अपमान कर यह आग का खेल कोई न खेले।

विशेष—द्रौपदी दिव्य-जन्मा थी। उसका जन्म महाराज द्रुपद के यज्ञ से हुआ था। द्रौणाचार्य ने एक बार द्रुपद को पराजित और अपमानित किया। उन्होंने द्रोणाचार्य से प्रतिशोध लेने के लिए याज नाम के ऋषि के द्वारा यज्ञ का अनुष्ठान कराया। यज्ञ के सम्पन्न होने पर उससे **धृष्टद्युम्न** और **द्रौपदी** ने जन्म लिया। द्रौपदी कृष्ण वर्ण की होने के कारण कृष्णा कहलायी। पूर्व जन्म में उसने घोर तपस्या करके भगवान शिव से सर्वगुण सम्पन्न पति पाने का पाँचबार वरदान माँगा था। इस वरदान के अभाव स्वरूप द्रौपदी पाँचों पांडवों की पत्नी बनी।

पंचम सर्ग

विषयवस्तु

महाभारत का नर-संहारी भीषण युद्ध १८ दिन में समाप्त हुआ। कौरव पराजित हुए और पांडवों को विजय मिली। चारों ओर श्मसान की-सी गहरी शान्ति थी। करुणापूर्ण चीत्कार छाया हुआ था। शून्यता और निस्तब्धता छाई हुई थी। युद्ध-क्षेत्र रक्त-रंजित था। राजवंश की पति और पुत्र-हीना बधुएँ करुणा-क्रन्दन कर रही थीं। चारों ओर सर्वनाश और संहार का दृश्य था। इस विनाश की वेला में भी पांडवों के स्वागत के लिये हस्तिनापुर सजा हुआ था। कौरवों का सकुल संहार हो गया था। युद्ध के अन्तिम दिन अश्वत्थामा की छल-छद्म भरी क्रूरता के कारण द्रौपदी के भी पाँचों पुत्र मारे गये थे। कौरवों की माता गांधारी और द्रौपदी दोनों ही शोक में डूबी हुई थीं परन्तु दोनों में एक अन्तर था। अन्तर यह था कि द्रौपदी जहाँ विजयिनी थी वहाँ गांधारी पराजिता थी—

"भ्रातृ - पुत्र - हीना द्रुपदा - सी,
थी सुबला गांधारी।
भेद यही बस, एक विजयिनी,
एक सब तरह हारी॥"

गांधारी ने अपने मृत पुत्रों को देखने के लिए पहली बार अपने नेत्रों पर से पट्टी हटाई। दारुण दृश्य देखकर वह शोक-विह्वल हो गई।

युधिष्ठिर अपने मृत सम्बन्धियों की आत्मा की तृप्तिहेतु तर्पण कर रहे थे। कुन्ती ने बिलखकर कहा कि कर्ण भी तर्पण करो; यह तुम्हारा बड़ा भाई है। युधिष्ठिर के समक्ष सहसा कर्ण के चरण आ गये। उनके नेत्रों से अश्रु गिरकर कर्ण के चरणों का प्राक्षालन करने लगे।

युधिष्ठिर को भीष्म, द्रोण आदि की मृत्यु पर वेदना होती है।

पांडवों के द्वारा किये गये छल को स्मरण कर वे अपने को धिक्कारने लगते हैं। युधिष्ठिर को इस स्थिति में देखकर अग्नि अपनी भौहें तान कर उनसे कहने लगा कि रजस्वला, एकवस्त्रा द्रौपदी को निर्वसन करने, सप्तरथियों द्वारा अभिमन्यु को घेरकर अमानुषिक हत्या करने में कौन-सा न्याय था। भीष्म और द्रोण यदि कौरवों से असहयोग करते, तो ऐसा अन्याय न होता। प्रबल भावी के वश में जो होना था, वह हो गया, अब अपने यश को कलंकित न करो। तुमने आर्य नारी को सामान्य भौतिक पदार्थ की तरह दाँव पर लगा दिया था। द्रौपदी साधारण नारी न होकर यज्ञजा है। अग्नि के उद्‌बोधन से धर्मराज युधिष्ठिर को आत्म-ज्ञान होता है। उनको दीखता है कि इस विश्व में नर की विजय का मूल्य नारी अपनी दहन शक्ति से चुकाती आई है। प्रथा ने अपने वैध पुत्रों के लिए अवैध पुत्र कर्ण को बलि दी। गांधारी ने अपने अत्याचारी पुत्रों को विजय का आशीर्वाद नहीं दिया। कुरुवंश की प्रत्येक नारी ने अपने जीवन के अमूल्य पुष्पों की भेंट चढ़ाई है। नारी की आह से ही कुरुक्षेत्र ढह गया और सुवर्ण की द्वारिका सागर की लहरों में डूब गयी। नारी के अश्रुओं में प्रलय का महासागर हा-हाकार करता है :—

"दहन शक्ति से मूल्य चुकाती,
नारी नर की जय का!
है नारी की सहन शक्ति में,
संस्थित केतु विजय का!
कुरुक्षेत्र ढह गया आह से,
स्वर्ण द्वारिका डूबी!
है नारी के अश्रु-बिन्दु में,
पारावार प्रलय का!"

नारी नर की मर्यादा है। जब-जब नर ने उस मर्यादा को तोड़ा, तब-तब सर्वनाश हुआ। नारी कृत्या, मृत्यु, उर्वशी, जननी, जाया, माया, तारिणी, कल्याणकारी आदि सभी कुछ है—

"नारी कृत्या, मृत्यु, उर्वशी,
जननी, जाया, माया।

क्षीरसिन्धु धारिणी, तारिणी,
महाशून्य की काया।
ऋतानृता, चिद्-अचिद् शक्ति वह,
नीरा - नाल कमलिनी।
वह हिरण्यगर्भा है जिसमें,
सब ब्रह्माण्ड समाया॥"

अर्जुन अश्व के रक्षक बने। उन्होंने समस्त दिशाओं के शत्रुओं को पराजित किया। द्रौपदी के पुण्यफल के प्रसाद से सुख-सम्पदा का प्रसार हुआ—

"सम्मुख मेध्य अश्व का रक्षक,
अपराजित घर आया।
सुख विकीर्ण है, दुख विदार्ण है,
द्रुपदा की पुन्याई॥"

युद्ध-क्षेत्र पर···· ···· ···· ····रीते ॥१॥

शब्दार्थ—वह्निसुता-वर=अग्नि-कन्या द्रौपदी के पति, पाँचों पांडव। कुररी-सी=कुररी के समान, क्रौंचपक्षी, टिटहरी। कौरवियाँ=कौरवों की स्त्रियाँ। रीते=खाली।

सन्दर्भ—यहाँ कवि अठारह दिवस के युद्ध मे महाविनाश का वर्णन कर रहा है—

व्याख्या—महाभारत का युद्ध अठारह दिवस तक होकर समाप्त हुआ। युद्ध-क्षेत्र में शान्ति छाई हुई है। नारी (द्रौपदी) के शाप के वशीभूत कौरव युद्ध में पराजित हुए और अग्नि-सुता द्रौपदी के पति पांडवों को विजय मिली। कौरवों की स्त्रियाँ कुररी के समान करुण विलाप करके रो रही हैं। उनके करुण विलाप से हृदय विदीर्ण हो रहा है। योद्धा युद्ध-भूमि में पड़े हुए चिर-निद्रा में सो रहे हैं। इतना भीषण नर-संहार हुआ कि भरे-पूरे घर खाली हो गये।

विशेष—१. करुण रस।

२. 'वह्निसुता-वर' में **छेकानुप्रास**।

३. 'कुररी-सी रोती' कौरवियों में उपमा ।
४. 'भरे-पुरे' में शब्द-मैत्री और अनुप्रास ।

मन में जल उठते···· ···· ···· ····कूल किनारा ॥२॥

शब्दार्थ—सुधि=स्मृति । शोणित=रक्त ।

सन्दर्भ—यहाँ कवि महाभारत के अठारह दिन के युद्ध में भीषण नर-संहार और मृत व्यक्तियों की विधवाओं के महा शोक और करुणा-क्रन्दन का वर्णन कर रहा है—

व्याख्या—भीषण युद्ध मे माताएँ पुत्र-हीना और वधुएँ पति-हीना हो गई हैं । उनके मन में जब अपने मृत पति पुत्रों की स्मृति के दीपक जलने लगते हैं अर्थात् स्मृति छा जाती है तब उनके नेत्रों में अन्धकार छा जाता है । उनके नेत्रों से इतनी वेगवती अश्रुओं की धारा प्रवाहित होती है कि वह रक्त की सरिता को भी बहा ले जाती है । कुल बधुओं के शोक में व्याकुल समूह शोकातुर सीता के समान दिखाई देता था । विधवाओं के सामने शोक का महासागर लहरा रहा था, उनको आर पार कुछ भी नहीं दिखाई देता था । उनके जीवन सागर का मूल किनारा डूब गया था, अर्थात् अब उनका कोई आश्रय नहीं रहा था ।

विशेष—१. करुण-रस ।

२. अलंकार—(क) 'सुधि-दीपक' में रूपक ।
(ख) दूसरी पंक्ति में रूपक ।
(ग) अन्तिम पंक्ति में अनुप्रास ।

३. भावसाम्य

"बाल हीना माता की पुकार कभी आती, और,
आता कभी आर्त्तनाद पितृहीन बाल का ;
आँख पड़ती है जहाँ हाय, वहीं देखता हूँ,
सेंदुर पुछा हुआ सुहागिनी के भाल का ।
बाहर से भाग कक्ष में जो छिपता हूँ कभी,
तो भी सुनता हूँ अट्टहास क्रूर काल का ।

और सोते-जागते में चौंक उठता हूँ, मानो,
शोणित पुकारता हो अर्जुन के लाल का।"
—'कुरुक्षेत्र'

सेनाएँ अब कहाँ···· ···· ···· ····अगवानी ॥३॥

शब्दार्थ—जेता = विजयी । अगवानी = स्वागत ।

सन्दर्भ—अठारह दिवस की भीषण नर संहारकारी महाभारत के युद्ध के पश्चात् चारों ओर विधवाओं और पुत्र-हीना माताओं का करुण क्रन्दन छाया हुआ है, परन्तु इसी बीच हस्तिनापुर में विजयी युधिष्ठिर के स्वागत की तैयारी हो रही है—

व्याख्या—अब सेनाएँ कहाँ हैं ? सारे सैनिक और सेनापति अठारह दिवस के भीषण युद्ध में मारे गये । अब वे युद्ध-भूमि में पड़े हुए चिर निद्रा में सो रहे हैं । कुलवधुओं का मस्तक पहले का ही है, परन्तु अब उस पर सौभाग्य सिन्दूर शोभा नहीं देता । परन्तु प्रकृति का कोई कार्य कभी नहीं रुकता । उषा और सन्ध्या की लाली कभी भी फीकी नहीं पड़ती इस विनाश की वेला में हस्तिना-पुर विजयी पांडवों के स्वागत के लिये सजा हुआ है ।

नई ध्वजाएँ···· ···· ···· ····इन्दु कला का ॥४॥

शब्दार्थ—कंचनदण्ड शलाका = वह स्वर्ण दण्ड, जिस पर ध्वजाएँ फहराई जाती हैं । वलाका = बगुलों की पंक्ति ।

व्याख्या—महाभारत के अठारह दिवस के भीषण नर संहार के पश्चात् चारों ओर करुण चीत्कार छाया हुआ ; परन्तु हस्तिनापुर में पांडवों के स्वागत की तैयारी हो रही है । कंचन दण्ड के शलाकाओं पर जो कौरवों की ध्वजाएँ लगी हुई थीं, उनको उतार कर उनके स्थान पर पांडवों की पताकाएँ फहराने लगी हैं । परन्तु प्रति वर्ष नए सारस, हंस और बगुले नवीनता प्रदान करते रहते हैं । इस विराट नीलाकाश में ज्योति पिंडों का आवागमन निरन्तर होता है । जीवन में चाहे कितना ही बड़ा व्यतिक्रम क्यों न उपस्थित हो, परन्तु दृष्टि की गति में अन्तर नहीं पड़ता । सुख दुःख का यह क्रम चलता ही रहता है । पांडवों के जीवन की अमावस्या बीत चुकी और कौरवों के संहार के बाद उनके जीवनाकाश में चन्द्रकला की स्निग्ध सुखद किरणों का उदय हुआ है ।

अलंकार—रूपक ।

सार्वदेव की दुहिता···· ···· ···· ····प्रलय का ।।५।।

शब्दार्थ—सार्वदेव की दुहिता=अग्नि की पुत्री अर्थात् द्रौपदी । द्रोणात्मज =अश्वत्थामा ।

सन्दर्भ—इस छन्द में कवि स्पष्ट करता है कि नर की विजय का मूल्य सदैव नारी चुकाती आई है । अपने पति पांडवों की विजय के लिए द्रौपदी को भी अपने पुत्र बलिदान करने पड़े--

व्याख्या—अग्निदेव की पुत्री द्रौपदी को महाभारत के युद्ध में विजय पाने का बड़ा मूल्य चुकाना पड़ा । उसके पति पांडवों को जो विजय प्राप्त हुई, उस विजय का तिलक उसने अपने भाई और वीर पुत्रों के बलिदान से किया । द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा ने युद्ध के अन्तिम दिन की रात्रि में पांचों पांडवों के भ्रम में उसके सुकुमार पुत्रों के शिर काटकर दुर्योधन को अर्पित किये थे । उसके इस निर्दयतापूर्ण कृत्य से पांचाल शिविर में प्रलय के रक्त की धारा प्रवाहित हो उठी थी ।

विशेष—यहाँ कवि ने नारी के महत्व का प्रतिपादन किया है । नारी नर की शक्ति है नर की विजय में नारी बराबर बलिदान करती आई है ।

नदी किनारे···· ···· ···· ····जगत्पिता का ।।६।।

शब्दार्थ—सुधि=स्मृति । नीलाम्बर=नीला आकाश ।

व्याख्या—युद्ध में मारे गये वीरों का दाह-संस्कार हो रहा था । स्थान-स्थान पर नदी के तट पर चिताओं का धुआँ उठ रहा था । सम्बन्धी जन अपने दिवंगत वीरों के पवित्र भस्मावशेष को नदी में प्रवाहित कर रहे थे । सरिताएँ उन स्मृति दीपों से भरी थीं । स्वर्ग में देवता पवित्र सामगन से युद्ध में वीर-गति पाये हुए वीरों का स्वागत कर रहे थे । जगत्पिता का विराट नीलाकाश रूपी आँगन इन मुक्त आत्माओं से जगमग हो रहा था ।

अलंकार—१. 'ठौर-ठौर' में **पुनरुक्तिप्रकाश** ।

२. 'सुधि के दीपों' में रूपक ।

३. 'नीलाकाश' में आंगन का आरोप होने से **रूपक** ।

अँधरायी धुमायित····　　····　　····　　····पाला ॥७॥

शब्दार्थ—अँधरायी = अंधकार से युक्त। धूमायित = धुएँ से भरी हुई। छायापथ = आकाश। धरा = पृथ्वी, रखवा लेना।

व्याख्या—महाभारत के भीषण नर-संहार के पश्चात् पृथ्वी पर चारों ओर करुण चीत्कार छाया हुआ है। मृतकों की चिताएँ जलने से जो धुआँ उठा है, उससे पृथ्वी में धुआँ और धुँधलापन छा गया है और मुक्त आत्माओं के कारण आकाश में प्रकाश छा रहा है। आगे कवि मानव-जीवन की नश्वरता एवं क्षण भंगुरता पर विचार करता हुआ कहता है कि मानव का जीवन क्षण मात्र में नष्ट होने वाला है। यह चिता की ज्वाला में एक क्षण में जलकर भस्म हो जाता है। दिवंगतों के चरण-चिन्ह ही छायापथ में जगमगाते हुए रह जाते हैं। अर्थात् उनके कार्यों की स्मृति हमारे सामने रह जाती है। जिस मानव-शरीर का पृथ्वी पालन-पोषण करती है। अन्त में उसे अपने में ही विलीन कर लेती है।

अलंकार—'धरा-धरा' में यमक अलंकार है।

रह जाती···　　····　　····मानस ॥८॥

शब्दार्थ—ऊष्मा = गर्मी। द्रवित दृगों = अश्रु बरसाते हुए नेत्र। पावस = वर्षा। हस्त = हाथ। परम पुरुष = ईश्वर। वसुन्धरा = पृथ्वी।

व्याख्या—प्रियमम की दुखद मृत्यु के पश्चात् मनुष्य के मन में शोक संताप की ऊष्मा ही रह जाती है और आंखों में वर्षा उमड़ पड़ती है। उन मुक्तात्माओं का मधुर प्रकाश आकाश में छाया रहता है। परन्तु धरती पर तो उनके दुःख को घना अंधकार फैलता जाता है। आकाश मानों पुरुष है। विधाता ने दाएँ हाथ से उसकी रचना की है और यह पृथ्वी नारी की भावना से ओत-प्रोत है। नारी की भाँति ही यह धरती माता सर्वसहा है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

कोटि-कोटि पुत्रों···　　····　　····बल है ॥९॥

शब्दार्थ—वत्सल = पुत्र के समान प्रेम करने वाली। भू = पृथ्वी।

सन्दर्भ—यहाँ कवि पृथ्वी को पुत्र-वत्सला मां के समान चित्रित कर रहा है—

व्याख्या—यह धरती कोटि-कोटि पुत्रों की माता है। इसका आंचल बहुत उदार है। यह अपने पुत्रों को जीवन और मरण दोनों ही अवस्थाओं में समता पूर्ण अंक प्रदान करती है। मनुष्य पृथ्वी माता की ही गोद में जन्म लेता है और मृत्यु के पश्चात् भी उसी की गोद में समा जाता है। युद्ध-क्षेत्र में बहुत से भाग्य विजय पाकर नगों के समान प्रकाशित हो जाते हैं, और अनेकों चिर-निद्रा में सो जाते हैं। युद्ध में चाहे कोई विजयी हुआ हो और चाहे पराजित हुआ हो, दोनों ही को पृथ्वी माता का ही एक मात्र बल प्राप्त है।

अलंकार—अनुप्रास।

भ्रातृ पुत्र-हीना···· ···· ····उधारी ॥१०॥

शब्दार्थ—सुवला गांधारी=सुवल सुता गांधारी। भ्रातृ-पुत्र-हीना=युद्ध में द्रौपदी का भाई धृष्टद्युम्न और उसके पाँचों पुत्र मारे गये थे। पुत्रों के तो अश्वत्थामा ने युद्ध के अन्तिम दिन की रात्रि में शीश काट लिये थे।

व्याख्या—द्रौपदी और गांधारी दोनों हो समान थीं। महाभारत के भीषण नर-संहार में दोनों ही भाई एवं पुत्रों से हीन हो चुकी थीं। द्रौपदी ने अपने पांचों पुत्रों तथा भाई धृष्टद्युम्न को खोया था, उसी प्रकार सुबला गांधारी ने युद्ध की अग्नि में अपने शत पुत्रों और भाई शकुनि की बलि दी। दोनों में अन्तर इतना ही था कि द्रौपदी सब कुछ हारकर भी विजयिनी थी, जबकि गांधारी सब प्रकार से हारी हुई थी। उसने अपने जिन पुत्रों को जन्म दिया था, उनका आजीवन मुख नहीं देखा था। परन्तु नियति की यह कैसी क्रूर विडम्बना थी कि उनके शव-दर्शन के लिये ही सती गांधारी ने अपनी दुःखी आँखों से पट्टी खोली।

अलंकार—प्रथम पंक्ति में उपमा अलंकार है।

तर्पण करते हुए···· ···· ····लेटा ॥११॥

शब्दार्थ—पार्थ=युधिष्ठिर। पृथा=कुन्ती। सहोदर=सगा भाई। हेठा =हीन। विवस्वान=सूर्य। जाया=जन्म दिया।

सन्दर्भ—कुन्ती माता का कथन युधिष्ठिर के प्रति है। वह मृतकों का तर्पण करते हुए युधिष्ठिर से कर्ण का भी तर्पण करने को कहती है—

व्याख्या—हे बेटा! तुम मृत सम्बन्धियों की आत्मा की शान्ति के लिए तर्पण कर रहे हो। कर्ण भी तेरा ज्येष्ठ सगा भाई था, किन्तु भाग्य का हीन था। सूर्य देव का आवाहन करके मैंने उसे जन्म दिया था। परन्तु विधाता के कटु विधान से वह भाई के हाथ से ही मारा जाकर आज चित्ता पर लेटा हुआ है।

विशेष—कुन्ती ने कौमार्य-जीवन में सूर्य का आवाहन कर कर्ण को जन्म दिया था। कर्ण महाबली था किन्तु वह अन्यायी कौरवों का समर्थन करता था, और महाभारत के युद्ध में वह कौरव-पक्ष का ही सेनापति बना था। अवैध-पुत्र होने के कारण कर्ण जीवन भर अधिकारों और समाज से उपेक्षित रहा।

अलंकार—'हाय' मे वीप्सा।

सुना मृदंगध्वज···· ···· ····अधिकारी ॥१२॥

शब्दार्थ—मृदंगध्वज = आकाश में मेघ मृदंग की-सी गुरु-गम्भीर गर्जना करते हैं, वही मानों अम्बर कीपताका है, । भू = पृथा, कुन्ती। रवि-सुत = सूर्य-पुत्र कर्ण।

याख्या—पृथा माता ने विलखते हुए युधिष्ठिर से कहा कि मैं जैसी तुम्हारी माता हूँ, वैसी ही कर्ण की भी। युधिष्ठिर, जो आकाश तत्व प्रतीक हैं और जिन के रथ की ध्वजा मृदंग-चिन्हित है, उन्होंने माता पृथा की दुःख पूर्ण बातों को सुना। माता पृथा ने कहा कि कर्ण कौरवों की तरफ से वचनाबद्ध होकर मिट जाने ही के लिए लड़ा था, क्योंकि तुम्हारा अग्रज कर्ण तुमको ही राज्य का अधिकारी मानता था।

विशेष—महाभारत का युद्ध प्रारम्भ होने से पूर्व कुन्ती ने कर्ण से कहा कि वह कौरवों का पक्ष छोड़कर पांडवों का साथ दे। परन्तु उसने इस बात को स्वीकार नहीं किया। साथ ही उसने कुन्ती को यह वचन दिया था कि वह अर्जुन के अतिरिक्त और किसी को नहीं मारेगा।

धर्मराज के सम्मुख···· ···· ····झुकाये ॥१३॥

शब्दार्थ—अग्रज = बड़े भाई। संभ्रमयुत = भ्रम से युक्त होकर।

व्याख्या—युधिष्ठिर मृत सम्बन्धियों की आत्मा की शान्ति के लिए तर्पण कर रहे थे। कुन्ती ने कहा कर्ण तुम्हारा सगा बड़ा भाई है अतः इसका भी तर्पण करो। माता के वचनों को सुनते ही धर्मराज युधिष्ठिर के समक्ष कर्ण के चरण सहसा आ गये। धर्मराज ने कर्ण के चरणों पर आदर के साथ अपने अश्रुओं को चढ़ा दिया। युधिष्ठिर की समझ में आज यह बात आ गई कि वे अपने अग्रज कर्ण के चरण अनजान में संभ्रम से युक्त होकर नेत्रों को झुकाये हुए क्यों देखा करते थे।

विशेष—कर्ण युधिष्ठिर का बड़ा भाई था। कर्ण के सामने होने पर वे नेत्रों को झुकाए हुए उसके चरणों को संभ्रम से युक्त होकर देखा करते थे, परन्तु उनको यह ज्ञात नहीं था कि कि कर्ण उनका ही भाई है। अपनत्व और एक ही रक्त से उत्पन्न होने के कारण उनके नेत्र कर्ण के चरणों के समक्ष झुक जाया करते थे। आज वे इसका कारण समझ गये थे।

माता के चरणों··· ···· पड़े थे ॥१४॥

शब्दार्थ—जेठे = बड़े।

व्याख्या—जेष्ठ पुत्र कर्ण के चरण माता के चरणों पर पड़े थे, इसीलिए धर्मराज कर्ण अग्रज के चरणों को देखा करते थे। धर्मराज युधिष्ठिर का मन उनको धिक्कार रहा था। वे पश्चाताप से भर रहे थे। धर्मराज यह सोचकर दु:खी हो रहे हैं कि जो उनके ऊपर मर मिटे हैं। वे बहुत बड़े थे।

अलंकार—"धर्मराज···· ····उनका" में **वीप्सा अलंकार।**

धर्मच्युत हो गए···· ···· ····उच्चारण ॥१५॥

शब्दार्थ—धर्मच्युत हो गये = धर्म से गिर गये। अच्युत = श्री कृष्ण। शयित हुए = सो गये। स्वयम् मंत्र दे मारण = स्वयं अपने मारने का उपाय बतलाकर।

व्याख्या—युधिष्ठिर विजय के उपरान्त पश्चाताप की आग में जल रहे थे। युद्ध में कृष्ण और पांडवों ने कौरवों को पराजित करने के लिए कई बार छल-पूर्ण नीतियों का आश्रय लिया। भीष्म के वध के लिए जगत् गुरु श्रीकृष्ण ने धर्म को छोड़ दिया। उन्होंने युद्ध में अस्त्र न उठाने की प्रतिज्ञा की थी, परन्तु

वे भीष्म के ऊपर रथ-चक्र लेकर उनको मारने के लिए दौड़े। भीष्म ने अपने वध का उपाय बतलाया। (भीष्म ने अर्जुन से कहा था कि यदि शिखंडी उनके सामने आ जायगा, तो वे धनुष वाण रख देंगे। पाँडवों ने ऐसा ही किया था। उधर मित्र-द्रोही धृष्टद्युम्न ने सबल स्वरों में अश्वस्थामा के मरण की घोषणा की। परन्तु धर्मराज युधिष्ठिर की संशय-सम्पन्न वाणी ने गुरु के वध का मार्ग और अधिक प्रशस्त कर दिया था। (द्रोणाचार्य को यह शाप था कि जब वे अपने पुत्र अश्वस्थामा की मृत्यु का समाचार सुनेंगे, तभी उनकी मृत्यु हो जायगी) धृष्टद्युम्न ने अश्वत्थामा की झूठी घोषणा की। धर्मराज ने अर्द्धसत्य अस्फुट वाणी में इस असत्य का समर्थन किया था। अब इन समस्त बातों का चिन्तन धर्मराज युधिष्ठिर के मन को पश्चाताप और अन्तर्द्वन्द्व से भर रहा है।

याद आ गई·· ···· ····ढकेला ॥१६॥

शब्दार्थ—वेला समय। व्याध=बहेलिया।

व्याख्या—विजय के पश्चात् धर्मराज युधिष्ठिर का मन पश्चाताप से भर रहा है। उनकी स्मृति में गुरु द्रोण के मरण की वेला आ गई। द्रोण निःशस्त्र थे। इसी समय निष्ठुर व्याघ्र बनकर द्रुपद-पुत्र धृष्टद्युम्न ने उनके शीश पर गदा का प्रहार किया। धृष्टद्युम्न के रूप में नियति ने जो क्रूरता का खेल खेला था, उसकी स्मृति युधिष्ठिर के मानस का मंथन कर रही है। वह होनी और अनहोनी भी धर्मराज को याद आ गई; जब कि अन्तरिक्ष ने उनके रथ को पृथ्वी की ओर ढकेल दिया।

विशेष—धर्मराज युधिष्ठिर आकाश पुरुष थे। वे पृथ्वी के मटमैले धरातल से ऊपर उठे हुए थे। उनको विवश होकर पृथ्वी के मटमैले धरातल पर आकर महाभारत के युद्ध में भाग लेना पड़ा।

धक् से लगा···· ···· ····राजकाज का ॥१७॥

शब्दार्थ—धरातल=पृथ्वी। स्यंदन=रथ।

व्याख्या—युद्ध में किस प्रकार छल-कपट और अधर्म के व्यापार से विजय मिली, इसको सोचकर धर्मराज युधिष्ठिर का हृदय ग्लानि और पश्चाताप से भर जाता है। उनका रथ 'धक्' का शब्द करता हुआ पृथ्वी के धरातल पर लग जाता है। लोकलाज के अत्यन्त भय से उनका हृदय धक्-धक् करके धड़कने

लगता है। क्षणमात्र में उनके रथ के साथ ही उनकी स्नायु-शिराएँ भी झन-झना उठती हैं और पार्थिव राज-काज का अचानक सूत्रपात उनके हृदय में हो जाता है।

दिव्य विकल था···· ···· ····क्षण में ॥१८॥

शब्दार्थ—दिव्य=धर्म और सत्य के प्रतीक युधिष्ठिर। राजकारण=राज धर्म। धर्म-अर्थ=धर्म और राजनीति। अवनि=पृथ्वी। व्योम=आकाश।

व्याख्या—सत्य और धर्म के प्रतीक धर्मराज युधिष्ठिर का हृदय भौतिक धरातल पर आकर व्याकुल हो रहा था। उनको पृथ्वी का आकर्षण अपनी ओर खींच रहा था। राजनीति के धरातल पर आकर अब दिव्य आदर्शों के आकाश में उनके लिए उड़ते रहना कठिन था।

धर्मराज युधिष्ठिर धर्म और सत्य के प्रतीक थे। द्रोणाचार्य के साथ युद्ध करते हुए उनके राजधर्म और धर्मराजस्व में संघर्ष चल रहा था। उन्होंने द्रोणाचार्य के वध का मार्ग झूठ बोलकर प्रशास्त किया। इसी प्रकार अश्वत्थामा के विषय में अर्द्ध सत्य के रूप में अस्पष्ट घोषणा की। उनके हृदय में युद्ध धर्म और राजनीति को लेकर भीषण अन्तर्द्वन्द्व चल रहा था। अन्ततः उनका धर्म राजस्व पराजित हुआ और राजधर्म की विजय हुई। युधिष्ठिर सत्य से विरत होकर असत्य के प्रति अनुगत हुए। इस प्रकार धर्म और राजनीति में समन्वय टूट गया। आकाश और पृथ्वी में व्यवधान हो गया। युधिष्ठिर के जीवन का रथ धरती की भौतिकता से ऊपर चला करता था, अब वह नीचे उतर कर अधर्म के पंक में फँस गया।

आत्मग्लानि वश···· ···· ····गाते थे ॥१९॥

शब्दार्थ—विपथ=मार्ग को छोड़कर कुमार्ग में। कालात्मज=धर्मपुत्र युधिष्ठिर।

व्याख्या—युधिष्ठिर आदर्श के उच्च आकाश से नीचे उतरकर पृथ्वी के मटमैले धरातल पर आ जाते हैं। उनके रथ के पहिये आत्म-ग्लानि के कारण पृथ्वी में गड़े-गड़े चल रहे थे, मानों वे विपथ में धूल उड़ाते हुए बढ़ते चले जा रहे हों। धर्मराज युधिष्ठिर देश-काल पर विजय करने में हार गये। युधिष्ठिर

के धर्म और सत्य की गाथा बड़े-बड़े लोग गाया करते थे। किन्तु आज वे पृथ्वी के मटमैले धरातल पर नीचे उतर कर आ गये।

धर्मराज भी····　　····　　····इंगित थे ॥२०॥

शब्दार्थ—विजित थे=हार गये थे। मर्म निहित थे=भेद समाये हुए थे। इंगित = संकेत।

व्याख्या—धर्मराज युधिष्ठिर का धर्म और सत्य राजधर्म के समक्ष पराजित हो गया। उनके सामने राजनीति और धर्म की जो द्वन्द्व पूर्ण उलझन थी, उसमें न जाने कितने भेद समाये हुए थे। उनके सामने यह समस्या भीषण रूप में उपस्थित थी कि धर्म व्यष्टिगत है या समष्टिगत। युद्ध-भूमि में श्रीकृष्ण की वह मुसकान थी, अथवा उनके माया से युक्त संकेत थे।

पड़े सोच में····　　····　　····बासन ॥२१॥

शब्दार्थ—हुतासत=अग्नि। नाज के बासन=अन्न के वर्तन मात्र।

व्याख्या—राजधर्म की रक्षा में युधिष्ठिर का धर्म राजस्व दवा-सा रह गया। युधिष्ठिर यह सब सोचते हुए चिन्ता-मग्न थे। इस अवसर पर अग्नि जैसे भौंहें तानकर उनसे कहने लगा कि तुम अपनी विजय में अधर्म की बात सोचते हो, परन्तु तुम इस बात को भूल गये कि रजस्वला एक वस्त्रा जीवनी शक्ति द्रौपदी को द्युत सभा में जब दुःशासन निर्वसन करने लगा, तब इसमें कौन-सा न्याय था? द्रौपदी को उसके केश पकड़कर खींचना कौन-सा धर्म और न्याय था। उस समय अनाज भरने के वर्तन बने हुए भीष्म और द्रोण चुपचाप बैठे रहे और अन्याय के विरुद्ध उनकी जिह्वा तक नहीं हिली।

अलंकार—"भीष्म····　　····　　····बासन" में **रूपक**।

व्यर्थ ज्ञान गौरव　　····　　····　　····भिक्षा ॥२२॥

शब्दार्थ—अनर्थगत=अनर्थ करने वाला। तितिक्षा=त्याग, विराग। शस्त्र गह=शस्त्र ग्रहण करके।

व्याख्या—हे युधिष्ठिर! भीष्म आदि गुरुजनों के वध पर तुम व्यर्थ ही पश्चाताप कर रहे हो। उनका ज्ञान और गौरव व्यर्थ था। वह अनर्थ का पोषक था। उसके सामने त्याग और विराग सब निष्फल हो गया। भीष्म और द्रोणाचार्य ने अस्त्र ग्रहण किये, किन्तु धर्मशास्त्र की शिक्षा नहीं दी। वे

हृदय की थाह मिल गई। उनको पृथ्वी माता स्वरूप कुन्ती माता की अश्रु से सिंचित मूर्ति स्मृति में आ गई। उसने अपने वैध पुत्रों के लिए अवैध आत्मज का त्यागन किया था। उसने आत्म ग्लानि के महायज्ञ में अपने आत्मज की पहली भेंट चढ़ाई थी।

विशेष—युधिष्ठिर को आत्मज्ञान होता है। वे समझ जाते हैं कि विश्व में विजय का मूल्य नारी अपनी दहन-शक्ति से चुकाती आई है। कुन्ती ने अपने वैध पुत्रों के लिए अवैध पुत्र की बलि दी, तभी उसके वैध पुत्र राज्य पा सके।

दिया नहीं आशीष''' .... ''''महतारी ।।२८।।

शब्दार्थ—धर्मज्ञा=धर्मपरायण।

सन्दर्भ—यहाँ कवि स्पष्ट करता है कि नारी का महात्याग और बलिदान ही पुरुष की विजय का कारण बनता है।

व्याख्या—दुर्योधन अपनी विजय के लिए माता गांधारी के पास विजय का आशीर्वाद लेने के लिए आया परन्तु धर्म परायण गांधारी जानती थी कि उसका पुत्र अधर्म के पथ पर है। अतः उसने उसे विजय का आशीर्वाद नहीं दिया। युधिष्ठिर कहते हैं कि हे माता! आपकी इस धर्म परायण बुद्धि पर मैं बलिहारी हूँ। आपके शाप से अभिशप्त होकर मेरे नख भले ही काले पड़ जायँ, परन्तु मेरे शीश पर आपकी कृपा का हस्त बना रहे। माँ! आपके आशीर्वाद से मैं धर्म-पुत्र बनूँ।

विशेष—दुर्योधन गांधारी के पास जाकर युद्ध में विजयी होने का आशीर्वाद माँगता है। परन्तु धर्म परायण गांधारी आशीर्वाद न देकर इतना ही कहती है—"जहाँ धर्म है वहाँ विजय है।" वह अपने अधर्म और अन्याय के पथ पर चलने वाले पुत्र को आशीर्वाद नहीं देती। युद्धोपरान्त कुरुक्षेत्र के मैदान में अपने मृत पुत्रों को देखकर गांधारी इतनी अधिक शोकातुर हो जाती है कि उसकी क्रोध भरी दृष्टि से युद्धिष्ठिर के रक्ताभ नख अचानक काले पड़ जाते हैं। युधिष्ठिर उनसे धर्म पुत्र होने का वरदान माँगते हैं।

सुबल सुता'''' .... ''''कहलाया। २९।।

शब्दार्थ—सुबल सुता=राजा सुबल की पुत्री गांधारी। हुताशन जाता=द्रौपदी। परीक्षित माता=उत्तरा। वार्ष्णेयी=कृष्ण। पांचाली=द्रौपदी।

सन्दर्भ—यहाँ कवि स्पष्ट करता है कि नारियों के ही महान् त्याग और बलिदान के परिणाम स्वरूप ही युधिष्ठिर को विजय श्री मिली—

व्याख्या—जिस प्रकार राजा सुबल की पुत्री गांधारी पुत्रों से हीन होकर दुखी हो रही थी, उसी प्रकार अपने पुत्रों और बन्धु को खोकर यज्ञजा द्रौपदी भी दुखी हो रही थी। राजा परीक्षित की माता कुन्ती की गोद में बैठी हुई पति-शोक में व्याकुल हो रही थी, सुभद्रा (कृष्ण की बहन) द्रौपदी, कुन्ती और गांधारी त्याग एवं बलिदान के कारण ही युधिष्ठिर अन्त में अनन्त विजय के स्वामी और युद्ध में विजयी कहलाये।

सुबला द्रुपदा···· ···· ···· ····आई ॥३०॥

शब्दार्थ—पृथा=कुन्ती। जेता=विजयी। विजय प्रसादी=विजय का प्रसाद।

व्याख्या—युधिष्ठिर विजयी होकर भी युद्ध के उन्माद में नहीं डूबे। वे परिणाम पर विचार करते हुए विषाद-मग्न हो रहे थे। उन्हें रणचण्डी ने विजय के अन्त में 'प्रसाद' के रूप में जीवन के इसी मर्म की ओर संकेत किया कि पुरुष हारे या जीते, पर उसका मूल्य तो नारी ही को चुकाना पड़ता है। गांधारी, द्रौपदी, कुन्ती, सुभद्रा आदि नारियों ने अपने पति-पुत्रों की भेंट रणचंडी को चढ़ाई और इसी भेंट के परिणाम स्वरूप युधिष्ठिर को विजय श्री मिली।

युद्ध महानद···· ···· ···· ····आरा ॥३१॥

शब्दार्थ—युद्ध महानद= युद्ध भीषण और विशाल नद है। क्षिप्रतर= तीव्र प्रवाहित होने वाली। दुस्साध्य =बहुत कठिन। अगम=जिसका पार न हो।

सन्दर्भ—यहाँ कवि स्पष्ट करता है कि मनुष्य की विजय का श्रेय नारी ही को है—

व्याख्या—युद्ध एक विशाल और भीषण नद के समान है। इसके उस पार विजय श्री है। युद्ध महानद की धारा बड़ी प्रखरता से प्रवाहित होती है। मनुष्य अकेले इस युद्ध रूपी महानद की धारा का पार नहीं पाता। उसके लिए

किनारा दूर ही रहता है। इस अगम और दुस्साध्य धारा में नारी ही नर की नय्या बनती है। वह मनुष्य के लिए जलधारा पर पतवार चलाती है।

अलंकार—युद्ध में महानद का आरोप होने से **रूपक**।

नारी नर की···· ···· ···· ····दहने में ॥३२॥

शब्दार्थ—निहित=समायी हुई। दहने में=जलने में।

व्याख्या—मनुष्य की विजय में नारी का महत्व प्रतिपादित करता हुआ कवि कहता है कि नारी मनुष्य की शक्ति है और दुःखों के सहन करने में ही उसकी शक्ति का परिचय मिलता है। उसका संताप मनुष्य को देदीप्यमान कर खरा स्वर्ण बना देता है उसके अश्रुकण ही रतनों से जड़े गहने हैं। उद्योग ही उसका जीवन है और उसका उद्योग ही सफलता को देने वाला है। उसे केवल श्रीफल (विजय) ही चाहिए। नारी में पौरुष की उद्दीप्ति समाई हुई है। नारी के दहने में ही मनुष्य के पौरुष की उद्दीप्ति प्राप्त करता है।

अलंकार—**रूपक**।

दहन शक्ति···· ···· ···· ··· प्रलय का ॥३३॥

शब्दार्थ—संस्थित=संस्थान बना हुआ।

व्याख्या—यहाँ कवि नारी को सृजन और विनाश का कारण मानता हुआ उसके महत्व का वर्णन कर रहा है। नारी मनुष्य की विजय का मूल्य अपनी दहन शक्ति से चुकाती है। नारी की महिमा उसकी सहनशीलता में है। वह जीवन में ताप, दुःख और कटुता सहकर पुरुष के जीवन में शीतलता, सुख और स्निग्धता का संचार करती है। इसी महाशक्ति में विजय का केतु संस्थान करता है। नारी की प्रचण्ड आह के ताप से कुरुक्षेत्र ढह गया और स्वर्ण-निर्मित द्वारका समुद्र की अथाह लहरों में समा गई। नारो के दुःख-दग्ध अश्रु कणों में प्रलय की लहरें हिलारें लेती हैं। द्रौपदी के अश्रुओं ने ही कौरवों का सर्वनाश किया।

प्रलय पूर में भी···· ···· ···· ····शैया ॥३४॥

शब्दार्थ—स्वयंवरा अंबा=काशी-नरेश की पुत्री अंबा जिसका कि स्वयंवर हो रहा था। शान्तनुनन्दन=भीष्म। शयित हुए=सो गये।

व्याख्या—यहाँ कवि स्पष्ट करता है कि नारी का अपमान विनाश का कारण बनता है। नारी पुरुष की कल्याणकारी होती है। प्रलय के समान लहाराते हुए जीवन-सागर में वही पुरुष की कर्णधार बनती है। वह दुःखी और अपमानित होने पर अपनी कल्याणकारी वृत्ति को छोड़कर संहार की ओर मुड़ती है। इस स्थिति में वह अपमान करने वाले व्यक्ति और समाज के लिए भीषण संहार और विनाश का कारण बनती है। शान्तनु-पुत्र भीष्म ने काशी-नरेश की पुत्री अम्बा को उसकी स्वयंवरा स्थिति में बलात् अपहरण किया। उसने हृदय से शाल्व को वरण किया था। इसके परिणाम स्वरूप एक दिन स्वयं भीष्म को शर-शय्या सजवाकर उस पर चिर-निद्रा में सोना पड़ा।

विशेष—अम्बा काशी-नरेश की पुत्री थी। उसने शाल्व को हृदय से वरण किया था। भीष्म उसका बलात् अपहरण कर लाये। जब भीष्म को अम्बा के शाल्व से प्रेम के रहस्य का पता लगा तब उन्होंने उसे शाल्व के पास भेज दिया, परन्तु शाल्व ने अम्बा को स्वीकार न किया। परिणाम स्वरूप अम्बा आजीवन दुःख भोगती रही। उसने भीष्म के बध के लिए अनेक उपाय किये। मृत्यु-काल में भीष्म को भीषण यातना भोगनी पड़ी। वाणों की शय्या पर उनको मृत्यु की प्रतीक्षा करनी पड़ी।

ढोल गँवार···· ···· ···· ····स्थित प्रज्ञा ॥३५॥

शब्दार्थ—"ढोल गँवार··········"—गोस्वामी तुलसीदास ने नारी के लिए कहा है—

"ढोल गँवार सूद्र पसु नारी।
सकल ताड़ना के अधिकारी॥"

अज्ञ=मूर्ख, बुद्धि-हीन। अवज्ञा=उपेक्षा, निरादर। कुपित=क्रोधित।

सन्दर्भ—यहाँ कवि नारी की महत्ता और सहनशीलता का वर्णन कर रहा है।

व्याख्या—नारी सहनशीलता की मूर्ति होती है। वह माँ, पत्नी, बहन आदि प्रत्येक रूप में पुरुष को शक्ति एवं प्रेरणा देने वाली होती है। वह चाहे मूर्ख और गँवार ही क्यों न हो। वह ताड़न की नहीं अपितु पूजन की अधिकारिणी है। वह अपमान की नहीं अपितु सम्मान की पात्रा है। महाभारत के युद्ध के पश्चात् गांधारी ने अपने शत् पुत्रों को मृत देखा। वह क्रोध

से विह्वल हो उठी। उसने कृष्ण को शाप दिया कि जिस तरह कुरुवंशियों का संहार हुआ है, उसी प्रकार यदुवंशियों, उनके मंत्रियों एवं पुत्रों का संहार कृष्णा के ही द्वारा होगा तथा स्वयं कृष्ण की मृत्यु अनाथ की तरह व्याध के वाण से होगी। कृष्ण ने नारी की महत्ता के कारण गांधारी के शाप को शीश पर धारण किया।

नारी कृत्या···· ···· ···· ····समाया ॥३६॥

शब्दार्थ—कृत्या = संहार करने वाली देवी। उर्वशी = एक अप्सरा का नाम है। जाया = माता। तारिणी = उद्धार करने वाली।

व्याख्या—यहाँ नारी के महत्व का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि नारी अपने विभिन्न रूप में गरिमामयी है। उसका महत्व विश्व में सर्वोपरि है। वह संहार करने वाली कृत्या और महाकाल है। अपने भीषण रूप में वह समस्त सृष्टि का संहार करने में समर्थ है। नारी उर्वशी अप्सरा के समान रमणीय भी है। वह जननी, जाया, माया, उद्धारक, कल्याण कारिणी आदि सभी कुछ है। नारी ही लक्ष्मी के रूप में क्षीर-सिन्धु में निवास करने वाली है। वह ही महापुरुष का विराट शरीर है। नारी ब्रह्मा की महान् शक्ति है और वही सृष्टि का आधार है। नारी वह हिरण्यगर्भा है, जिसमें समस्त ब्रह्माण्ड समाया हुआ है।

धर्म-प्राण···· ···· ···· ····पुन्याई ॥३७॥

शब्दार्थ—मनीषा = बुद्धि। जायी = जन्म दी हुई। विकीर्ण है = फैल रहा है। विदीर्ण है = नष्ट हो रहा है।

व्याख्या—कथानक का समापन करता हुआ कवि कहता है कि धर्मराज युद्धिष्ठिर के मन और प्राणों में धर्म निवास करता था और उनका संचालन यज्ञाग्नि से उत्पन्न द्रौपदी मनीषा के रूप में करती थी।

युधिष्ठिर के सभी भाई शीलवान और धैर्य सम्पन्न थे। वे सारे कार्य उनके इंगित पर करते थे। पांचों पांडवों में सम्मति थी। युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ किया। पराक्रम का प्रतीक अश्व छोड़ा गया, जिसके रक्षक धनुर्धर वीर अर्जुन थे। वे दिग्विजय करके यशस्वी होकर घर लौटे। युद्धिष्ठिर के राज्य में सुख-समृद्धि का प्रसार हुआ। दुःख सर्वथा लुप्त हो गये। यह सारा वैभव एवं सुख-सौभाग्य द्रौपदी की तपस्या और उसके अखण्ड पुण्य के परिणाम स्वरूप हुआ।

प्रश्नोत्तर

वर्तमान काव्यधारा और 'द्रौपदी'

आधुनिक काव्यधारा

प्रश्न १— वर्तमान काव्य-धारा (स्वतन्त्रता के पश्चात हिन्दी-काव्य-धारा) की विवेचना करते हुए उसमें द्रौपदी का स्थान और महत्व बतलाइये ।

भारतेन्दु-युग से काव्यधारा ने नई मोड़ ली और वह युग-परिस्थितियों और जन-जीवन के समीप आ गई। भारत के स्वतन्त्र होने से पूर्व वह सामाजिक, सांस्कृतिक और विशेषकर राष्ट्रीय-राजनीतिक आन्दोअन से अनुप्राणित रही। काव्य-प्रवृत्तियों की दृष्टि से उससे भारतेन्दु-युग, द्विवेदी-युग, छायावादी-रहस्यवादी युग और प्रगतिवादी युग पार किये। भारत के स्वतन्त्र होने पर देश के समक्ष नवीन राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक उत्थान की परिस्थितियाँ आईं, हिन्दी-काव्य में प्रयोगवाद के नाम पर नई कविता की प्रवृत्ति आई। वर्तमान काव्यधारा इन्हीं समस्त प्रवृत्तियों और विचारधाराओं से प्रभावित है।

पृष्ठभूमि

आधुनिक हिन्दी-काव्य का इतिहास खड़ी बोली हिन्दी-कविता के उद्भव और विकास का इतिहास है। इस काव्य-धारा का श्रीगणेश लगभग सन् १८५० ई० से ही हो जाता है, फिर भी भारतेन्दु-युग (सन् १८५०—१९०० ई०) तक तो प्रधानतया काव्य-रचना के लिए ब्रजभाषा को ही माध्यम बनाया गया। इस युग में श्रीधर पाठक ने ही खड़ी बोली की कुछ महत्वपूर्ण कविताएं की हैं। उन्हीं को आधुनिक-युग में खड़ी बोली हिन्दी-कविता का जन्मदाता माना जा सकता है, तथापि इस काव्यधारा का सम्यक् विकास द्विवेदी-युग (सन् १९००–१९३० ई०) में ही हुआ।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने खड़ी बोली के संस्कार का प्रथम प्रयत्न किया। उन्हीं के संरक्षण में युग के कवि खड़ी बोली को काव्याभिव्यक्ति का

माध्यम बनाने के लिए अग्रसर हुए। द्विवेदीजी ने खड़ी बोली की काव्य-भूमि को उर्वरा बनाने का सफल प्रयास किया। उनके समय में भाषा की व्यंजकता शक्ति का पूर्ण विकास न होने के कारण अभिधामूलक कथन एवं इतिवृत्तात्मकता की प्रधानता रही, फिर भी इस काल के कवियों ने भाषा के लिए सर्वथा नवीन आदर्श उपस्थित किया। द्विवेदी-युग राष्ट्रीय आन्दोलन और नव जागरण का युग था। परिणाम स्वरूप समाज-सुधार, राष्ट्रीयता, सांस्कृतिक पुनरुत्थान आदि से सम्बद्ध विषयों पर कविताएँ लिखी गईं। इस युग के प्रतिनिधि कवियों में श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय, 'हरिऔध, श्री मैथिलीशरण गुप्त, श्री रामनरेश त्रिपाठी, श्री माखनलाल चतेर्वेदी तथा बालकृष्ण शर्मा नवीन, आदि का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने अपने काव्य के द्वारा राष्ट्रीय जागरण का प्रबल स्वर मुखर किया। समाज -सुधार की चेतना जन-जन में जागृत थी। गान्धी-दर्शन के अनुरूप लोक-चेतना को चारित्रिक उत्कर्ष की दिशा में नया मोड़ दिया। उनकी कविताओं में सत्य, अहिंसा, बलिदान, आत्मोसर्ग, परोपकार आदि भाव ही विशेष रूप से व्यक्त हुए हैं। ऐसा करते हुए उनकी कविताएँ उपदेशात्मक हो गईं और शैली में इतिवृत्तात्मकता आ गई। सभी कविताओं में आदर्शवादी स्वर हैं, किन्तु इनमें कहीं-कहीं रुक्षता आ गई है।

द्विवेदी-युग के कवियों की काव्य-रचना में खड़ी बोली की प्रारम्भिक शैली का रूप दृष्टिगोचर होता है। सभी कवियों ने खड़ी बोली भाषा को काव्य का माध्यम बनाने का सफल उपक्रम किया। गुप्तजी ने खड़ी बोली को जनप्रिय सहजता प्रदान की और 'हरिऔधजी' ने संस्कृत तत्सम शब्दों से युक्त प्रांजल पदावली दी। रामनरेश त्रिपाठी ने सुबोधता, माखनलाल चतुर्वेदी ने भाषागत 'ओज, 'नवीनजी' ने भास्वरता प्रदान की। फिर भी इस युग को काव्य-भाषा में काव्या भिव्यक्ति में सुलभ व्यंजकता का सम्यक् विकास नहीं हुआ। अभिव्यक्ति में अभिधा-प्रणाली ही की प्रधानता रही। इसलिए काव्य में सहजता, सरलता तथा जनप्रिय बोधगम्यता विशेष रूप से रही। कविता दुरूह नहीं होने पाई।

खड़ी बोली हिन्दी-काव्य के विकास का दूसरा चरण 'छायावाद' है।

छायावादी काव्य-युग सन् १९ १ से १९३८ ई० तक माना जाता है। इस युग की काव्य-भाषा में लाक्षणिकता, चित्रोपमता, प्रतीकात्मकता, मधुरता, अभिव्यक्ति की वक्रता, ध्वन्यात्मकता, व्यंजकता आदि का समावेश हो गया। छायावादी कवि यथार्थ की कठोर भूमि को त्यागकर भावुकता, बायवीय कल्पना के स्थान पर स्थूल से सूक्ष्म की ओर उन्मुख हुए। डॉ० नगेन्द्र ने छायावाद का "स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह" स्वीकार किया है। सूक्ष्मता की अत्यधिक प्रवृत्ति ही उन्हें रहस्योन्मुखी बना देती है। इस धारा के प्रवर्तक कवि जयशंकर प्रसाद हैं। उन्होंने भाव और अभिव्यंजना की दृष्टि से जो नवीन दिशा दी, उसी ओर श्री सुमित्रानन्दन पन्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी, निराला, महादेवी वर्मा आदि कवि भी अग्रसर हुये। उक्त चारों कवि छायावाद के आधार स्तम्भ हैं। छायावादी काव्य का आन्दोलन शैलीगत वैशिष्ठय का ही रूप नहीं था, उसमें एक पुष्ट सांस्कृतिक दृष्टिकोण की झलक भी मिलती है। सर्वात्मवाद की पृष्ठभूमि मे उन्ह‍ोंने मानवतावाद का विराट् स्वरूप प्रस्तुत किया। प्रसादजी ने भाषा को मधुरता, पन्तजी ने भाषा को कोमलता, निराला जी ने भाषा को ओजस्विता एवं मुखरता तथा महादेवीजी ने सहज स्निग्धता प्रदान की है। छायावादी काव्य-युग **अभिव्यंजना-शिल्प का स्वर्ण-काल कहा जाता है।** इस काव्य में मुक्त आत्माभिव्यक्ति का सहज उच्छलन है। इसीलिए प्रगीत-काव्य में वैयक्तिक दृष्टिकोण इन सभी कवियों ने अपनाया। छायावादी काव्य में प्रगीत की समृद्धि के कारण ही इस 'प्रगीत-कला से मण्डित सौन्दर्यवादी काव्य कहा जाता है।

छायावाद के अतिरिक्त भावुकता तथा कल्पना की प्रतिक्रियास्वरूप **प्रगतिवाद का जन्म सन् १९४० के आस-पास** हुआ। इस धारा का काल अल्प है। विद्वानों ने इसे १९४७ तक माना है। इस कविता के प्रवर्त्तक छायावादी-काव्य के प्रमुख कवि श्री सुमित्रानन्दन पन्त व निराला जी हैं। इस काव्य का आग्रह यथार्थ जीवन की जटिल समस्याओं के प्रति है। इस काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ —शोषण के प्रति प्रबल आक्रोश, शोषितों के प्रति सहानुभूति, भारतीय संस्कृति की जर्जरित रूढ़ियों के प्रति विद्रोह, श्रमिकों के प्रति आदर-भाव, नारियों का सही सामाजिक मूल्यांकन आदि हैं। यह काव्य जनवादी विचार धारा से आन्दो-

लित काव्य है। विषय-चयन में समसामयिकता तथा अभिव्यक्ति में प्रसाद-गुण युक्त स्थूलता को अपनाया गय । इस धारा के कवियों में पन्तजी, निरालाजी, भगवतीचरण वर्मा, रामधारीसिंह 'दिनकर', शिवमंगलसिंह 'सुमन' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं ! इनकी भाषा का रूप लोक-प्रचलित भाषा है। भाषा में व्यावहारिकता है, उसमें सरलता और अनगढ़पन पाया जाता है। देश भाषा के अनेक शब्दों का इन कवियों ने प्रयोग किया है। हृदय की वेदनापूर्ण अनुभू-ि यों को सहज भाषा में व्यक्त किया है। इसलिये इनकी अभिव्यक्ति में नये सौन्दर्य का अभाव है। विषय भी सामान्य जीवन के धरातल से लिये जाने के कारण रुक्ष से लगते हैं। इसके परिणामस्वरूप प्रगतिवादी कही जाने वाली कविता में भाषा की कवित्व शक्ति का ह्रास हुआ।

प्रयोगवाद का जन्म सन् १९४३ ई० के 'तार-सप्तक' नामक पत्र से माना जाता है। इस धारा के उत्पादक अज्ञेयजी हैं। टी० एस० इलियट से प्रभावित होकर अज्ञेयजी ने प्रयोगवादी कविता को अपनाया। इस धारा के कवि छन्द के बन्धन तोड़कर नवीनता के पुजारी हैं। भाव-भाषा, छन्द, अलंकार सभी में इन्होंने नवीनता को अपनाया है। इसलिए इनकी कविता को प्रयोगवादी कविता कहा जाता है। कुछ कवि नवीनता के नाम पर ऐसे-ऐसे विचित्र प्रयोग कर रहे हैं, जिससे कविता जीवन से दूर होकर खिलवाड़ बनती जा रही है।

स्वतन्त्रता के पश्चात् हिन्दी-काव्य-धारा की दिशा

स्वतन्त्रता के पश्चात् बदली हुई परिस्थितियाँ हमारे सामने आईं अब तक काव्य में मातृभूमि की स्वतन्त्रा का तीव्र स्वर था। परन्तु अब बहुत सी आन्त-रिक और बाह्य समस्याएँ सामने आईं। इन्होंने हिन्दी-काव्य को पूर्ण रूप से प्रभावित किया। अब हमारे सामने देश के सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक उत्थान का प्रश्न प्रमुख रूप से सामने आया। स्वतन्त्रता के पश्चात् हिन्दी कविता में निम्नलिखित धाराएँ सामने आईं—

१. **प्रयोगवादी या नई कविता**

२. **प्रगतिवादी काव्यधारा**

३. परम्परावादी काव्यधारा

४. प्रगति, प्रयोग और परम्परा की समन्वित काव्यधारा

प्रयोगवादी नई कविता

हिन्दी में प्रयोगवाद का जन्म सन् १९४३ में 'तार सप्तक' के प्रकाशन से ही हो चुका था। प्रयोगवाद या प्रयोगशील काव्यधारा में ही कई अन्तर्वर्तिनी काव्यधाराएँ सामने आईं—**प्रयोगवाद, प्रयोगशील काव्य, नकेन-मंडल, नई कविता** आदि। नई कविता जगदीश गुप्त एवं रामस्वरूप चतुर्वेदी द्वारा संपादित 'नई-कविता' के प्रकाशान से सर्वप्रथम सन् १९५४ से प्रकाश में आई। इस नई कविता की बहुत आलोचना हुई। आज की नई कविता में गद्य तथा पद्य का भेद मिटता जा रहा है। इस 'नई कविता' के लिए आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी का निम्न कथन बहुत बहुत महत्वपूर्ण है—

"आज की नई कविता अपनी प्रयोगवादी सीमाओं का अतिक्रमण करने के प्रयत्न में नवीन मूल्यों की खोज में, सामाजिक चेतना की वास्तविकता के घनत्व से हीन एक भयानक शून्य में अटक गई है और उपचेतन व्यक्तितत्व के गर्त में धँसकर ऐसे अतिवैयक्तिक छाया-भावों तथा व्यक्तिगत रुचियों के भावना मूढ़ भेदोपभेदों, अतिवास्तबिक प्रतीकों तथा शशक-शृंग-बिम्बों को जन्म दे रही है, जिनका मानवता तथा लोक-मांगल्य से दूर का भी सम्बन्ध नहीं है। इस प्रकार वह एक कृत्रिम भाविक अलंकरण मात्र बनती जा रही।" [**चिदम्बरा की भूमिका**]

प्रगतिवादी काव्यधारा

स्वतन्त्रता के तुरन्त वाद सन् १९४८ में प्रगतिवादी काव्यधारा के बहुत से कवि प्रयोगवादी काव्यधारा की ओर उन्मुख हो उठे। प्रगतिवाद की काव्य-शुष्कता, सिद्धान्त-कथन आदि ने उसका मार्ग अवरुद्ध कर दिया। किन्तु इससे प्रगतिवाद का औचित्य समाप्त नहीं हो जाता। प्रगति तो युग की अनिवार्यता है, जिसकी ओर मानव के चरण दृढ़ता से बढ़ रहे हैं। जिन दायित्वों को निभाने के लिए प्रगतिवाद का जन्म हुआ था, वे अब युग-सत्य बन गये हैं। वर्ग-हीन, शोषण-युक्त समाज-व्यवस्था में परस्पर सहयोग, शान्ति, प्रेम और

सद्भाव से मानव-जीवन को सुखी और सम्पन्न बनाने के लिए हिन्दी की प्रगति-वादी धारा ने जन्म लिया था। आज सारा देश ही वर्ग-भेद-रहित शोषणयुक्त समाजवादी समाज-व्यवस्था की निर्माण-स्थिति से गुजर रहा है। अतः प्रगति-वादी कविता का कर्तव्य हो जाता है, कि संकीर्णताओं से निकलकर आज के इस युग-सत्य को साकार रूप प्रदान करे।

परम्परावादी काव्यधारा

आज भी अनेक कवि परम्परागत मान्यताओं पर पुराने ढर्रे की काव्य-रचना कर रहे हैं। किन्तु इनमें भी प्रगति और प्रयोग की नई चेतना का प्रभाव यत्र-तत्र दिखाई देता है। पन्त जैसे कवि नई काव्यधारा के साथ घुल-मिल गये हैं। वर्तमान के हिन्दी-काव्य में न तो वस्तु और न कला की दृष्टि से ही परम्परावादी चेतना विकास पा सकी है।

प्रगति, प्रयोग और परम्परा की समन्वित काव्यधारा

प्रगति और प्रयोगवाद की अतिवादी संकीर्णताओं से अब नई कविता निकलकर नई दिशा की ओर उन्मुख हो रही है। उसमें अब प्रेषणीयता और समाज-सापेक्षता आती जा रही है, परन्तु नई कविता के कवियों में अभी भी व्यक्तिवादी भटकाव बना हुआ है। 'प्रगति' और प्रगोग का संघर्ष समाप्त होता जा रहा है। हिन्दी काव्य की नई धारा एक नई स्वस्थ दिशा में प्रवाहित हो उठी है। वह अपनी संकीर्णता से बाहर निकलकर 'प्रयोग', 'प्रगति' और 'परम्परा' के स्वस्थ सन्तुलन के द्वारा जीवन-सत्यों की ओर अग्रसर हो रही है। स्वतन्त्रता के पश्चात् की हिन्दी की कविता की यही सबसे बड़ी विशेषता रही है कि हिन्दी के कवि किसी एक धारा के साथ अपने को न बाँधकर वे सही मार्ग के अन्वेषण की ओर बढ़ते रहे हैं।

वर्तमान हिन्दी काव्यधाराओं और अन्तर्धाराओं का वर्गीकरण

वर्तमान हिन्दी-काव्य के पहले—१. **व्यक्तिपरक** और २. **समाजपरक**—दो भेद किये जा सकते हैं। **व्यक्तिपरक काव्य, १ व्यक्तिपरक मुक्तछन्द काव्य** और १. **व्यक्तिपरक गीत काव्य** दो अन्तर्धाराओं में विभाजित किया जा सकता है। व्यक्तिपरक मुक्तछन्द-काव्य अन्तर्धारा के अन्तर्गत दो सह अन्तर्धाराएँ—

१. व्यक्तिवादी चेतनामूलक अनास्थावादी काव्यधारा तथा २. समष्टि चेतना मूलक आस्थावादी काव्यधारा और मिलती है। व्यक्तिपरक गीत काव्य अन्त-र्धारा—१. निराशाजनक वेदनामूलक गीत और २. आशाजनक जिजीविष-मूलक गीतों में प्रवाहित हुई है।

समाज परक काव्यधारा—१. प्रबन्ध काव्य २. मुक्तक कविताएँ तथा गीतकाव्य—दो उपधाराओं में प्रवाहित हुईं।

काव्य-रूप तथा कला और शिल्प

स्वतन्त्रता के पश्चात् हिन्दी-कविता में जहाँ विषय-वस्तु की दृष्टि से विविधता परिलक्षित होती है, वहाँ काव्य-रूपों तथा अभिव्यक्ति के विभिन्न उपकरणों—भाषा, छन्द अलंकार आदि नए-नए प्रयोगों की प्रवृत्ति भी दिखाई पड़ती है। इस काल में प्रायः परम्परागत काव्य-रूपों ही को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया गया है, परन्तु इनमें युग के अनुरूप नवीनता लाने का सफल प्रयास किया गया है। साथ ही स्वतन्त्रता से पूर्व प्रचलित अनेक कम प्रचलित रूपों का परिष्कार कर उनको प्रचलित किया गया है तथा नये काव्य-रूपों का भी प्रयोग किया गया है।

प्रबन्ध काव्य

स्वतन्त्रता के पश्चात् लगभग दो दर्जन से अधिक प्रबन्ध-काव्य लिखे गये। इनमें कथा की दृष्टि से परम्परागत मान्यताओं का ही निर्वाह किया गया। प्रायः सभी प्रबन्ध और गाथा-काव्य इतिहास के प्रसिद्ध पात्रों और घटनाओं पर आधारित हैं, परन्तु नायक, सर्ग तथा छन्द-विधान में सर्वथा स्वच्छन्द प्रवृत्ति को ग्रहण किया गया है। यद्यपि इनके विषय पुराने हैं किन्तु युग की नई चेतना अभिव्यक्त हुई है। कुछ प्रबन्ध-काव्यों में आधुनिक काल के विषयों को भी लिया गया।

छन्द-मुक्त काव्य

वर्तमान काव्य-युग को सहज ही छन्द-मुक्त काव्य का युग कहा जा सकता है। सारी प्रयोगवादी नई कविता छन्द-मुक्त काव्य ही है। इसमें कवि किसी छन्द को सीमा को नहीं स्वीकार करता। वह सहज भावानुभूति को सहज रूप

में अभिव्यक्त कर देता है। लय, शब्द-योजना और पंक्ति-योजना आदि के बन्धन नई कविता में नहीं मिलते।

गीत काव्य

हिन्दी में गीत-काव्य की परम्परा बहुत पुरानी है। वर्तमान कविता में गीत-काव्य में लोक-गीतों का प्रवेश एक बहुत बड़ी उपलब्धि कही जा सकती है। गजल, रुबाई, शेर और सॉनेट भी लिखे गये।

काव्य-शिल्प के क्षेत्र में भी नए प्रयोग हुए, इनको बिम्ब-विधान, प्रतीक-विधान तथा भाषा के रूप में देखा जा सकता है। आज की कविता में रूप, रस, गन्ध तथा भावों की विविध स्थितियों आदि भावों के सफल बिम्ब प्रस्तुत करने के लिए नई उपमाओं, रूपकों, उत्प्रेक्षाओं और प्रतीकों के प्रयोग की दृष्टि से वर्तमान कविता निश्चय ही बहुत समृद्ध है। कुछ उदाहरण लीजिए—

मस्तक की शून्यता तथा अस्वस्थता का बिम्ब—

"मस्तक इतना खाली-खाली
लगता जैसे—
हो कोई सड़ा हुआ नारियल।"

मस्तक के अँधियारे से रात के अँधियारे का बिम्ब—

"चाँदनी रात सित चितकबरी
उसे भूखंड की गंजी सतह पर
खोह से खंडहर,
कपालों से धँसा ज्यों रेंगता मनहूस अँधियारा।"

नई उपमाओं में माँ बनी नारी का भोगवादी दृष्टिकोण—

"अब हो तुम
पतझर की धरा-सी उजाड़,
सांझ-सी वीरान
बासी ककड़ी-सी अलसाई;

अब तुम ढल चुकीं;
अब तुम चार-चार बच्चों की माँ हो।"

नई-नई उपमाओं के माध्यम से सूर्य और शुक्र तारे का नया बिम्ब विधान

"नए दूल्हे-सा सूरज, नव बधू सा शुक्र तारा,
इन्जन के हेड-लाइट-सा सूरज गार्ड की रोशनी
सा शुक्र तारा, दिए से, बल्ब से तारे-पैट्रोमैक्स
सा सूरज, बैलगाडी की लालटेन-सा शुक्र तारा।
मिनिस्टर-सा सूरज, एम०एल०ए० सा शुक्र तारा।"

प्रतीक-विधान

वर्तमान कविता में नए-नए प्रयोग की प्रवृत्ति बहुत अधिक बढ़ गई हैं। निम्न कविता में समग्र रूप से जीवन में भौतिक मान्यता के 'मडगार्ड' की आवश्यकता की प्रतीकात्मक व्यंजना की गई है—

"बिना मडगार्ड का पहिया
जभी चलता
बड़ी कीचड़ उछलती है,
अगर हो खुश्क मौसम
तो बहुत ही धूल उड़ती है,
सड़क पर चल रहे जो भी
उन्हें यह बहुत खलती है।
न उछले गन्दगी यह
इसलिए
मडगार्ड का होना जरूरी है
बिना मडगार्ड पहिये की—
बनावट भी अधूरी है।"

छन्द-विधान और भाषा

आज की कविता में परम्परागत छन्द-योजना के साथ-साथ उर्दू की गजल और रुबाई की तर्ज पर लोक-गीतों की धुनों पर नवीन छन्द-योजनाएँ

की जा रही हैं। अतुकान्त मुक्त-छन्द के प्रयोग की प्रवृत्ति विशेष रूप से बढ़ रही है। इस युग के कवियों ने भाषा और शब्दों का नया संस्कार कर नये-नये अर्थों की प्रतिष्ठा कर नये अर्थों की व्यंजना करने वाले शब्दों का निर्माण किया है। उर्दू, अंग्रेजी तथा जन-भाषाओं के शब्दों को ग्रहण कर हिन्दी को समृद्ध बनाया जा रहा है। इससे हिन्दी की अभिव्यंजना-शक्ति भी बढ़ रही है।

इस प्रकार वर्तमान काव्य-धारा छायावादी अतीन्द्रिय, अमूर्त चित्र-कल्पना के स्थान पर जीवन और युग-सत्य की अभिव्यक्ति की ओर अग्रसर हुई है। काव्य-कला के प्रति भी नई कविता मे सजगता है। छायावाद ने काव्य को नितान्त वायवीय बना दिया था और प्रगतिवाद ने इसमें अनगढ़पन बढ़ा दिया था तथा प्रयोगवाद ने नए प्रयोगों के आग्रह में शैली-शिल्प को गद्यवत् और प्रवाह-हीन बना दिया था। वर्तमान हिन्दी-कविता इन तीनों स्थितियों को पारकर सुन्दर और सम्पन्न साज-सज्जा की ओर बढ़ रही है। वर्तमान-हिन्दी कविता से हिन्दी काव्य-विकास की सम्भावनाएँ निम्न शब्दों में प्रकट की जा सकती हैं—

> "अब आज आत्मा की सृजनातुर वैदेही,
> परित्यक्ता मन से क्षीण, विवश
> संशय और अनिश्चय की अटवी में
> पा गई शरण वाल्मीकि सरीखे
> काव्य-वृत्त छाया में।
> वह जन्मेगी वे पुत्र जो कि उसकी पीड़ा सस्वर गाएँ।
> जो सहज सत्य के भटके नृप की जननी तक वापस लाएँ।"

श्री नरेन्द्र शर्मा कृत आलोच्य द्रौपदी प्रबन्ध काव्य के अन्तर्गत खण्ड-काव्य है, जो वर्तमान प्रबन्ध काव्य-श्रृङ्खला में एक महत्वपूर्ण कड़ी है। अतः वर्तमान प्रबन्ध काव्य और उनमें द्रौपदी का स्थान और महत्व निश्चित करना उपयुक्त ही होगा।

वर्तमान प्रबन्ध-काव्य और द्रौपदी

स्वतन्त्रता के पश्चात् हिन्दी-काव्य-क्षेत्र में दो दर्जन से अधिक प्रबन्ध-

काव्य लिखे गये। इनमें महाकाव्य और खण्डकाव्य दोनों ही प्रकार के काव्य हैं। पौराणिक तथा ऐतिहासिक कथाओं के अतिरिक्त आधुनिक जीवन की समस्याओं को भी प्रबन्ध-काव्यों का विषय बनाया गया है। विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से प्रबन्ध-काव्यों को दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है—

१. **जिनमें व्यक्ति को नायक बनाया गया है**—जैसे—साकेत-सन्त, उर्मिला, रावण, उर्वशी, महारथी कर्ण, जननायक, प्रेमचन्द, मीरा, बाणाम्बरी आदि।

२. **जिनमें व्यापक रूप से तत्कालीन जीवन और संस्कृति का चित्रण** हुआ है। जैसे—मेधावी, रामराज्य, आर्यावर्त आदि।

काल के अनुसार वर्तमान प्रबन्ध-काव्यों का विभाजन निम्न प्रकार किया जा सकता है—

१. **रामायणकालीन प्रबन्ध-काव्य**

साकेत-सन्त, रामराज्य, उर्मिला, रावण।

२. **महाभारत कालीन प्रबन्ध-काव्य**

एकलव्य, रश्मिरथी, जयभारत, महारथी कर्ण, अंगराज, कृष्णायन, कनुप्रिया, तारक वध, द्रौपदी, उत्तरजय।

३. **विविधकालीन प्रबन्ध-काव्य**

उर्वशी, विष्णुप्रिया, पार्वती, आर्यावर्त, बाणाम्बरी, मीरा, ऋतुम्बरा, वर्धमान, सारथी।

४. **आधुनिककालीन प्रबन्ध-काव्य**

जन-नायक, मेधावी, प्रेमचन्द।

'अंगराज', 'महारथी कर्ण' और 'रश्मिरथी' में कर्ण को नायक बनाया गया है। तत्कालीन समाज की छुआछूत, वर्ग-वैषम्य तथा दलित वर्ग की समस्याओं की पृष्ठभूमि में वर्तमान युग की समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। 'विष्णुप्रिया', 'द्रौपदी', 'पार्वती', 'उर्मिला', 'मीरा', 'कनुप्रिया', 'बाणाम्बरी', उर्वशी आदि नारी-मनोविज्ञान, नारी-जीवन की समस्याओं आदि के माध्यम से वर्तमान-युग की नारी समस्याओं को प्रस्तुत किया गया है

'वर्धमान' में महावीर स्वामी के जीवन को सामने लाकर आज के युग की समस्याओं का समाधान करने का प्रयास किया गया। 'कृष्णायन' ब्रजभाषा का महाकाव्य है। इसमें कृष्ण को राम की परम्परा में देखा गया है। 'साकेत-सन्त' के नायक भरत हैं। इसमें भ्रातृ-प्रेम का अनुपम आदर्श प्रस्तुत किया गया है। 'जय-भारत' महाभारतकालीन घटना-प्रधान काव्य है। 'एकलव्य' में वर्ग-वैषम्य का मार्मिक चित्रण है। 'जननायक' के नायक महात्मा गान्धी हैं। इसमें गान्धीवादी विचारधारा तथा वर्तमान जीवन की समस्याओं का चित्रण किया गया है। 'उर्वशी' इस काल का सर्वश्रेष्ठ प्रबन्ध-काव्य है। 'सारथी' एक प्रतीकात्मक प्रबन्ध-काव्य है। 'आर्यावत' में प्राचीन भारतीय गौरव का चित्रण किया गया है। 'प्रेमचन्द्र' जीवनीपरक प्रबन्धकाव्य है। मेधावी' में आदि युग से वर्तमान तक की समस्याओं का चित्रण किया गया है। उपर्युक्त प्रबन्ध-कव्यों में निम्नलिखित सामान्य विशेषताएँ देखी जा सकती हैं—

१. युद्ध और शान्ति तथा हिंसा और अहिंसा का चित्रण प्रायः प्रत्येक में हुआ है।
२. व्यक्ति और समाज के पारस्परिक सम्बन्ध की स्थापना की गई है।
३. वर्ग एवं वर्ग-वैषम्य पर करारा प्रहार किया गया है।
४. पौराणिक विषयों के माध्यम से आधुनिक समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है।
५. नारी-पुरुष के काम सम्बन्धों का दार्शनिक विश्लेषण किया गया है।
६. इन प्रबन्ध-काव्यों पर गांधीवाद, मार्क्सवाद और फ्रायडवाद का किसी न किसी रूप में अवश्य प्रभाव पड़ा है।
७. उपेक्षित और निम्न वर्ग के व्यक्तियों को भी नायकत्व प्रदान किया गया है।
८. भाषा, छन्द, अलंकार, शब्द-शक्ति आदि अभिव्यक्ति के उपकरणों का यथा-सम्भव स्वच्छ उपभोग किया गया है।
९. खण्ड-काव्य और महाकाव्य की प्राचीन शास्त्रीय मान्यताओं की प्रायः उपेक्षा की गई है।

१०. राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय और लोक-चेतना के प्रसार का प्रयास किया गया है।

'द्रौपदी' काव्य में द्रौपदी-स्वयंवर से लेकर महाभारत के युद्ध में पांडवों की विजय तक की कथा है। इस लघु-काव्य में कथा के विस्तार के लिए स्थान नहीं हो सकता था। अत: कवि ने समास-शैली में सारी कथा प्रस्तुत की है। कथा को पांच लघु सर्गों में विभाजित किया गया है। महाभारत के मुख्य पात्रों और मूल-भाव की इसमें रूपकात्मक व्यख्या की गई है। इससे युधिष्ठिर गगन, भीम समीर, अर्जुन पावक, नकुल जल और सहदेव क्षिति के प्रतीक हैं। इसी प्रकार धृतराष्ट्र अन्धमानस और उनके पुत्र इच्छाओं के प्रतीक हैं। कर्ण का अर्थ अवैध भाव है। द्रौपदी को जीवनी शक्ति माना गया है, जो उक्त पांचों तत्वों को एक करके प्रेरणा प्रदान करने वाली है। अन्य महत्वपूर्ण घटनाओं को संगति प्रदान करने के लिए भी विविध रूपक बाँधे गये हैं।

'द्रौपदी' पौराणिक गाथा की तात्विक व्याख्या है। इसमें कवि की चिन्तन-शक्ति का परिचय अवश्य मिलता है, परन्तु यह काव्य-क्षेत्र से बहुत कुछ दूर जा पड़ा है। यदि उसने 'पद्मावत' और 'कामायनी' की तरह रूपक बांधा होता, तो उसे इतनी क्लिष्ट कल्पनाएं न करनी पड़तीं। इस दृष्टि से 'द्रौपदी' रसमय काव्य न रहकर क्लिष्ट काव्य बन गया है।

'द्रौपदी' काव्य की कथा द्रौपदी के स्वयंवर से प्रारम्भ होती है।

"द्रौपदी जीवनी शक्ति,
सौंप दी गई पांच तत्वों को।
पर कहा नियति ने, पार्थ !
करो अब प्राप्त लुप्त सत्वों को।।"

पांचों पांडव पांच तत्वों के प्रतीक और द्रौपदी उन तत्वों को संश्लिष्ट करने वाली जीवनी शक्ति की प्रतीक है। जीवनी शक्ति द्रौपदी के द्वारा संश्लिष्ट होकर पांडव अपने लुप्त स्वत्वों को प्राप्त करते हैं। द्रौपदी स्वयंवर से पूर्व पांडव ब्राह्मण-वेश में भिक्षाटन करते थे। द्रौपदी के संयोग से वे स्वधर्म और पैतृक राज्य को पुन: प्राप्त करते हैं। द्रौपदी स्वयंवर के अवसर पर ही पांडवों का कृष्ण से मिलन होता है।

द्रौपदी प्रतीकात्मक काव्य है और इस दृष्टि से आधुनिक कथा काव्यों में इसका दूसरा विशिष्ट स्थान बन गया है ।

प्रश्न २—'द्रौपदी काव्य की कथावस्तु संक्षेप में लिखिये ।

उत्तर—'द्रौपदी काव्य की कथा का प्रारम्भ द्रौपदी-स्वयंवर से होता है । यहां से लेकर महाभारत के अट्ठारह दिवसीय युद्ध एवं युद्ध में पांडवों की विजय तक की सुविशाल कथा को कवि ने समास-शैली में इस प्रकार कह दिया है कि कोई भी प्रमुख घटना छूटने नहीं पाई है । सारी कथा को एक प्रतीक कहा गया है । पांडव पांच तत्वों के प्रतीक हैं । द्रौपदी स्वयंवर से पूर्व वे शक्ति-हीन बने हुए ब्राह्मण वेप में भिक्षाटन करते फिरते थे । द्रौपदी उनको जीवनी-शक्ति के रूप में प्राप्त होती है ; जो पांडव रूपी पंच तत्वों को संश्लिष्ट कर उन्हें शक्ति प्रदान करती है । वे अपने स्वत्व और अधिकारों के लिए कौरवों से युद्ध करते हैं । परिणाम स्वरूप विजय भी उनको प्राप्त होती है ।

द्रौपदी की समस्त कथा पांच सर्गों में विभाजित है, जो निम्न प्रकार है ।

प्रथम सर्ग

कथा की पृष्ठभूमि

कथानक का प्रारम्भ रूपक की पृष्ठभूमि में होता है । पाचों पांडव युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव क्रमश: आकाश, वायु, अग्नि, जल और पार्थिव तत्व के प्रतीक हैं । होमजा द्रौपदी इन पंचभूतों में जीवन-शक्ति का संचार करती है । पंच भूत रूपी पांडव जीवनी शक्ति के एक सूत्र में बंधकर कर्त्तव्य दायित्व और अधिकार के प्रति सजग होते हैं । जीवनी-शक्ति द्रौपदी ने पंच तत्व रूप पांडवों को प्रेरित करते हुए कहा—

"द्रौपदी जीवनी शक्ति,
सौंप दी गई पाँच तत्वों को ।
या कहा नियति ने पार्थ !
करो अब प्राप्त लुप्त सत्वों को ।।
पुरुषार्थ करो, युग पुरुष,
कह रही याज्ञसेनि पांचाली ;
लाक्षागृह के संग हो गई,
भस्म निशा भय वाली ।"

जब तक जीवनी शक्ति रूपी द्रौपदी ने पंच तत्व रूपी पांडवों को संश्लिष्ट नहीं किया था ; तब तक वे अपने कर्त्तव्य एवं दायित्व से विमुख और चेतना हीन थे। परन्तु जीवनी-शक्ति रूपी द्रौपदी का स्पर्श होते ही आकाश तत्व युधिष्ठिर में स्पन्दन हुआ, पवन-तत्व भीम में वेग आया, अग्नि-तत्व अर्जुन में तेज का उदय हुआ, सलित-तत्व नकुल में रसमयता और धरती तत्व सहदेव के प्राणों में सुगन्ध आई। धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन और दुःशासन आदि के पशुबल से यह भूमि शासित थी। सृष्टि कल्याण के लिए इन पशुओं की बलि देना आवश्यक था। बिना धरती के आकाश-तत्व की कल्पना नहीं हो सकती। पंच-तत्वों के प्रतीक युधिष्ठिर, अर्जुन भीम आदि का महत्व द्रौपदी रूपी जीवनी शक्ति के द्वारा स्थापित हुआ।

कवि कथानक के रूपक तत्व और पृष्ठभूमि का परिचय देता हुआ युद्ध-भूमि में आ जाता है, जहाँ कर्ण और अर्जुन का संघर्ष छिड़ा हुआ है—

'संघर्ष कर रहा कर्ण,
कर्ण से छिड़ा युद्ध अर्जुन का।
पृथ्वी का पुत्र अवैध,
कर्ण पर पक्का अपनी धुन का।'

यहीं कवि कर्ण के अवैध सन्तान होने का वर्णन करता है।

इसके बाद ही कवि कर्ण की पराजय और मृत्यु दिखाकर प्रथम सर्ग की कथा समाप्त करता है—

''अस्ताचल गामी सूर्य,
सिंहपति आहत मीन निलय में,
खो गई कर्ण की कीर्ति
द्रौपदी पति पांडव की जय में।'

द्वितीय सर्ग

प्रथम सर्ग परिचयात्मक है। पांडव निष्क्रिय और निराश्रय होकर ब्राह्मण

वेश में भिक्षाटन करते फिरते थे। वे स्वयंवर में द्रौपदी को प्राप्त करते हैं। द्रौपदी जीवनी शक्ति की प्रतीक है। वह पंच तत्वों के प्रतीक पांडवों को संश्लिष्ट कर उन्हें शक्ति प्रदान करती है और कर्तव्य के पथ पर लाकर अधिकारों के लिए युद्ध के लिए प्रेरित करती है। प्रथम सर्ग में परिचय का अन्त करते-करते कवि कथा-शिल्प के लाघव से महाभारत के युद्ध तक आ जाता है। अर्जुन और कर्ण का भीषण युद्ध हो रहा है। कवि कर्ण का परिचय अवैध सन्तान के रूप में देता है। प्रथम सर्ग की समाप्ति अर्जुन द्वारा कर्ण की मृत्यु पर होती है—

"खो गई कर्ण की कीर्ति,
द्रौपदी-पति पांडव की जय में।"

द्वितीय सर्ग का पहला छन्द पहले सर्ग के अन्त के सन्दर्भ में हैं, जो पिछली कथा से सम्बन्ध जोड़ देता है—

"हो गई कर्ण की हार,
विजय है, जहाँ यज्ञ की ज्वाला।
आर्जव कहलाया विजय,
पहन वर-माला पर जयमाला॥"

द्रौपदी से जीवनी-शक्ति प्राप्त कर पांडव दानवी शक्तियों को परास्त और नष्ट करने लगे। द्रौपदी पांडवों के लिए जहाँ श्री-समृद्धि थी, वहाँ कौरवों के लिए विनाशक प्रचण्ड ज्वाला। धृतराष्ट सारी घटना सुनकर समझ गये कि भविष्य पांडवों के अनुकूल और उनके पुत्रों के प्रतिकूल है। उन्होंने सुयोधन को पांडवों का भाग देने के लिए समझाया, परन्तु वह अपने दुराग्रह पर दृढ़ रहा। दुर्योधन धृतराष्ट के ही वासना-बीज का अंकुरित और विकसित बीज था। भीष्म पितामह ने पाण्डवों और कौरवों के संघर्ष को रोकना चाहा, परन्तु उनको सफलता नहीं मिली। वे दोनों के बीच में यातना भोगते रहे।

द्रौपदी राजमहल में धृतराष्ट्र से आशीर्वाद लेने आती है। उसकी रूप दीप्ति को देखकर दुर्योधन पर वज्राघात होता है। धृतराष्ट ऊपरी मन से द्रौपदी पर आशीष के रूप में गजमुक्ता की वर्षा करते हैं—

गज मुक्ता रहे बखेर,
वधू पर बार अम्बिकानन्दन।

मन में दुराव का भाव,
करों में केवल भाव-प्रदर्शन ।।"

तीसरा सर्ग

हस्तिनापुर के राजमहल में द्रौपदी धृतराष्ट्र और गांधारी से आशीष लेने आती है। शकुनि द्रौपदी के मोहक रूप की ज्वाला देखता है। गांधारी नव-वधू द्रौपदी को अपने अंक में बिठलाकर आनन्द के अश्रुओं से उसका अभिषेक करती है। इस प्रेम-मिलन को देखकर शकुनि के हृदय में यह शंका उत्पन्न होती है, कि इस मिलन के परिणामस्वरूप कहीं कौरवों का नाश न रुक जाय। परन्तु वह निश्चय करता है कि चाहे कुछ भी हो, परन्तु वह जुए के सहारे कौरवों का नाश कराकर ही रहेगा।

धृतराष्ट्र युधिष्ठिर पर प्रसन्न थे वे दुर्योधन से उनका अभिनन्दन करने और उनका उचित दाय देने को कहते हैं, परन्तु दुर्योधन किसी प्रकार भी राजी नहीं होता। विदुर भी समझाते हैं, किन्तु उनके न्यायपूर्ण उपदेश दुर्योधन को विष के समान लगते हैं। धृतराष्ट्र को दुर्योधन के दुराग्रह के सामने झुकना पड़ता है। अन्त में विदुर के समझाने पर धृतराष्ट्र युधिष्ठिर को खाण्डवप्रस्थ बसाने का आदेश देते हैं। यहाँ पाण्डव 'जंगल में मंगल' कर देते हैं। खाण्डवप्रस्थ नगरी इन्द्रपुरी के समान जगमगा उठती है। युधिष्ठिर सम्राट बनते हैं। द्रौपदी इन्द्राणी के समान साम्राज्ञी का गौरव प्राप्त करती है। युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ करते हैं, जिसमें समस्त देश के राजा सम्मिलित होते हैं। दुर्योधन पाण्डवों की इस श्रीवृद्धि को देखकर जल उठता है। वह पाण्डवों के विनाश के लिए शकुनि से मन्त्रणा करता है। शकुनि जुए में पाण्डवों को हराकर उनकी भाग्य लक्ष्मी को हरण करने की योजना बनाता है। वह युधिष्ठिर से कहता है—

"युधिष्ठिर को व्यसन है,
पर नहीं जिसका ज्ञान।
द्युत क्रीड़ा की कला—
वह, सुनो, आयुष्मान ।।

लगा दूँगा दाँव पर सब,
विजय निश्चय जान।
भाग्य लक्ष्मी द्रौपदी,
का धर हृदय में ध्यान।।"

चतुर्थ सर्ग

शकुनि की योजना से युधिष्ठिर जुआ खेलने के जाल में फँस जाते हैं। वे सारा राजपाट हारकर अपनी पत्नी द्रौपदी तक को भी दाँव पर लगा देते हैं। धृतराष्ट्र की भरी सभा में दुर्योधन और दु:शासन आदि द्रौपदी को निर्वसन करने का प्रयास करते हैं। भीष्म, द्रौण आदि भी चुप होकर यह सब कुछ देखते रहते हैं। द्रौपदी चारों ओर से निराश होकर अपनी लज्जा की रक्षा के लिए आर्त्त-स्वर से भगवान श्रीकृष्ण से पुकार करती है। दु:शासन द्रौपदी का चीर खींचता हुआ थक जाता है, परन्तु उसे उसका छोर नहीं मिलता। कौरवों के द्वारा नारी का यह अपमान ही कौरवों के विनाश का कारण बनता है। युधिष्ठिर अपने भाइयों और द्रौपदी सहित वन-वन में मारे-मारे फिरकर अज्ञात वास की अवधि व्यतीत करते हैं। इस अवधि में उनकी वीरता और यश का प्रसार होता है तथा अनेक राजा उनके मित्र बन जाते हैं। कौरवों पर द्रौपदी के अभिशाप की छाया काल बनकर मँडरा रही थी। वह कृष्ण के संधि प्रस्ताव को भी अस्वीकार कर देता है। महाभारत का १८ दिवस तक भीषण युद्ध होता है, जिसमें पांडव विजयी होते हैं और कौरवों का विनाश होता है।

पंचम सर्ग

महाभारत का नर-संहारी भीषण युद्ध १८ दिन में समाप्त हुआ। कौरव पराजित हुए और पांडवों को विजय मिली। चारों ओर श्मसान की-सी गहरी शान्ति थी। करुणापूर्ण चीत्कार छाया हुआ था। शून्यता और निस्तब्धता छाई हुई थी। युद्ध-क्षेत्र रक्त-रंजित था। राजवंश की पति और पुत्र-हीना बधुएँ करुणा-क्रन्दन कर रही थीं। चारों ओर सर्वनाश और संहार का दृश्य था। इस विनाश की वेला में भी पांडवों के स्वागत के लिये हस्तिनापुर सजा हुआ था। कौरवों का सकुल संहार हो गया था। युद्ध के अन्तिम दिन

अश्वत्थामा की छल-छद्म भरी क्रूरता के कारण द्रौपदी के भी पाँचों पुत्र मारे गये थे। कौरवों की माता गांधारी और द्रौपदी दोनों ही शोक में डूबी हुई थीं परन्तु दोनों में एक अन्तर था। अन्तर यह था कि द्रौपदी जहाँ विजयिनी थी वहां गांधारी पराजिता थी—

"भ्रातृ-पुत्र-हीना द्रुपदा-सी,
थी सुबला गांधारी।
भेद यही बस, एक विजयिनी,
एक सब तरह हारी॥"

गांधारी ने अपने मृत पुत्रों को देखने के लिए पहली बार अपने नेत्रों पर से पट्टी हटाई। दारुण दृश्य देखकर वह शोक-विह्वल हो गई।

युधिष्ठिर अपने मृत सम्बन्धियों की आत्मा की तृप्तिहेतु तर्पण कर रहे थे। कुन्ती ने बिलखकर कहा कि कर्ण भी तर्पण करो ; यह तुम्हारा बड़ा भाई है। युधिष्ठिर के समक्ष सहसा कर्ण के चरण आ गये। उनके नेत्रों से अश्रु गिरकर कर्ण के चरणों का प्राक्षालन करने लगे ।

युधिष्ठिर को भीष्म, द्रोण आदि की मृत्यु पर वेदना होती है। पांडवों के द्वारा किये गये छल को स्मरण कर वे अपने को धिक्कारने लगते हैं। युधिष्ठिर को इस स्थिति में देखकर अग्नि अपनी भौहें तान कर उनसे कहने लगा कि रजस्वला, एकवस्त्रा द्रौपदी को निर्वसन करने, सप्तरथियों द्वारा अभिमन्यु को घेरकर अमानुषिक हत्या करने में कौन-सा न्याय था। भीष्म और द्रोण आदि यदि कौरवों से असहयोग करते, तो ऐसा अन्याय न होता। प्रबल भावी के वश में जो होना था, वह हो गया, अब अपने यश को कलंकित न करो। तुमने आर्य नारी को सामान्य भौतिक पदार्थ की तरह दाँव पर लगा दिया था। द्रौपदी साधारण नारी न होकर यज्ञजा है। अग्नि के उद्‌बोधन से धर्मराज युधिष्ठिर को आत्म-ज्ञान होता है। उनको दीखता है कि इस विश्व में नर की विजय का मूल्य नारी अपनी दहन शक्ति से चुकाती आई है। प्रथा ने अपने वैध पुत्रों के लिए अवैध पुत्र कर्ण की बलि दी। गांधारी ने अपने अत्याचारी पुत्रों को विजय का आशीर्वाद नहीं दिया। कुरुवंश की प्रत्येक नारी ने अपने जीवन के अमूल्य पुष्पों की भेंट चढ़ाई है। नारी की आह से ही कुरुक्षेत्र ढह

गया और सुवर्ण की द्वारिका सागर की लहरों में डूब गयी। नारी के अश्रुओं में प्रलय का महासागर हा-हाकार करता है :—

"दहन शक्ति से मूल्य चुकाती,
नारी नर की जय का !
है नारी की सहन शक्ति में,
संस्थित केतु विजय का !
कुरुक्षेत्र ढह गया आह से,
स्वर्ण द्वारिका डूबी !
है नारी के अश्रु-बिन्दु में,
पारावार प्रलय का !"

नारी नर की मर्यादा है। जब-जब नर ने उस मर्यादा को तोड़ा, तब-तब सर्वनाश हुआ। नारी कृत्या, मृत्यु, उर्वशी, जननी, जाया, माया, तारिणी, कल्याणकारी आदि सभी कुछ है—

"नारी कृत्या, मृत्यु, उर्वशी,
जननी, जाया, माया।
क्षीरसिन्धु धारिणी, तारिणी,
महाशून्य की काया।
ऋतानृता, चिद्-अचिद् शक्ति वह,
नीरा-नाल कमलिनी।
वह हिरण्यगर्भा है जिसमें,
सब ब्रह्माण्ड समाया ॥"

युधिठर ने अश्व मेघ यज्ञ किया उसमें अर्जुन अश्व के रक्षक बने। उन्होंने समस्त दिशाओं के शत्रुओं को परा जित किया। द्रौपदी के पुण्यफल के प्रसाद से सुख-सम्पदा का प्रसार हुआ—

"सम्मुख मेध्य अश्व का रक्षक,
अपराजित घर आया।
सुख विकीर्ण है, दुख विदीर्ण है,
द्रुपदा की पुन्याई ॥"

ऐतिहासिकता और प्रतीक तत्व

प्रश्न ३—द्रौपदी के कथानक में ऐतिहासिकता और प्रतीक तत्व को स्पष्ट कीजिए।

अथवा

प्रश्न ४—"द्रौपदी महाभारत की कथा पर आधारित प्रतीक काव्य है"—इस कथन की विवेचना कीजिए।

स्मृति-संसेत

१. द्रौपदी महाभारत की प्रसिद्ध ऐतिहासिक-पौराणिक कथा पर आधारित है।

२. इसमें द्रौपदी-स्वयंवर से लेकर पांडवों की विजय और उसके पश्चात् युधिष्ठिर के अश्वमेध तक की कथा समास शैली के लाघव से कही गई है।

३. सारे पात्र एव घटनाएँ ऐतिहासिक-पौराणिक हैं।

४. कथानक में अद्यान्त प्रतीकात्मक रूपक का निर्वाह हुआ है—

(क) द्रौपदी जीवनी-शक्ति और पांडव पंचतत्वों के प्रतीक हैं।

(ख) जीवनी-शक्ति द्रौतदी पंचतत्व रूप पांडवों को संश्लिप्ट करती है और वे अपनो स्वत्वों एवं विजय को प्राप्त करते हैं।

उत्तर—भारतीय पुराण इतिहास ही इनमें हमारी सभ्यता और संस्कृति का इतिहास सुरक्षित है। महाभारत का युद्ध हमारे अतीत की प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटना है। अट्ठारह दिवस के इस भीषण युद्ध में आततायी कौरवों का विनाश हुआ और धर्मनिष्ठ पांडवों की विजय हुई। महाभारत की कथा इतनी प्रसिद्ध है कि इस पर अब तक अनेक काव्य और महाकाव्य लिखे जा चुके हैं। 'द्रौपदी' के प्रणोता ने इन घटनाओं की न तो पुनरावृत्ति की और न

इनका वर्णात्मक विवरण ही उपस्थित किया। उसने सारे कथानक को समास-शैली के लाघव से एक प्रतीक रूप में उपस्थित कर दिया—

"महाभारत को प्राचीन इतिहास, महापुराण और पाँचवाँ वेद भी कहा जाता है। कहा तो यहाँ तक जाता है कि अन्यत्र ऐसा कुछ नहीं है, जो महाभारत में न हो। जो भी हो, मेरी दृष्टि से महाभारत काव्यमय आख्यानों के महासमुद्र से कम नहीं है। महासमुद्र से अंजलि भर जल लेकर, मैंने अपने लघु काव्य में 'द्रौपदी की रचना की है। क्षुद्र द्वारा महासमुद्र के पूजन का ऐसा ही विधान है। मैंने महाभारत की महिमा को द्रौपदी की लाघिमा शैली में प्रणाम किया है।"

× × × ×

"द्रौपदी स्वयंवर से युद्ध में विजय तक सुविशाल कथा-विस्तार का संवरण लघिमा शैली के बिना कहाँ संभव था ! मैंने थोड़ा कहा है और बहुत कुछ अपने सुधी, सुवज्ञ और सहृदय पाठकों की जानकारी और समझदारी पर छोड़ दिया है। महाभारत की कथा की लोकप्रियता के आलम्बन के बिना यह सम्भव न था। इसलिए मैं अपने लघु काव्य के महाभारत के आधार प्रति पुनः नमन करताहूँ।" (भूमिका पुष्ठ १५)

उक्त कथन से स्पष्ट है कि 'द्रौपदी' का मलाधार महाभारत है। द्रौपदी कथानक का केन्द्र और मुख्य पात्रा है। समस्त कथा का केन्द्र उसी को बनाया गया। इसके अतिरिक्त युधिष्ठिर आदि पांडव, भीष्म, द्रोण तथा धृतराष्ट्र, गांधारी, दुर्योधन एवं पांडव एवं कौरव पक्ष के जिन व्यक्तियों का उल्लेख आया है, वे सभी पूर्णरूप से पौराणिक-ऐतिहासिक हैं।

द्रौपदी में महाभारत की कथा लघिमा शैली में कही गई है। इसमें प्रमुख घटनाओं का संकेत भर कर दिया गया है। जिन घटनाओं का संकेत 'द्रौपदी' काव्य में हुआ है, वे निम्न लिखित हैं—

१. **द्रौपदी का स्वयंवर** — यहीं से कथानक प्रारम्भ हुआ है।

२. लाक्षागृह में पांडवों को भस्म कर डालने का कौरवों द्वारा रचा हुआ षड्यंत्र ।

३. महाराज द्रुपद के यज्ञ से द्रौपदी और धृष्टद्युम्न की उत्पत्ति ।

४. कर्ण और अर्जुन का युद्ध और इस युद्ध में कर्ण का वीरगति पाना ।

५. शकुनि का द्यूत-जाल ।

६. दुःशासन द्वारा द्रौपदी को भरी सभा में निर्वसन करने का असफल प्रयास ।

७. युधिष्ठिर द्वारा खाडव वन में इन्द्रप्रस्थ की स्थापना ।

८. पांडवों का अज्ञात वास और विराट-नरेश के यहाँ रहना ।

९. भीम द्वारा कीचकों का वध ।

१०. वृहन्नला के रूप में [illegible]न की विजय ।

११. अट्ठारह दिवस तक भीषण युद्ध ।

१२. पांडवों की विजय ।

१३. भीष्म वाणों की शैय्या पर ।

१४. युधिष्ठिर का निर्वेद और आत्म-ग्लानि

१५. युधिष्ठिर का अश्वमेध यज्ञ करना

उपर्युक्त समस्त घटनाएं ऐतिहासिक किन्तु वे संकेत रूप में ही आई और प्रतीकात्मक रूपक की शृंखलाएं बन गई हैं –

प्रतीकात्मक रूपक

नरेन्द्र शर्मा ने महाभारत की कथा में प्रतीकात्मक रूपक को खोजकर सर्वथा मौलिकता का परिचय दिया है। उन्होंने इस काव्य की भूमिका में अपना यह उद्देश्य निम्न प्रकार स्पष्ट किया है :—

"पाश्चात्य परिभाषा और प्रणाली के इतिहास और भारत के कवि-मनीषियों की शैली के इतिहास में बड़ा अन्तर है। भारतीय मनीषियों ने इतिहास के तथ्यों या इतिवृत्त का काव्यमय कायाकल्प कर दिया है। महाभारत को इसी अर्थ में इतिहास-ग्रन्थ मानना चाहिये।

(भूमिका पृष्ठ १५)

अतः द्रौपदी ऐतिहासिक प्रतीकात्मक काव्य है। महाभारत के 'उद्योग पर्व' में यान-संधि-विषयक वार्ता के अन्तर्गत प्रतीकात्मक रूपक का प्रयोग हुआ है।

धृतराष्ट्र पांचों पांडवों को पंच तत्वों का प्रतीक मानते हुए दुर्योधन से कहते हैं—

"दुर्योधन विजानीह यत् त्वां पश्यामि पुत्रक।
उत्पथं मन्यसे मार्गमनभिज्ञ इवा ध्वगः॥
पञ्चानां पाण्डु पुत्राणां यत् तेजः प्रजिहीर्षसि।
पञ्चानामिव भूतानां महतां लोकाधारिणाम॥

बेटा दुर्योधन, मैं तुमसे जो कहता हूँ, उस पर ध्यान दो। तुम इस समय अनजान बटोही के समान कुमार्ग को भी सुमार्ग समझ रहे हो। यही कारण है कि तुम लोक के आधार स्वरूप पाँच महाभूतों के समान पाँच पांडवों के तेज का अपहरण करने की इच्छा करते हो।"

'द्रौपदी' काव्य को प्रतीक रूप में कहने की प्रेरणा कवि को इसी प्रसंग से मिली।

महाभारत में अन्यत्र भी पांडवों को पंच महातत्वों के समान कहा गया है। जनमेजय से कहते हैं—

"ते पञ्च रथामास्थाय भ्रातरः समलंकृताः।
भूतानीव समस्तानि राजन् बदृशिरे तदा॥"

"हे राजन्! रथ में बैठे हुए और अलङ्कारों से सुसज्जित वह पाँचों भाई पांच महातत्वों के समान दिखाई दिये।"

इस प्रकार कवि ने पांचों पांडवों को जो पांच तत्वों के रूप में देखा; उसका पुष्ट आधार भी है। द्रौपदी के रूपक-तत्व का विश्लेषण निम्न प्रकार है—

कवि द्रौपदो स्वयंवर का कथा का प्रारम्भ करता हुआ कहता है—

"द्रौपदी जीवनी शक्ति;
सौंप दी गई पांच तत्वों को।
या कहा नियति ने, पार्थ!
करो अब प्राप्त लुप्त सत्वों को।"

अर्थात् जो द्रौपदी जीवनी शक्ति थी, वह नियति द्वारा पांच तत्वों को सौंप दी गई, जिससे कि वे संश्लिष्ट होकर अपने स्वत्वों को प्राप्त कर सकें। रूपक का आधार कवि की यही कल्पना है। जैसा कि उसने भूमिका में कहा है—

"मैंने द्रौपदी को पांच महातत्वों को संश्लिष्ट और तेजोमय कर देने वाली जीवनी शक्ति के रूप में देखा है। द्रौपदी स्वयंवर के फलस्वरूप, द्रौपदी की प्राप्ति से पांच पांडवों के रूप में पांच महातत्व अपना संश्लिष्ट स्वरूप प्राप्त करते हैं और लुप्त स्वत्वों को। द्रौपदी-स्वयंवर से पहले जो क्षत्रिय होकर भी ब्राह्मण वेष में भिक्षाटन करते थे; द्रौपदी के संयोग से स्वधर्म और पैतृक राज्य को पुनः प्राप्त कर लेते हैं।"

(पृष्ठ ९)

द्रौपदी स्वयंवर के अवसर पर श्रीकृष्ण और पांडवों का मिलन हुआ था। श्रीकृष्ण यज्ञपुरुष नारायण हैं। द्रौपदी महाराज द्रुपद के यज्ञकुण्ड से उत्पन्न हुई थीं। इसलिए द्रौपदी को यज्ञजा, यज्ञसेनि और कृष्णा कहा गया है। यज्ञजा होने के कारण कृष्ण और द्रौपदी का भाई-बहन का अन्तरंग सम्बन्ध हो जाता है। द्रौपदी को नारायणी शक्ति भी माना गया है। इस काव्य में रूपक तत्व के अनुसार पांडव संश्लिष्ट स्वरूप में शक्तिमान नर हैं, जिनको द्रौपदी के रूप में नारायणी शक्ति की प्रेरणा प्राप्त होती है—

"कृष्णा मधुकरी नहीं;
लपट है यागानल की कृष्णा।
युग-परिवर्तन के हेतु
क्रान्ति, ऊतल-पातल की कृष्णा।

× × ×

नारायण का नर सखा;
वरेण्या नर की होम कुमारी।
है याज्ञसेनि द्रौपदी;
बन्धु कृष्णा के कृष्ण मुरारी।।"

× × ×

"आनन्द, पुलक, आह्लाद;
दिव्य उन्माद, देह-मन-वाणी;
द्रौपदी जीवनी शक्ति,
पंचतत्वों की वह कल्याणी।।

योगेस्वर की वह बहन,
योगिनी शक्ति, कर्म की तृष्णा !
पञ्चाग्नि-शक्ति साकार,
व्योम-अवतरण-कारिणी कृष्णा ।"

कथानक का बीज पांच पांडवों में पाँच तत्वों का रूप धारण करता हैं। जीवनी शक्ति द्रौपदी उनकी वधू है। द्रौपदी को द्वापर की कृत्या भी कहा गया है।

द्रौपदी द्वारा संश्लिष्ट पांडव रूपी पांच महातत्व—

१. आकाश तत्व (युधिष्ठिर)

शीर्षस्थ आकाश—तत्व की सर्वोपरि सत्ता है। युधिष्ठिर आकाश-तत्व हैं। वे पृथ्वी के राग-द्वेष जनित मटमैले धरातल से ऊपर उठे हुए हैं। वे दुनियां के कामकाजी मटमैले धरातल पर उतरना नहीं चाहते और उनको पार्थिवता से संकोच है—

नरश्रेष्ठ युधिष्ठिर ज्येष्ठ,
स्वयं आकाश पुरुष तनुधारी।

× × ×

निश्चेष्ट युधिष्ठर ज्येष्ठ,
श्रेष्ठ आकाश पुरुष अविकारी।
कामार्थ—भाव से मुक्त,
विवेकी हैं, पर अव्यवहारी॥

ऐसे आकाश तत्व की प्रेरणा बनकर जीवनी-शक्ति कृष्णा रानी उनके चरणों में झुक जाती है—

"निर्लिप्त अनीह अकाम,
युधिष्ठिर नभस्, सत्वगुण-ज्ञानी।
श्री चरणों में झुक गई;
शक्ति कर्षण की कृष्णा रानी॥"

जीवनी शक्ति को पाकर युधिष्ठर पृथ्वी के व्यवहारिक धरातल पा आ गये –

"अकाश अवतरण करे,
संचरण हो शब्द तृष्णा का।
हो गया स्वयं ही सिद्ध,
आत्मवल आकर्षण कृष्णा का।"

पवन तत्व (भीम)

आकाश के बाद पवन, अग्नि, जल और थल तत्व आते हैं। आकाश तत्व पर ही शेष चारों तत्व आश्रित हैं। यहाँ आकाश तत्व युधिष्ठर के शेष चारों भाई आज्ञाकारी और अनुचर हैं।

"पवन-पुत्र भीम को पवन का बल-विक्रम प्राप्त है। वह अग्नि रूपी अपने अनुज अर्जुन का सहायक है। अपने अग्रज पवन पुत्र जी से वह अर्जुन के रथ की ध्वजा पर बैठने की प्रार्थना करते हैं। भीमसेन वृक्षों को उखाड़कर अपने शत्रुओं को पछाड़ देते हैं। पवन-तत्व के बल-विक्रम अनेक स्थलों पर विवेक का भी अक्रमण कर जाता है। भीम भोले हैं महावली है।" (भूमिका)

अग्नि तत्व (अर्जुन)

अर्जुन को धनंजय कहा गया है। धननंज्य अग्नि का एक नाम है। स्वर्ग में जो इन्द्र है, वही पृथ्वी पर अग्नि। पृथ्वी और स्वर्ग को जोड़ने के लिए अग्नि-तत्व स्वर्ण-शृंखला का काम करता है। अर्जुन दिव्यास्त्रों की प्राप्ति के लिए स्वर्ग गये थे।

"यज्ञपुरुष श्री कृष्ण से धनंजय का सम्बन्ध सहकारी मित्र और मंत्रदाता उपदेष्टा का है। कृष्णार्जुन ने खांडव वन को जलाकर, इन्द्रप्रस्थ नगर की स्थापना के लिए भूमि सिद्ध की थी।""""अग्नि-तत्व प्राकृत का उपक्रम कर, संस्कारों के उदय का कारण बनता है। प्राकृत कर्ण पर संस्कृत अर्जुन की विजय वल का कदाचित यही रहस्य है।" (भूमिका)

जल तत्व (नकुल)

नकुल जल-तत्व के प्रतीक हैं। जल को रसवन्त कहा गया है। नकुल अश्व-विद्या-विशारद रसवन्त और श्यामसुन्दर हैं।

थल तत्व (सहदेव)

सहदेव क्षिति-तत्व हैं। वे क्षिति के समान ही शीलवन्त, संकोची और मितभाषी है। सहदेव गो-विद्या-विशारद हैं। वे भीम की तरह ही दक्षिण दिशा जीतने वाले है।

आकाश, अग्नि और पवन उच्च स्तरीय तत्व हैं। जल-थल रूपी नकुल-सहदेव जुड़वां तत्व निम्न स्तरीय हैं। माद्री ने अश्विनीकुमार का आवाहन करके नकुल सहदेव को जन्म दिया था। अश्विनीकुमार निम्न दैवत् माने गये हैं। इस प्रतीकात्मक रूपक को कवि ने निम्न प्रकार स्पष्ट किया है—

"नरश्रेष्ठ युधिष्ठिर ज्येष्ट,
स्वयम् आकाश पुरुष तनुधारी!
है पवन-तत्व ही भीम,
प्राण चेतन का आज्ञाकारी,।
भूतल पर पावक इन्द्र,
इन्द्र का अग्नितत्व ही अर्जुन!
"आर्जव नर का आग्नेय",
कहा द्रुपदा ने शर का स्वर सुन!
हैं नकुल और सहदेव,
सलित, भू तत्वों के रूपान्तर।
यों पंच तत्व के संग,
हौम-ज्वाला का हुआ स्वयंवर॥"

जीवनी शक्ति द्रोपदी उक्त पंचतत्वों को संश्लिष्ट कर शक्ति प्रदान करती है—

प्राणों ने पाया वेग,
अग्नि में तेज उदित हो आया।

हो गया सलित रसवन्त,
समस्थल ने सुगन्ध को पाया ।
"स्वागत है, आगत देवि,
तुम्हारा अभिनन्दत है, स्वागत ।
यों बार बार कह रहे,
व्याहली पांचाली से भारत ।।"

—महाभारत का युद्ध भी दैवी और आसुरी शक्तियों के संघर्ष का प्रतीक है । पांडवों के आदिभौतिक वल को द्रौपदी की प्रेरणा और श्रीकृष्ण का आधिदैदक समर्थन प्राप्त था ।

उपर्युक्त प्रमुख प्रतीकात्मक रूपक-तत्व के अतिरिक्त अन्य पात्र और घटनाएँ भी प्रतीकात्मक रूप में उपस्थिति हुई हैं जिनका विश्लेषण निम्न प्रकार है—

पृथा (कुन्ती)

पृथा पृथ्वी माता का प्रतीक है । इस प्रतीक को स्पष्ट करते हुए कवि ने भूमिका में लिखा है—

"पृथा मेरी दृष्टि में क्षात्र-धर्मा पृथ्वी माता है । वरदान में उन्हें देव-वहन शक्ति प्राप्त है । वह दोवों का आवाहन कर अपने वीर पुत्रों को जन्म देती है । वीर प्रसू पृथ्वी भी इसी प्रकार दिव्यांशों को धारण कर वीर पुत्रों को जन्म देती रही है । पृथा क्षत्राणी है । वह क्षात्र तेजवाली अश्विनी शक्ति की प्रतीक हैं । उनके द्वारा सर्व प्रथम सुर्य का आवाहन करना स्वभाविक था । सूर्य पत्नी ने भी तो अश्विनी का रूप धारण किया था । अश्विनी नक्षत्र में सुर्य के संक्रमण से आज भी हमारा संवत्सर प्रारम्भ होता है । किन्तु पृथ्वी स्वरूपिणी पृथा या कुन्ती ने कौतूहल वश सूर्य का आवाहन करते समय देश-काल और अवस्था का ध्यान नहीं रखा था । इसलिए परिणाम अनुकूल न हुआ ।

कन्यावस्था में उनका प्रथम समागम सूर्य से हुआ । सूर्य के अनिवार अमोघ अंश से कन्यापुत्र या कानीन कर्ण उत्पन्न हुआ । कर्ण कुन्ती का अवेध या प्राकृत पुत्र (नेचुरल रून) है । जगत को अवैध या प्राकृत नहीं, औरस या संस्कृत ही

सदैव स्वीकृत रहा है। जगत की ऐसी ही रुचि है; ऐसा ही स्वभाव या संस्कार है। कानीन कर्ण के भाग्य में यही वदा था कि वह अपने सहोदर भाइयों का शत्रु बने और पराभव को प्राप्त हो।" (पृष्ट १०)

धृतराष्ट्र

धृतराष्ट्र अन्धे अचेतन मानस के प्रतीक हैं। उनका अंधकूप के समान मन अपनी ही इच्छाओं से शासित है। वे अपनी इच्छाओं को विवेक से अनुशासित नहीं कर पाते। उनकी इच्छाएँ ही उनके सौ पुत्रों के रूप में फूलती फलती और विनाश को प्राप्त होती हैं। दुर्योधन धृतराष्ट्र की अव्यक्त आकांक्षाओं का उद्धत व्यक्त स्वरूप है। दुर्योधन के रूप में धृतराष्ट्र के अचेतन की ही अभिव्यक्ति है।

शकुनि

शकुनि को महाभारत में द्वापर का अवतार कहा गया है। महाभारत का विग्रह बढ़ाने में शकुनि का बड़ा हाथ था। वह द्रौपदी को कृत्या रूप में देखकर प्रसन्न होता है। शकुनि और गांधारी भाई-बहन होते हुए भी विपरीत तत्वों के प्रतीक हैं। इन्हीं विपरीत तत्वों से जगत का निर्माण होता है और इन्हीं से जीवन-नाटक को गति मिलती है। शकुनि-प्रेरित कपट-द्युत में शक्तिमान अपनी स्यंवरा शक्ति को खो देते है।

"मैं तुम्हें पहचानता हूँ,
उर्ध्वगामी ज्वाल।
चरण चिन्हों पर तुम्हारे,
चले भावी काल।
"शकुनि द्वापर युग'
अनलजा मैं तुम्हारा भृत्य।
देवि, कृत्या बनो,
युग को करो तुम कृतकृत्य।
कुछ न बोली द्रुपद-तनया,
शकुनि का मुख देख।
बहन-भाई में नियति ने,
लिखे हैं दो लेख॥"

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि द्रौपदी में प्रतीकात्मक रूपक तत्व का सफल निर्वाह हुआ है। युधिष्ठिर के समान ऊर्ध्वचेता व्यक्ति कामकाजी दुनियाँ के मटमैले धरातल से बचकर चलने के कारण अपने स्वत्वों से वंचित रहते हैं। जीवन में ऊर्ध्वगामिनी शिखा के अभाव में सफलता नहीं मिलती। धर्म सर्वोपरि तत्व अवश्य है, किन्तु यदि वह शक्ति से प्रेरित नहीं है, तो दैन्य और निर्वासन ही भोगता है। धर्मराज के लिए जीवनीशक्ति द्रौपदी का इसीलिए महत्व है। वह एक असमान्य दिव्य प्रतीक और भारतीय क्षात्र तेज की जाज्वल्यमान ज्योति शिखा है। द्रौपदी एक सफल प्रतीकात्मक रूपक काव्य है। उसे 'कामायनी', 'साकेत' जैसे कथा-काव्यों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता।

प्रश्न ५—द्रौपदी किस प्रकार का काव्य है। स्पष्ट करते हुए उसके वस्तु-संविधान की समीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न ६—"द्रौपदी महाकाव्य और खण्डकाव्य की शास्त्रीय विधाओं के अन्तर्गत नहीं आता। यह प्रतीकात्मक खण्ड काव्य है और वस्तु-संविधान की दृष्टि से अपने में पूर्ण सफल है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न ७—सिद्ध कीजिए कि द्रौपदी उच्चकोटि का आध्यात्मिक प्रतीक काव्य है।

उत्तर—'द्रौपदी' विशिष्ट काव्य परंपरा का प्रतीक है। हमारे यहां महाकाव्यों और खण्ड काव्यों की एक पुष्ट परंपरा रही है। इन काव्यों में पौराणिक और ऐतिहासिक कथानक को ग्रहण किया गया। आधुनिक युग में पौराणिक विषयों पर अनेक काव्य लिखे गये। 'प्रियप्रवास', 'साकेत', 'कामायनी', 'अशोक वन', 'पुरुषोत्तम राम', 'आत्मजयी' आदि प्रबन्ध-काव्य-शैली में लिखे गये हैं। इन पौराणिक वृत्तों के काव्यों में भी नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है। इन काव्यों में कथानक की प्रधानता रही है। 'द्रौपदी' का कथानक 'महाभारत' का ही कथानक है, परन्तु कवि ने महाकव्य के कथानक की इसमें पुनरावृत्ति

नहीं की। उसने इस वृहद् कथानक में से प्रतीक रत्न ही चुने हैं। 'द्रौपदी' का कथानक केवल उन्ही पात्रों को लेकर ग्रन्थित किया गया है, जो आज भी उज्ज्वल-ज्योति-किरणों का प्रसार करते हैं। द्रौपदी की कथा और पात्र प्राचीन हैं, परन्तु वे सनातन विचार-रत्नों से दीप्त हैं। 'द्रौपदी' पांचों पांडव, पृथा, धृतराष्ट्र और उनके पुत्र, कर्ण, गांधारी, यज्ञ पुरुष श्री कृष्ण, शकुनि आदि महाभारत की कथा के यथास्थित पात्र नहीं हैं। वे दैवी और आसुरी वृत्तियों के जीवन्त प्रतीक है। प्रतीक-योजना की दृष्टि से 'द्रौपदी' के कथानक और पात्रों में सर्वथा नवीनता है। द्रौपदी जीवनी शक्ति का शाश्वत प्रतीक है और युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन नकुल, सहदेव क्रमशः प्राकाश, वायु, अग्नि, जल और थल, तत्व के प्रतीक है। वे पांचां नर ही मानों महातत्व हैं। द्रौपदी रूपी जीवनी शक्ति इनको संश्लिष्ट कर चेतना और प्रेरणा प्रदान करती है। द्रौपदी को स्वयंवर में प्राप्त होने से पूर्व पांडव भिक्षाटन करते हुए दैन्य जीवन व्यतीत कर रहे थे। द्रौपदी रूपी जीवनीशक्ति को प्राप्त करते ही पांडवों में चैतन्य शक्ति की लपटें आन्दोलित हो उठीं। आकाश तत्व युधिष्ठिर के मन में स्पन्दन हुआ। भीम (वायु) के प्राणों में प्रचण्ड कँपन हुआ, अर्जुन के हृदय में अग्नि के स्फुलिंग उठने लगे। नकुल रूपी जल के हृदय में आलोड़न विलोड़न हुआ और थल रूपी सहदेव के प्राणों में सौरभ की कलियाँ खिलने लगीं। इस प्रकार जीवनी शक्ति द्रौपदी से पांच महातत्त्व रूपी पांडवों में उर्जस्थित चेतना की अग्नि शिखाएँ प्रज्वलित हो उठीं। धृतराष्ट्र अंध मानस के प्रतीक हैं। उनके शत पुत्र उन्हीं की वासना-बीज रूप हैं। दुर्योधन, दुःशासन के पशुवल से यह पृथ्वी त्रस्त थी। पावक तनया द्रौपदी को दुःशासन के द्वारा निर्वसन किया जाता है। भीष्म, द्रौण जैसे विचारवान गुरुजन तक इस जघन्य अत्याचार के प्रति मौन रहते हैं। परिणाम स्वरूप दैवी (पांडव) और आसुरी (कौरव) शक्तियों का अट्ठारह दिवस तक युद्ध होता है, जिसमें दैवी पक्ष (पांडव) की विजय होती है। इसी आध्यात्मिक रूपक तत्व की पृष्ठभूमि में द्रौपदी काव्य की कथावस्तु का विन्यास हुआ है। सारा कथानक पांच सर्गों में विभाजित है। इस आध्यात्मिक रूपक-तत्व के साथ घटनात्मक कथानक का सूत्र भी जुड़ा रहता है। कवि समास-शैली में महाभारत की समस्त कथा को कह जाता

है। इस प्रकार द्रौपदी अपने ढंग का सर्वथा नवीन खंड-काव्य विषय-वस्तु एवं शिल्प-विधान दोनों ही दृष्टियों से सफल

द्रौपदी में आध्यात्मिक भावना को अभिव्यक्त करने लिए कथा का सदुपयोग मात्र किया गया है। पांड्व, कृष्ण, धृतराष्ट्र, दुर्योधन, शकुनि, द्रौपदी आदि पात्र जहाँ महाभारत की लोक-विश्रुत घटना के प्रवर्त्तक हैं, वहाँ कवि के आध्यात्मिक दर्शन को व्यक्त करने के प्रतीक भी हैं। प्रमुख एवं प्रभावशाली घटनाओं के संकेतमात्र से ही कवि ने कथानक में एक सूत्रता की स्थापना की है। परन्तु ये घटनाएँ उसी क्रम से नहीं आई हैं, जिस क्रम से कि महाभारत में हैं।

प्रबन्धात्मक कथा-सूत्र

कथानक का आरम्भ द्रौपदी स्वयंवर की घटना से होता है। द्रौपदी की प्राप्ति पांडवों को जीवनी शक्ति के रूप में होती है। इससे प्रेरित होकर पांडव अपने स्वत्वों को पाने के लिए युद्ध के लिये उद्यत हो जाते हैं। प्रथम सर्ग कथानक की पृष्ठभूमि बन गया है। कवि आध्यात्मिक रूपक को प्रस्तुत करने के पश्चात् महाभारत की युद्ध-भूमि में पहुँच जाता है, जहाँ अर्जुन का कर्ण से युद्ध छिड़ा हुआ है—

"संघर्ष कर रहा कर्ण,
कर्ण से छिड़ा युद्ध अर्जुन का।
पृथ्वी का पुत्र अवैध,
कर्ण पर पक्का अपनी धुन का।"

यहाँ कवि कर्ण की कथा का वर्णन करने लगता है। वह अवैध पुत्र है। कर्ण कुन्ती के कुँवारी अवस्था से सूर्य के आवाहन से उत्पन्न हुआ था। इस अवैध पुत्र को कुन्ती ने त्याग दिया था। अर्जुन और कर्ण का भीषण युद्ध होता है। इसमें कर्ण की पराजय—मृत्यु और अर्जुन की विजय होती है। कर्ण के पराजय के साथ ही पहला सर्ग समाप्त होता है—

"अस्ताचल गामी सूर्य,
सिंहपति आहत मीन निलय में।
खो गई कर्ण की कीर्ति,
द्रौपदी-पति पाण्डव की जय में।"

दूसरे सर्ग का प्रारम्भ कर्ण के पराभव के संकेत से होता है—

"हो गई कर्ण की हार,
विजय है जहाँ यज्ञ की ज्वाला।'

इस प्रकार प्रथम और द्वितीय सर्ग का कथा-सूत्र सम्वन्ध-निर्वाह की दृष्टि से जुड़ जाजा है। दूसरे सर्ग में पाण्डवों का उत्कर्ष सामने आता है। द्रौपदी सर्ग के अन्त में गान्धारी से और धृतराष्ट्र से राज-महल में आशीर्वाद लेने जाती है। उसे देखकर सुयोधन मर्माहित हाता है—

उद्दीप्त हुआ प्रासाद,
बधूटी आ पहुँची आँगन में !
जो दीप्ति, वही दिग्दाह,
सुयोधन के बज्राहत मन में।

तीसरे सर्ग के प्रारम्भ में शकुनि द्रौपदी को देखकर प्रसन्न होता है—

"शकुन अच्छा ही हुआ,
बोला शकुनि धर ध्यान।'

इस प्रकार दूसरे और तीसरे सर्ग की कथा में एकसूत्रता स्थापित हो जाती है। इस सर्ग में धृतराष्ट्र का पाण्डवों के प्रति कपटमय प्रेम प्रकट होता है। उनकी आज्ञा से पाण्डव खांडव वन को साफ करके इन्द्रप्रस्थ की स्वापना करते हैं। युधिष्ठिर राजसूर्य यज्ञ करते हैं, उसमें शिशुपाल श्रीकृष्ण से सुदर्शन चक्र से मारा जाता है। युधिष्ठिर चक्रवर्ती सम्राट बनते हैं। पाण्डवों के इस उत्कर्ष से दुर्योधन और अधिक मर्माहत हो जाता है दुर्योधन की मन्त्रणा से शकुनि द्यु त-जाल फैलाता है—

"युधिष्ठिर का व्यसन है,
पर नहीं जिसका ज्ञान।
द्यु त-क्रीड़ा की कला वह,
सुनो आयुष्मान् ॥"

चतुर्थ सर्ग का प्रारम्भ द्यु त-क्रीड़ा में शकुनि की जीत और युधिष्ठिर की हार से होता है—

"शकुनि जीता, पार्थ हारे,
यामिनी का अवतरण।"

अग्निजा जीवनीशक्ति द्रौपदी को दुःशासन द्वारा भरी सभा में निर्वसन करने का प्रयास किया जाता है। युधिष्ठिर ने जीवनी शक्ति द्रौपदी को भौतिक भोग्य पदार्थों की तरह द्यूत में दाँव पर लगा दिया था। अतः इस पाप का प्रक्षासन करने के लिए युधिष्ठिर को भाइयों सहित वन गमन अनिवार्य था। वे वन जाते हैं। एक वर्ष का अज्ञातलास विराट के यहाँ छद्म वेष में रहकर व्यतीत करते हैं। इस अवधि में द्रुपद आदि अनेक राजाओं की सहायता से पाण्डव अपनी शक्ति सुदृढ़ कर लेते हैं। भीषण युद्ध होता है। युद्ध से पूर्व श्रीकृष्ण अर्जुन को नारायणी गीता का उपदेश देते हैं। युद्ध में पाण्डवों की विजय होती है और कौरव विनाश को प्राप्त होते हैं। इन समस्त घटनाओं का संकेत कवि ने लघिमा शैली के द्वारा चतुर्थ सर्ग में कर दिया है। यज्ञजा द्रौपदी का अपमान करके कौरव नष्ट हो गये। इसी को संकेत करते हुए चतुर्थ सर्ग की कथा समाप्त होती है—

"कठिन थी उस दिव्यजन्मा शक्ति की अवहेलना,
कठिन था नभ के लिए भी तेज उसका झेलना।
खेलकर यज्ञाग्नि से सब मर मिटे क्षत्रिय सुभट,
खेल पावक-प्रवंचन का भूलकर मत खेलना।"

पांचवे सर्ग का प्रारम्भ युद्ध की प्रतिक्रिया से होता है। अट्ठारह दिवस के युद्ध के पश्चात् युद्ध-क्षेत्र में श्मशान की-सी शान्ति छा गई। अग्निजा को वरण करने वाले पाण्डव विजयी हुए और उसका अपमान करने वाले कौरव विनाश को प्राप्त हुए—

"युद्ध-क्षत्र पर शान्ति छा गई,
अष्टादश दिन बीते!
शापित कौरव हारे रण में,
वह्निसुता वर जीते!
कुररी सी रोती कौरवियाँ,

रुदन न हृदय समाता !
वीर पड़े सो रहे विजन में,
भरे - पुरे घर रीते !"

इस प्रकार चौथे और पाँचवें सर्ग का कथासूत्र जुड़ गया है। युद्ध में भीषण नर-संहार और गुरुजनों के घात पर युधिष्ठिर को ग्लानि होती है, परन्तु अग्नि उनका समाधान करता है। अन्त में नारी के महत्व की स्थापन और साथ ही युधिष्ठिर के अश्वमेध का संकेत करता हुआ कवि कथानक समाप्त करता है :—

सम्मुख, मेध्यअश्व का रक्षक,
अपराजेय धनंजय।
सुख विकीर्ण है, दुख विदीर्ण है,
द्रुपदा के पुन्यायी ॥"

इस प्रकार महाभारत के कथानक को लेकर कवि ने लमिधा शैली में वस्तु विन्यास के अन्तर्गत एकसूत्रता स्थापित करने का प्रयास किया, परन्तु जैसा पहले कहा जा चुका है कि द्रौपदी में वस्तु-संविधान की एकता महाभारत की घटनावली को लेकर नहीं है, अपितु वह है सांकेतिक कथानक के सहारे आध्यात्मिक रूपक तत्व के निर्वाह में।

प्रथम सर्ग

आध्यात्मिक रूपक का पहला सर्ग मनोभूमि अथवा पृष्ठभूमि है। इस सर्ग में पाँचों पाण्डवों धृतराष्ट्र, धृतराष्ट्र के शत पुत्रों, अग्निजा द्रौपदी, यज्ञेश श्रीकृष्ण, प्रथा, कर्ण एवं अन्य पात्रों की प्रतीकात्मकता का पूर्ण परिचय दिया गया है—

नारायण का नर साखा,
वरेण्या नर की होमकुमारी।
है याज्ञसेनि द्रौपदी,
बन्धु कृष्णा के कृष्णमुरारी।
माता ही पृथा,
यथा वह देववाहिनी जाया !

ज्यों पंचतत्व संश्लिष्ट,
पुत्र नवरत्न पार्थ है पाया।
नरश्रेष्ठ युधिष्ठिर ज्येष्ठ,
स्वयम् आकाशपुरुष तनुधारी।
है पवन तत्व ही भीम,
प्राण चेतन का आज्ञाकारी।
भूतल पर पावक इन्द्र,
इन्द्र का अग्नि तत्व ही अर्जुन।
"आर्जव नर का आग्नेय,"
कहा द्रुपदा ने शर का स्वर सुन।
हैं नकुल और सहदेव,
सलिल भू-तत्वों के रूपान्तर।
यों पंचतत्व के संग,
होम ज्वाला का हुआ स्वयंवर।।

कथावस्तु के विकास के माध्यम ये पात्र कवि-कल्पित गम्भीर विचार-दर्शन के भी प्रशस्त माध्यम बन गये हैं। कवि की दृष्टि में यह सृष्टि एक महान यज्ञ है। नारी इस पांच महातत्व रूपी पुरुष में अनादि काल से जीवनी शक्ति भरती आई है। इस सृष्टि में धर्म का सर्वाधिक महत्व है, परन्तु शक्ति के अभाव में धर्म व्यर्थ सिद्ध होता है। इसमें जब शक्ति का समन्वय हो जाता है, तभी जीवन में अमृत-तत्व का संचार होता है।

प्रथम सर्ग में कवि ने जहाँ प्रतीकों को स्पष्ट किया है, वहाँ उसने कृष्णार्जुन कथा का भी संकेत कर दिया है। सर्ग के अन्त में कर्ण की कथा दी गई है। कर्ण महावीर था। वह सूर्य का आवाहन करने से कुन्ती के कौमार्यावस्था में उत्पन्न हुआ था। कर्ण अवैध सन्तान था और साथ ही अन्याय का सहयोगी था। वह धर्म से विचलित होकर जीवनीशक्ति द्रौपदी का अपहरण करना चाहता था। इसी के परिणाम स्वरूप उसका तेज अस्ताचल में सदा के लिये डूब गया और द्रौपदी-पति पांडवों की विजय का उल्लास चारों ओर छा गया—

"था कर्ण तेज का तनय,
किन्तु वह बना अनय का चेरा।
अक्षय प्रकाश का अंश,
किन्तु स्वामी बन गया अँधेरा।
अस्ताचल गामी सूर्य,
सिंहपति आहत मीन निलय में।
खो गई कर्ण की कीर्ति,
द्रौपदी-पति पांडव की जय में।"

पाँच-सर्गों का द्रौपदी काव्य विलक्षण शैली में है। आध्यात्मिक प्रतीक के साथ कथा का कोमल सूत्र सुनियोजित रूप से चलता रहता है। कथानक में विचारों और भावों के ऐसे रत्न गुँथ गये हैं कि यह काव्य नवीन काव्य-शिल्प में निखर उठा है। पांचों सर्गों की कथावस्तु महाभारत की अनेक कथाओं को अपने में समेटकर विकसित हुई है। महाभारत की कथा का सूत्र प्रत्येक सर्ग को परस्पर में जोड़े हुए है। इस प्रबन्धात्मकता पर पहले विचार किया जा चुका है।

आध्यात्मिक रूपक में भी वस्तु-संविधान की एकसूत्रता बरावर बनी रही है। पांचों सर्गों में द्रौपदी की जीवनीशक्ति प्राणधारा के रूप में कथा तथा कवि की आध्यात्मिक धारा को एक सूत्रता प्रदान करती है। इस उद्देश्य को दृष्टि में रखकर कवि ने विभिन्न सन्दर्भों और कथाओं का सुनियोजन किया है। सारे पात्र और समस्त घटनाएँ अध्यात्मिक रूपक को पुष्ट करने में सहायक हैं।

द्रौपदी को एक विमल दर्पण के रूप में उपस्थित किया गया है। वह ज्योंहो कौरवों के महल में प्रवेश करती है, धृतराष्ट्र, शकुनि, विदुर, भीम, भीष्म और गान्धारी में विभिन्न विरोधी प्रतिक्रियाएँ होती हैं। द्रौपदी की दीप्ति धृतराष्ट्र के हृदय में कृत्रिम भाव-प्रदर्शन, दुर्योधन के हृदय में दिग्दाह, शकुनि के हृदय में कृत्या का रूप तथा विदुर और भीष्म के हृदय में आनन्द-धारा का प्रसार करती है—

"शत हस्तिद्वार कर पार,
सिंहनी धँसी हस्तिनापुर में!

आनन्द-पुलक की लहर,
उठी शकुनी के निष्ठुर उर में।
कौरव कूल में जो व्याप्त,
तमस का तत्व, शकुनि का जीवन !
पावक तनया को देख,
हँस पड़ा द्वापर-युग का ईंधन।"

× × ×

"गूँजे कुंकुम के बोल,
उषा सा हँसा वधू का जावक।
आनन्द-मग्न हो गये,
पितामह कुरुकुल के अभिभावक।"
उद्दीप्त हुआ प्रासाद,
वधूटी आ पहुँची आँगन में !
जो दीप्ति वही दिग्दाह,
सुयोधन के वज्राहत मन में !
गज मुक्ता रहे बखेर,
वधूपर वार अम्बिका-नन्दन !
मन में दुराव का भाव,
करों में केवल भाव-प्रदर्शन !"

द्रौपदी और गांधारी का मिलन बड़ा ही भाव-भीना है। ऐसे प्रसंग और उनका अनुभूति पूर्ण वर्णन ही प्रवन्ध काव्य के सौन्दर्य की वृद्धि करता है। आँखों पर पट्टी बाँधे हुए गांधारी बड़ी भाव-बिह्वल होकर नव वधू द्रौपदी को आशीर्वाद देने के लिए वाहँ फैलाए हुए बढ़ती है। वह अपने आनन्दाश्रुओं से नव वधू का अभिषेक करती है—

"अलक्षित गिरिशृंग माला, अलक्षित गिरि श्रोत,
शुभाकाक्षिणि, कृपाकांक्षिणि उभय ओत-प्रोत।
लहर पर उठती लहर, ज्यों स्नेह का अतिरेक,
हुआ आनन्दाश्रुओं से वधू का अभिषेक॥"

इस प्रेम-मिलन को देखकर शकुनि निराश हो जाता है। वह कुरुकुल के विनाश के लिए द्यु त-जाल रचता है। दुर्योधन युधिष्ठिर को युवराज बनाने के धृतराष्ट्र के प्रस्ताव को अस्वीकार करता है, पांडव खांडव वन को इन्द्रप्रस्थ के रूप में वैभव पूर्ण बनाते हैं। युधिष्ठिर राजासूय यज्ञ करते हैं, युधिष्ठिर का अभिषेक एवं द्रौपदी की साम्राज्ञी रूप में घोषणा आदि के मर्मस्पर्शी संकेत कवि ने दे दिये हैं।

चौथा एवं पांचवा सर्ग समस्त घटनाओं के उपसंहार और नये युग के अवतरण के रूप में प्रस्तुत हुआ है। जुए में शकुनि द्वारा युधिष्ठिर की हार होती है। द्रौपदी को भरी सभा में निर्वसन करना, पांडवों का वनवास, युधिष्ठर का समस्त देश में भ्रमण, अर्जुन द्वारा पाशुपत अस्त्र की प्राप्ति और इन्द्रलोक की यात्रा, भीम का अलकापुरी गमन, और हनुमान के दर्शन और अन्त में युधिष्ठिर द्वारा यक्ष के प्रश्नों का समाधान आदि घटनाओं का चतुर्थ सर्ग में संकेत-शैली में उल्लेख हुआ है। पांडव तपस्या और साधना की आग में तपते हुए युद्ध के समीप पहुँच जाते हैं। श्रीकृष्ण के अनुरोध करने पर भी दुर्योधन पांडवों का दाय देने को प्रस्तुत नहीं होता। उधर द्रौपदी के क्रोध की ज्वाला भीषण प्रतिशोध के लिए पांडवों को प्रेरित कर रही थी। कवि युद्ध से पूर्व सुस्टि का प्रलयंकारी रूप चित्रित करता है। अट्ठारह दिवस के युद्ध में कौरवों का सर्वनाश होता है और पांडवों की विजय होती है। यहाँ अध्यात्म की शान्त और पवित्र धारा प्रवाहित हुई है—

> "पंचभूत, विभूति, विभु यों सप्तगुण संघर्षरत;
> विषय भोगी बाण षट्रस, सामने थे शत्रु वत्।
> थीं इसी अनुपात में संग्रामरत अक्षौहिणी;
> कठिन था संग्राम; जीते धर्मसुत ही अन्तगत!
> कठिन थी उस दिव्य जन्मा शक्ति की अवहेलना;
> कठिन था नभ के लिए भी तेज उसका झेलना;
> खेलकर यज्ञाग्नि से सब मर मिले क्षत्रिय सुभट;
> खेल पावक प्रवंचन का भूलकर मत खेलना।।"

पाँचबा सर्ग युद्धोपरान्त की भीषण शान्ति के प्रभाव में प्रस्तुत किया गया है। युधिष्ठिर को मिली हुई विजय अश्रुसिक्त थी। वे पश्चाताप और विषाद से युक्त हो रहे हैं। उनका हृदय यह सोच कर विषाद-युक्त हो रहा है कि पांडवों ने युद्ध में विजय के लिए अधर्म और छल-प्रवंचना का आश्रय लिया। भीष्म, द्रोण आदि गुरुजनों एवं कर्ण की मृत्यु युधिष्ठिर का हृदय कचोट रही थी। द्रुपदा के पांचों पुत्र युद्ध की वलि चढ़ चुके थे। इस संहार-लीला से युधिष्ठिर का शान्त मन व्याकुल हो रहा था। युद्ध में विनाश की प्रतिक्रिया का बड़ा ही मार्मिक और अनुभूतिपूर्ण वर्णन सर्ग के प्रारम्भ में कवि ने किया है—

"युद्ध-क्षेत्र पर शान्ति छा गई,
अष्टादश दिन बीते !
शापित कौरव हारे रण में,
वह्निसुता वर जीते !
कुररी-सी रोती कौरवियाँ,
रुदन न हृदय समाता !
वीर पड़े सो रहे विजन में,
भरे-पुरे घर रीते !"
मन में जल उठते सुधि दीपक,
आँखों में अँधियारा !
सूख गई सरिता शोणित की,
बही अश्रु-जल धारा !
शोकाकुल कुल-वधुओं का दल,
शोकातुर सरिता-सा !
आर-पार कुछ भी न सूझता,
डूबा कूल किनारा !"

× × ×

भ्रातृ-पुत्र-हीना द्रुपदा-सी,
थी सुवला गांधारी !
भेद यही वस, एक विजयिनी,
एक सब तरह हारी !"

अन्त: में आध्यात्मिक प्रतीक बड़ा ही सुन्दर बन पड़ा है। पांडवों की विजय इस लिए हुई, क्योंकि उनके सखा नारायण थे और जीवनीशक्ति रूपी द्रौपदी उन में शक्ति भर रही थी इस विजय के लिए द्रौपदी, सुवला, पृथा और सुभद्रा आदि सभी नारियों ने वलिदान किये, तभी पशुवल का शमन हुआ। वस्तुता नर की विजय का मूल्य नारी ही चुकाती आई है।

कथानक के उपसंहार में कवि ने सृष्टि को एक यज्ञ कहा है और इसमें नारी की बहुत बड़ी महत्ता स्वीकार की है। नारी पुरुष की पूर्णता का प्रतीक है और संसार में उसकी नैया खेने वाली है—

"युद्ध-महानद-पार विजय श्री,
प्रखर क्षिप्रतर धारा !
एकाकी नर पार न पाता,
रहता दूर किनारा !
है दुस्साध्य अगम धारा में,
नारी नर की नैय्या !
नर के लिए चलाती नारी,
जल धारा पर आरा !"

× × ×

नारी कृत्या, मृत्यु, उर्वशी,
जननी जाया, माया !
क्षीर-सिन्धु धारिणी तारिणी,
महाशून्य की काया !

ऋतानृता, चिद् अचिद्-शक्ति
नीरा-नाल कमलिनी !
वह हिरण्यगर्भा है, जिसमें,
सब ब्राह्माण्ड समाया !"

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हैं कि आध्यात्मिक प्रतीक-विधान की दृष्टि से 'द्रौपदी' का वस्तु-संविधान बहुत सफल है। प्रमुख घटनाओं का अंकन प्रतीक शैली में हुआ है। उनके बोच में जीवन के चरम सत्यों को उभारा गया है। साथ ही कथा की धारा भी कहीं भी विच्छिल नहीं हो पाती।

नामकरण

प्रश्न ८—नामकरण की दृष्टि से द्रौपदी काव्य की समीक्षा कीजिए।

स्मृति संकेत

१. कथानक का केन्द्रविन्दु द्रौपदी है।

२. कथानक का प्रारम्भ द्रौपदी-स्वयंवर से हुआ है।

३. द्रौपदी जीवनी शक्ति है। उसने महा भौतिक पंचतत्व रूपी पांडवों को संश्लिष्ट किया।

४. पांडव जीवनी शक्ति द्रौपदी से प्रेरित होकर अपने स्वत्व के लिए लड़े।

५. जीवनी शक्ति द्रौपदी को पांडवों ने वरण किया और कौरवों ने उसका अपमान किया। इसीलिए अट्ठारह दिवस के भीषण युद्ध में पांडव विजयी हूए और कौरव विनाश को प्राप्त हुए।

६. कथानक की समाप्ति "सुख विकीर्ण है दुख विदीर्ण है द्रुपदा के पुन्यायी" कथन में द्रौपदी की महिमा के उद्घाटन में होती है।

७. अतः नामकरण की उपयुक्तता की दृष्टि से द्रौपदी काव्य बहुत सफल है।

उत्तर—आलोच्य काव्य के कथानक का पल्लवन होमजा द्रौपदी के जीवन-वृत्त को केन्द्र मानकर हुआ है। द्रौपदी पाण्डवों की वधू मात्र ही नहीं है, वह उनको धर्म-पथ पर अग्रसर करने वाली महीयसी नारी है। साथ ही वह जीवन-शक्ति का शाश्वत प्रतीक है। कथानक का प्रारम्भ द्रौपदी स्वयंवर से होता है। इसमें द्रौपदी रूपी जीवनी-शक्ति पाण्डव रूप पांच महातत्वों को सौंप दी गई—

"द्रौपदी जीवनी शक्ति,
सौंप दी गई पांच तत्वों को।
या कहा नियति ने, 'पार्थ!'
करो अब प्राप्त लुप्त स्वत्वों को।"

अर्थात् नियति की प्रेरणा से जीवनी शक्ति रूपी द्रौपदी ने पंच महातत्व रूप पाण्डवों का वरण किया। विश्रृंखलित तत्व संश्लिष्ट होने पर ही शक्ति को प्राप्त होते हैं। द्रौपदी की प्राप्ति से पूर्व पाण्डव क्षत्रिय होते हुए भी अपने स्वत्वों एवं अधिकारों से वंचित होकर भिक्षाटन करते थे। द्रौपदी ने उनको संश्लिष्ट कर शक्ति प्रदान की। पाण्डवों के सामने अधिकार पाने के प्रयासों की हलचल प्रारम्भ हुई और कथानक भी द्रौपदी को केन्द्र बनाकर विकसित होने लगा। द्रौपदी से युधिष्ठिर ने आत्मवल, भीम ने वेग, अर्जुन ने तेज प्राप्त किया। सलिल तत्व नकुल रसवन्त हो गया और स्थल तत्व सहदेव में सुगन्धि आ गई। कवि ने कर्ण का सम्बन्ध भी द्रौपदी से जोड़ दिया है। अर्जुन से पहले कर्ण ने लक्ष्यवेध किया था। परन्तु अवैध पुत्र होने के कारण द्रौपदी (कृष्णा) ने उसे स्वीकार नहीं किया—

"कृष्ण को अस्वीकार,
कमल जो कर्दम बीच खिला था।"

द्रौपदी जीवनी-शक्ति है। कोरवों ने उसका अपमान किया, उसमें कर्ण स हयोगी बना, अत: कर्ण की पराजय निश्चित थी और वह पराजित हुआ—

"अस्ताचलगामी सूर्य,
सिंहपति आहत नील निलय में।
खो गई कर्ण की कीर्ति,
द्रौपदी-पति पाण्डव की जय में।"

द्वितीय सर्ग में पांचाली ने नियति बनकर धृतराष्ट्र के महल में प्रवेश किया। वह यज्ञ की ज्वाला है और युधिष्ठिर राजर्षि हैं। वह पाण्डव-कुल के लिए शशि-प्रभा और कौरवों को भस्म करने के लिए भीषण वह्नि है। उसके राज-महल में प्रवेश करते ही धृतराष्ट्र का सिंहासन डोलने लगा—

"शत हस्तिद्वार कर पार,
सुन पड़ा पांचाली का गर्जन!
कर रही नियति हुँकार,
डोलता धार्त्तराष्ट्र राज्यासन।"

भीष्म द्रोण और विदुर आदि सभी द्रौपदी के महत्व और गरिमा से प्रभावित हैं। भीष्म विदुर से कहते हैं—

"कर याज्ञसेनि को तुष्ट,
इष्ट दुस्साध्य साधना होगा।
कह रहे विदुर से भीष्म,
स्नेह का सेतु बाँधना होगा।"

द्रौपदी सुयोधन के मन में दिग्दाह उत्पन्न कर देती है।

"जो दीप्ति, वही दिग्दाह,
सुयोधन के वज्राहत मन में।"

धृतराष्ट्र द्रौपदी पर गजमुक्ता बिखरते हैं, चाहे उनका यह कार्य भाव-प्रदर्शन मात्र ही हो—

गज मुक्ता रहे बखेर,
बधू पर बार अम्बिकानन्दन।

शकुनि द्रौपदी को द्वापर की कृत्या के रूप में देखता है। गांधारी दोनों बाहें फैलाकर द्रौपदी का स्वागत करती है। द्रौपदी के अपमान का प्रतिशोध लेने के लिये महाभारत का भीषण युद्ध होता है—

"अवधि अष्टादश दिवस की,
अग्निपथ की साधना!
पूर्ण होगी द्रौपदी के,
सत्व की आराधना।"

+ + +

कठिन था उस दिव्य जन्मा,
शक्ति की अवहेलना।
कठिन था नभ के लिए—
भी तेज उसका झेलना।
खेलकर यज्ञाग्नि से,
सब मर मिटे क्षत्रिय सुभट।
खेल पावक प्रवंचन का,
भूलकर मत खेलना।'

जीवनी शक्ति द्रौपदी को वरण करने वाले युधिष्ठिर विजयी होते हैं। वे अश्वमेघ यज्ञ करते हैं। यज्ञ के अश्व के रक्षक अर्जुन बनते हैं। यज्ञाश्व के पश्चात् लौटा है। द्रुपदा का पुण्य सुख फैला देता है और दुःख विदीर्ण कर देता है। इस प्रकार द्रौपदी ही आलोच्य काव्य के कथानक का केन्द्रबिन्दु है और प्रत्येक पात्र और घटना द्रौपदी से प्रेरित और संचालित है।

चरित्र-चित्रण

प्रश्न ९—चरित्र-चित्रण की दृष्टि से द्रौपदी काव्य की समीक्षा कीजिए।

उत्तर—'द्रौपदी' चरित्र-प्रधान कथा काव्य नहीं है। पात्रों की चारित्रिक रूप-रेखा के द्वारा कवि ने आध्यात्मिक जीवन-दर्शन व्यक्त किया है। द्रौपदी के सभी पात्र परम्परागत और पौराणिक हैं। परन्तु इस काव्य के सद्-असद्, धर्म-अधर्म और न्याय-अन्याय की धारणाओं के प्रतीक बन गये हैं। पात्रों ने अपने अन्तर की व्यथा, ईर्ष्या, द्वेष, ग्लानि आदि का उद्घाटन स्वयं किया है। द्रौपदी, युधिष्ठिर आदि महत्वपूर्ण पात्रों के चरित्र का विकास भी समुचित रूप से हुआ है। विभिन्न पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं :—

द्रौपदी

द्रौपदी प्रधान चरित्र और कथानक की नायिका है। द्रौपदी के माध्यम से कवि ने अपना आध्यात्मिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। द्रौपदी द्वापर की तेजस्वी और महिमामयी नारी है। उसने अपनी प्रबल प्रेरणा शक्ति से ही पाण्डवों को विजय के पथ पर अग्रसर किया था। आज भी उसकी गाथा हमारे जातीय जीवन को प्रेरणा देने वाली है। उस अग्निजा द्रौपदी ने पाण्डवों को जब तक वरण नहीं किया, वे भिक्षुक का दैन्य जीवन व्यतीत करते थे। उसका संयोग पाते ही पाण्डवों में शक्ति के स्रोत फूट पड़े। उसको भरी सभा निर्वसन करने का प्रयास करके कौरवों ने समस्त नारी शक्ति को अपमानित किया और इसी के परिणामस्वरूप वे विनाश को प्राप्त हुए।

द्रौपदी मूलतः नारी है। उसकी ओजस्विता और स्वाभिमान ने पाण्डवों को जीवन के प्रत्येक चरण पर दृढ़ता प्रदान की। उसी की प्रेरित शक्ति से कौरव रूपी पशु-शक्ति का विनाश हुआ और न्याय, धर्म एवं सत्य की स्थापना हुई। आलोच्य काव्य के अनुसार द्रौपदी नर को विजय के शिखर तक ले जाने वाली शक्ति है।

युधिष्ठिर

द्रौपदी में पांचों पाण्डव पंच महातत्त्वों के प्रतीक माने गये हैं। इनमें युधिष्ठिर ज्येष्ठ हैं और आकाश तत्व के प्रतीक हैं। वे उर्ध्वचेता हैं। पृथ्वी का मटमैलापन उनको प्रभावित नहीं कर पात। द्रौपदी की प्रेरणामयी अपार शक्ति को भी वे जुए के दाँव पर लगा देते हैं। उनका यह अव्यावहारिक रूप था।

युधिष्ठिर शान्त और धीर हैं। वे कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी धैर्य नहीं छोड़ते। जीवनी शक्ति द्रौपदी से प्रेरित होकर वे अडिग होकर युद्ध करते हैं। युद्धोपरान्त विषाद और पश्चाताप की सघन छाया उनको घेर लेती है। अन्त में उनके अन्तर्द्वन्द्वों का शमन होता है और सत्य उनके हृदय में पूर्ण उत्कर्ष के साथ उद्भासित हो जाता है। युधिष्ठिर के चरित्र का विकास अन्तर्मन्थन के माध्यम से ही हुआ है।

धृतराष्ट्र

धृतराष्ट्र जन्मान्ध हैं और अन्ध-मानस के प्रतीक हैं। उनकी दमित वासनाओं ने ही उनके शत पुत्रों के रूप में जन्म लिया है। वे अपने पुत्रों की इच्छा के अनुसार ही पाण्डवों को राज्य नहीं देते और उनको खांडव वन में राज्य स्थापित करने का आदेश देते हैं। वे अपने पुत्रों के अन्याय और अविचार का विरोध नहीं करते। धृतराष्ट्र अन्धी ममता से पीड़ित हैं। वे वधू द्रौपदी पर मुक्ताओं की वर्षा करते हैं, किन्तु दुर्भाव से। धृतराष्ट्र अन्धी ममता से पीड़ित हैं। उनका चरित्र-चित्रण प्रतीक शैली में हुआ है।

शकुनि

शकुनि कुटिलता और दुर्नीति की प्रतिमूर्ति है। उसके हृदय में प्रतिहिंसा की उग्र भावना है। भीष्म ने कुरु-कुल के लिए उसकी बहन गांधारी का अपहरण किया था। वह इसका प्रतिशोध लेने के लिए ही षड्यन्त्र रचाता है, जिसके कारण ही कुरु-कुल का विनाशकारी युद्ध होना है। शकुनि के लिए कवि ने लिखा है—

"श्रोणित पंकिल गंधार शकुनि लोहित प्रतिहिंसा पंकज।"

गांधारी

गांधारी का चरित्र प्रत्येक दृष्टि से उज्ज्वल और आदर्शपूर्ण है। वह ऐसी पतिपरायणा है कि पति के अन्धे होने के कारण अपने भी नेत्रों पर पट्टी बाँधे रहती हैं। वह द्रौपदी को हृदय से आशीष देती है और अपने पुत्रों के अन्याय का समर्थन नहीं करती। आलोच्य काव्य में गांधारी का चरित्र जहाँ कहीं भी उभरा है, उसमें सहज मनुष्यत्व की तरलता मूर्तिमान हो उठी है।

भीष्म

भीष्म कुरु-कुल के अभिभावक हैं। वे सदैव उसके हित और कल्याण के लिए तत्पर रहे। उन्होंने कुल की ममता के लिए गांधारी और अंबा का अपहरण किया था। यह पाप आजीवन उनके हृदय को पीड़ित करता रहा। द्रौपदी को देखकर उनका हृदय आह्लाद से भर जाता है। वे शकुनि से प्रार्थना करते हैं कि वह प्रतिहिंसा की भावना को छोड़कर कुरु-कुल के मंगल की कामना करे। वे पाण्डवों और कौरवों के दो तटों पर स्नेह का सेतु बाँधने का दृढ़-संकल्प करते हैं! इसी का यह परिणाम होता है कि वे कौरवों के अत्याचारों का खुलकर विरोध नहीं करते। उनके सामने भरी सभा में द्रौपदी नग्न की जाती है और वे विवश होकर देखते रहते हैं। अन्ततः उनको शर-शय्या पर सोना ही पड़ता है।

दुर्योधन

दुर्योधन धृतराष्ट्र का ही वासना-बीज है। वह खलनायक है। घटनाओं के संकेत, धृतराष्ट्र, शकुनि के संवादों में उसका चरित्र प्रकाशित हुआ है। दुर्योधन संकीर्ण, ईर्ष्यालु तथा सत्ता का लोभी है। वह पाण्डवों को उनका राज्य नहीं देता। वह द्रौपदी के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर शकुनि से मिलकर उसे अपनी भाग्यलक्ष्मी बनाने का षड़यन्त्र करता है। इन्द्रप्रस्थ में पाण्डवों की जो समृद्धि होती है, वह उसके हृदय में शूल के समान पीड़ा देती है। वह द्युत-छल और पाण्डवों और लाक्षागृह में जला देने की जैसी घृणित योजनाएँ बनाता है। परन्तु अन्त में अपने पाप का परिणाम भोगता हुआ वह विनाश को प्राप्त होता है।

निष्कर्ष—

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'द्रौपदी' के सभी पात्र महाभारत के हैं। पात्रों के चरित्र का स्थूल कार्यों एवं घटनाओं के द्वारा विकास नहीं हुआ है। कवि ने परम्परागत चरित्रों के सहारे जीवन-धारा के मूल में अन्तर्निहित विचार-रत्नों को प्रतीक पद्धति में अभिव्यक्त किया है। सारे पात्र सद् एवं असद् व्यक्तियों के प्रतीक बनकर उपस्थित हुए हैं।

द्रौपदी द्वापर की गरीयसी नारी और नर की प्रेरणा शक्ति का प्रतीक है। युधिष्ठिर के चरित्र का विकास अन्तर्मन्थन के माध्यम से हुआ है। धृतराष्ट्र, शकुनि और दुर्योधन का चरित्र कलात्मक सौन्दर्य के साथ प्रतिफलित हुआ है। इनकी चारित्रिक विशेषताएँ अन्य पात्रों की अपेक्षा अधिक संवेद्य हैं।

द्रौपदी

प्रश्न ९—नायक अथवा नायिकाकी दृष्टि से 'द्रौपदी' पर विचार कीजिए।

अथवा

प्रश्न १०—"द्रौपदी" नायिका प्रधान काव्य है, जिसकी नायिका द्रौपदी है,—इस कथन की तर्कपूर्ण समीक्षा कीजिए।'

अथवा

प्रश्न ११—द्रौपदी के नायकत्व को दृष्टि में रखते हुए उसका चरित्र चित्रण कीजिये।

स्मृति-संकेत

१. पौराणिक परम्परा के काव्यों में किसी सर्वगुण सम्मान महापुरुष को नायक का स्थान देकर समाज के समक्ष आदर्श प्रस्तुत किया गया है।

२. नायक कथानक का नेता और कथा को आगे ले जाने वाला होता है।

३. उसमें अन्य पात्रों से कुछ विशिष्ट गुण होते हैं।

४. अन्य पात्र नायक का ही अनुसरण करते हैं।

५. नायक फल-प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होता है और अन्त में फल की प्राप्ति करता है।

६. 'द्रौपदी' पौराणिक परम्परा का नवीन काव्य है। यह नायिका प्रधान काव्य है।

७. द्रौपदी में न्यायकोचित गरिमा और समस्त गुण हैं। इस काव्य की नायिका द्रौपदी है।

उत्तर—

१. **नायक के गुण**—भारतीयों काव्यों का उद्देश्य किसी महान् पुरुष के सर्वगुण-सम्पन्न जीवन द्वारा समाज को आदर्श की प्रेरणा देना रहा है। इसलिए मानवता के सर्वगुण सम्पन्न किसी धीरोदात्त व्यक्ति को काव्यकारों ने महाकाव्य के नायक के पद पर सुशोभित किया है। 'रामचरित,मानस' महाकाव्य के नायक राम ऐसे ही महापुरुष हैं। नायक के विरोध में मानवता का शत्रु प्रतिनायक या प्रतिपक्षी नायक होता है। द्रौपदी नायिका प्रधान काव्य है—जैसा कि इस काव्य के शीर्षक से स्पष्ट है। सारा कथानक द्रौपदी को ही केन्द्रित किये हुए है। जो दिव्य गुण हमारे यहाँ नायक के बतलाये गये हैं, वे सभी द्रौपदी में हैं—

१. द्रौपदी महाशक्ति शालिनी द्वापर की कृत्या है।

२. वह आध्यात्मिक रूप में पंच-तत्वों को संश्लिष्ट करने वाली जीवनी शक्ति है।

३. द्रौपदी पांडवों के लिए प्रेरणा शक्ति और कौरवों के लिये विनाशक शक्ति है।

४. पांचों पांडव, भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र, दुर्योधन, शकुनि, गांधारी आदि उसके महान् व्यक्तित्व से प्रभावित हैं।

५. कथानक का प्रारम्भ, विकास और समापन द्रौपदी को लेकर हुआ है।

द्रौपदी पांडवों की पत्नी है। पांडवों में युधिष्ठिर ज्येष्ठ हैं। द्रौपदी का पति होने के कारण ही युधिष्ठिर को नायक माना जा सकता है। वैसे द्रौपदी के सामने युधिष्ठिर का किंचित भी महत्व नहीं है। द्रौपदी की प्राप्ति से पूर्व पांडव अपने स्वत्वों से वंचित थे। वे भिक्षाटन करते हुए जीवन व्यतीत करते थे। द्रौपदी नियति बनकर उनको प्रेरित करती है। वह उनको पुरुषार्थ करने के लिये ललकारती है—

"पुरुषार्थ करो, युग पुरुष,
कह रही यज्ञसेनि पंचाली।"

द्रौपदी अव्यवहारी युधिष्ठिर को व्यवहारी बनाती है। द्रौपदी के महान् व्यक्तितत्व का उद्घाटन कवि ने निम्न प्रकार किया है—

"द्रौपदी जीवनी शक्ति,
पंच तत्वों की वह कल्याणी।"

× × ×

"योगेश्वर की वह बहन,
योगिनी-शक्ति, कर्म की कृष्णा !
पंचाग्नि-शक्ति साकार,
व्योम-अवतरणकारिणी कृष्णा !"

सारा प्रथम सर्ग द्रौपदी के गरिमामय व्यक्तित्व से मंडित है। दूसरे सर्ग में कौरव-पक्ष द्रौपदी के व्यक्तित्व से भयभीत और प्रभावित दिखाई पड़ता है। द्रौपदी यज्ञ की ज्वाला है। वह पांडव कुल की शशि-प्रभा और कौरवों के लिये कराल वह्नि है—

"राजर्षि युधिष्ठिर एल
द्रौपदी बनी यज्ञ की ज्वाला।
पांडव कुल की शशि प्रभा,
कौरवों को वह वह्नि कराता।'

राजमहल के सिंह द्वार में प्रवेश करते ही पांचाली के गर्जन में मानो नियति ही हुँकार उठती है। धृतराष्ट्र का राज्यासन डोलने लगता है। वे भय भीत हो जाते हैं और उनका मुख पीला पड़ जाता है—

"शत हस्तिद्वार कर पार,
सुन पड़ा पांचाली का गर्जन।
कर रही नियनि हुँकार,
डोलता धार्त्तराष्ट्र राज्यासन !
धृतराष्ट्र हुए भयभीत,
पीत मुख पड़ा, सुनी सब बातें।

भीष्म स्पष्ट कहते हैं कि कौरवों का कल्याण द्रौपदी को तुष्ट करने में ही

"कर यज्ञसेनि को तुष्ट,
इष्ट दुस्साध्य साधना होगा।"

पितामह द्रौपदी को देखकर आनन्द-मग्न हो जाते हैं। परन्तु उसको देखकर सुयोधन के वज्राहत मन में दिग्दाह होने लगता है—

"गूँजे कुंकुम के बोल,
उषा सा हँसा बधू का जावक।
आनन्द-मग्न हो गये,
पितामह कुरुकुल के अभिभावक।
उद्दीप्त हुआ प्रासाद,
वधूटी आ पहुँची आँगन में।
जो दीप्ति वही दिग्दाह,
सुयोधन के वज्राहत मन में।"

शकुनि द्रौपदी की शक्ति को पहचानता है। वह उसकी दृष्टि में उर्ध्वगामी ज्वाल और द्वापर की कृत्या है। उसे विश्वास है कि भविष्य द्रौपदी के चरण-चिन्हों पर चलेगा—

मैं तुम्हें पहचानता हूँ,
ऊर्ध्वगामी ज्वाल।
चरण-चिन्हों पर तुम्हारे,
चले भावी काल।
"शकुनि द्वापर युग,
अनलजा मैं तुम्हारा भृत्य।
देवि, कृत्या बनो,
युग को करो तुम कृत्य कृत्य।"

कवि ने इन्द्रप्रस्थ पुर की सारी सिद्धि और सम्पदा का कारण द्रौपदी ही को बतलाता है। वह वहाँ भूतल की शची-सी है—

"द्रौपदी सम्राज्ञि, भूतल की शची, श्री सिद्धि !
अग्निजा से सिद्ध थी, श्री सम्पदा की वृद्धि !"

द्रौपदी यज्ञजा है, अग्नि की ज्वाला है। उसका कौरवों ने अपमान किया, इसी के परिणाम स्वरूप महाभारत का युद्ध हुआ, जिसमें कौरवों का विनाश हुआ—

"उठ रही थी यज्ञ-ज्वाला,
द्रौपदी के क्रोध की।
आ रही थी निकट हर क्षण,
भूमिका प्रतिशोध की।"

× × ×

"कठिन थी उस दिव्य जन्मा शक्ति की अवहेलना,
कठिन था नभ के लिए भी तेज उसका झेलना!
खेलकर यज्ञाग्नि से सब मर मिटे क्षत्रिय सुभट,
खेल पावक प्रवंचन का भूलकर मत खेलना!"

कथानक के समापन में भी द्रौपदी की ही महत्ता का गान है। युधिष्ठिर ने अश्वमेघ यज्ञ किया। इस पराक्रम के प्रतीक अश्व के रक्षक थे धनुर्धर अर्जुन। वे दिग्बिजय करते हुए यशस्वी होकर लोटे। वह भी द्रौपदी के सम्मुख खड़े थे। युधिष्ठिर के राज्य में सुख, समृद्धि का प्रसार हुआ, दुःख लुप्त हो गया। यह सब सुख-सौभाग्य द्रौपदी की तपस्या और अखण्ड पुण्य का ही फल था। जीवनी शक्ति द्रौपदी महातत्वों के बीच प्रतिष्ठित है—

"सम्मुख, मेध्य अश्व का रक्षक,
अपराजेय धनंजय।
सुख विकीर्ण है, दुख विदीर्ण है,
द्रुपदा की पुन्यायी।"

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'द्रौपदी काव्य' में द्रौपदी की प्रधानता है और वही कथानक का केन्द्र-बिन्दु है। युधिष्ठिर आदि पाण्डवों का महत्व द्रौपदी से ही है। अतः द्रौपदी नायिका प्रधान काव्य है। द्रौपदी में एक आदर्श नायिका की समस्त गरिमा और विशेषताएँ हैं।

द्रौपदी का चरित्र-चित्रण

द्रौपदी के चरित्र की विशेषताओं का संक्षेप में रेखाचित्र निम्न प्रकार तैयार किया जा सकता है—

"आलोच्च काव्य में द्रौपदी जीवनी शक्ति की शाश्वत प्रतीक है। अग्निजा अनलजा, होमजा, होमकुमारी, कृष्णा आदि उसके नाम हैं। द्रौपदी का नयनाभिराम श्याम वर्ण है। कुरुकुल की लक्ष्मी के रूप में द्रौपदी पाण्डवों को प्राप्त होती है। द्रौपदी का संयोग होने से पूर्व पाण्डव भिक्षुक का दीन जीवन व्यतीत कर रहे थे। द्रौपदी की प्रेरणामय शक्ति पाकर पाण्डव अपना स्वत्व और राज्य प्राप्त करते हैं। द्रौपदी सामान्य नारी न होकर गरिमामय नारी है। उसे 'द्वापर' की कृत्या कहा गया है। कौरव उसका अपमान करके ही विनाश को प्राप्त हुए। उसका हृदय धृतराष्ट्र के पुत्रों के प्रति प्रतिशोध की ज्वाला से धधकता है। रजस्वला, एक वस्त्रा की स्थिति में भरी सभा में उसके वस्त्र का अपहरण किया गया था।

द्रौपदी का चरित्र बड़ा ही उज्ज्वल, उदात्त और तेजस्वी है। आलोच्य काव्य में वह पाण्डव रूप पाँच महातत्वों में प्राण-प्रतिष्ठा करने वाली शाश्वत जीवनी शक्ति है।

द्रौपदी की सौन्दर्य-दीप्ति बड़ी प्रभावशाली और गरिमामयी है, उसके सौन्दर्य में कोमलता, ममता और करुणा का समन्वय हुआ है। हस्तिनापुर के राजमहल में प्रवेश करने पर उसकी सौन्दर्य-दीप्ति से सभी प्रभावित होते हैं। गांधारी उसकी इन्दीवरी छवि का अनुभव करती हुई खिल उठती है। वह अपनी प्रेमाश्रुधारा से उसका अभिषेक करती है, सुयोधन उसकी दीप्ति से मर्माहत हो जाता है। शकुनि को वह कृत्या रूप में दीखती है।

आलोच्य काव्य में द्रौपदी को आध्यात्मिक विचारधारा के रूप में प्रस्तुत किया गया है, किन्तु मूलतः वह नारी है। उसके अतुल सौन्दर्य की गरिमा बहुत प्रभावशाली है। द्रौपदी की ओजस्विता, कठोर प्रकृति और स्वाभिमान पाण्डवों में धारणा-शक्ति भरता है। वह उनको जीवन के प्रत्येक चरण में दृढ़ता प्रदान करता है। वह उनको युद्ध में रत करके उन्हें विजय, कीर्ति और सम्मान प्रदान करता है। द्रौपदी काव्य की द्रौपदी ऐसी महान् नारी है, जो मनुष्य को विजय के शिखर तक ले जाती है। वह कृत्या, उर्वशी, मंगलकारिणी आदि सभी कुछ है।

युधिष्ठिर

प्रश्न १२—युधिष्ठिर का चरित्र-चित्रण कीजिये ।

अथवा

प्रश्न १३—"कथानक के विकास में युधिष्ठिर के चरित्र का विकास उतना नहीं हुआ है, जितना कि युद्धोपरान्त शान्ति के विषादपूर्ण द्वन्द्व की छाया में ।"—इस कथन की व्याख्या करते हुये युधिष्ठिर का चरित्र-चित्रण कीजिये ।

अथवा

प्रश्न १४—"युधिष्ठिर का चारित्रिक विकास अन्तर्मन्थन के माध्यम से हुआ है ।"—इस कथन की सोदाहरण विवेचना कीजिये ।

अथवा

प्रश्न १५—"युधिष्ठिर आकाश-तत्व हैं । निम्न धरातल पर लेन-देन अर्जन-विसर्जन आकाश के दृष्टिकोण से खेल में हार-जीत के समान है । युधिष्ठिर के व्यापक दृष्टिकोण, राग-द्वेष-रहित निर्विकार स्वभाव और द्यूत के उनके व्यसन का यही रहस्य है । दुनिया के काम-काजी मटमैले धरातल पर उतरने की इच्छा आकाश को नहीं होती । युधिष्ठिर को पार्थिवता से संकोच होता है ।"—इस कथन की सोदाहरण विवेचना करते हुये युधिष्ठिर का चरित्र-चित्रण कीजिये ।

स्मृति-संकेत

१. युधिष्ठिर पांचों पाण्डवों में ज्येष्ठ और आकाश-तत्व के प्रतीक हैं ।
२. वे निर्विकार और निर्मल होते हुये भी अव्यावहारिक हैं ।
३. इसी कारण द्रौपदी को सामान्य भोग्या नारी समझकर उसे जुए के दाँव पर चढ़ा देते हैं ।

४. युधिष्ठिर धर्मप्राण शान्त और धीर हैं।
५. उनके चरित्र का विकास विषादपूर्ण अन्तर्द्वन्द्व में हुआ है।
६. अग्नि के उद्बोधन से उनकी सत्यनिष्ठ आत्मा के ऊपर से अन्तर्द्वन्द्वों की घन-घटा हट जाती है, और पूर्ण सत्य उद्भासित हो उठता है।

उत्तर –द्रौपदी के प्रणेता ने शीर्षस्थ आकाश तत्व के रूप में युधिष्ठिर को निम्न प्रकार उपस्थित किया है—

"जिन पाँच महातत्वों को नारायणी शक्ति द्रौपदी ने शक्तिमान नर का स्वरूप दिया, उनमें शीर्षस्थ आकाश तत्त्व की सर्वोपरि सत्ता है। युधिष्ठिर आकाश तत्त्व हैं। निम्न धरातल पर लेन-देन, अर्जुन विसर्जन आकाश के दृष्टि-कोण से खेल में हार-जीत के समान है। युधिष्ठिर के व्यापक दृष्टिकोण, राग-द्वेष-रहित निर्विकार स्वभाव और द्युत के उनके व्यसन का यही रहस्य है। दुनिया के काम-काजी मटमैले धरातल पर उतरने की इच्छा आकाश-तत्त्व को नहीं होती। युधिष्ठिर को पर्थिवता से संकोच होता है। आकाश का व्यापक प्रसार धरातल पर कहाँ?"

आकाश का गुण शब्द-नाद माना गया है। युधिष्ठिर की ध्वजा पर मृदंग का चिन्ह था, जो शब्द-नाद का प्रतीक है। सर्प के रूप में स्वर्ग से शापवश पतित होने वाले नहुष ने आकाश-तत्त्व के स्पर्श को ही शाप-मुक्ति का साधन माना था। सब तत्त्वों में शीर्षस्थ आकाश को ही यक्ष—प्रश्नों का उत्तर देते बना।

आकाश के बाद पवन, अग्नि और जल-थल का अनुक्रम है। आकाश ही शेष चार तत्त्वों का आश्रय है। शेष चारो भाई युधिष्ठिर के अनुचर और आज्ञाकारी है। [भूमिका पृष्ठ ११]

उपर्युक्त रूपक-तत्त्व के आधार पर पाँचों पाण्डव पाँच महातत्त्वों के प्रतीक हैं। उनमें आकाश-तत्त्व युधिष्ठिर शीर्षस्थ तत्त्व और अग्रज हैं। वे ऊर्ध्वचेता हैं। धरती की वासना और कलुष उनको स्पर्ष नहीं कर पाते। परन्तु जब तक जीवनी शक्ति रूपी, द्रौपदी उनको प्राप्त नहीं होती, तब तक उनके तेज और सत्य का प्रसार नहीं हो पाता। वे आकाश की तरह निर्मल और निर्विवार

हैं, परन्तु साथ ही अव्यावहारिक भी हैं। यही कारण है कि द्रौपदी को एक सामान्य भोग्या नारी की तरह जुए के दाँव पर चढ़ा देते हैं। उनके इस व्यक्तित्व को कवि ने निम्न प्रकार उद्‌भासित किया है—

"मैं कालात्मज नभ-तत्त्व,
भला क्यों आया हूँ इस भू पर ?"
यों करने लगे विचार,
युधिष्ठिर दृष्टि लगाए ऊपर !
निश्चेष्ट युधिष्ठिर ज्येष्ठ,
श्रेष्ठ आकाश पुरुष अविकारी ;
कामार्थ भाव से युक्त,
विवेकी हैं, पर अव्यवहारी !
निर्लिप्त अनीह अकाम,
युधिष्ठिर नभसू, सत्वगुण ज्ञानी।
श्री चरणों में झुक गई,
शक्ति कर्षण की कृष्णा रानी !
आकाश अवतरण करे,
सँचरण न हो शब्द तृष्णा का।
हो गया स्वयं ही सिद्ध,
आत्मबल आकर्षण कृष्णा का।"

उर्ध्वचेता युधिष्ठिर बिना जीवनी-शक्ति और पृथ्वी के यथार्थ से महत्वहीन हैं। जीवनी शक्ति द्रौपदी उनको प्रेरित करके यथार्थ के धरातल पर ले आती हैं।

युधिष्ठिर निर्निकार और निर्मल होते हुए भी अपनी अव्यवहारिकता के कारण ही शकुनि के द्यु त-जाल में फँसते हैं—

"युधिष्ठिर की ही तरह सून्य विकार !
वह न जाने, अस्थि-पासे फेंकता संसार।"

युधिष्ठिर को जुए का व्यसन था, परन्तु द्यु त-कला का उनको सम्यक् ज्ञान नहीं था। शकुनि कहता है—

"युधिष्ठिर को व्यसन है,
पर नहीं जिसका ज्ञान।"

धर्मप्राण, युधिष्ठिर शान्त और धीर हैं। वे राज्य न पाने से विचलित नहीं होते। भरी सभा में द्रौपदी के निर्वसन होने पर धीरज नहीं छोड़ते। कठोर बनबास के दिन बड़े ही कष्ट से व्यतीत करते हैं। द्रौपदी की प्रेरणा और विवेक उनका पथ प्रदर्शन-करता रहता है। वे युद्ध में दृढ़-संकल्प लेकर लड़ते हैं और विजयी होते हैं।

धृतराष्ट्र अपनी कूटनीनि से युधिष्ठिर को बीरान और बीहड़ खांडवप्रस्थ बसाने की आज्ञा देते हैं। वे जीवनी-शक्ति द्रौपदी से प्रेरित बने हुए खांडवप्रस्थ को स्वर्ग देते है—

"सांध्य तारक की दिशा में चल पड़े कौन्तेय।
पृथा के सुत अग्नि-प्रेरित, धीर-वीर, अजेय॥"

अपनी धीरता, वीरता और अजेयता से वे इन्द्र के समान वैभव प्राप्त करते हैं। वे राजासूप यज्ञ करके चक्रवर्ती का पद पाते हैं—

"चक्रधर-श्रीकृष्ण रक्षित युधिष्ठिर सम्राट।

× × ×

मथित सागर सदृश वसुधा, पार्थ इन्द्र समान।

× × ×

चतुर्भज श्रीपति सदृश थी युधिष्ठिर की कान्ति।"

× × ×

राजासूय समाज में थे, सकल नृप भूपाल।
चक्रवर्ती थे युधिष्ठिर, चक्रहत शिशुपाल॥

युधिष्ठिर द्रौपदी को ही सामान्य भोग्या नारी की तरह जुए के दाँव पर चढ़ा देते हैं। इससे उनके मन को जो व्यथा और अशान्ति होती है, उसके शमन के लिए वे बनवास के कष्ट बड़े धैर्य से उठाते हैं। वे बड़े धैर्य से वन में पुण्य का संचय करते हैं—

"किया संचित पुण्य वन में,
धर्मसुत ने धैर्य से।"

युधिष्ठिर ने समस्त भारत का भ्रमण किया। उन्होंने देश के हर क्लेश को दूर करने के लिए वन के दुःख क्लेश सहन किये। सारा देश उनको भावी राष्ट्रपति के रूप में देखता था—

"देखने निकले युधिष्ठिर अखिल भारत देश को,
देखता था देश भावी राष्ट्रपति के वेश को।
सहेंगे दुःख-क्लेश वन में धर्मनन्दन इसलिए,
दूर कर पायें कभी वह देश के हर क्लेश को।"

युधिष्ठिर ने निर्जन वन, गिरिशृंग, नदी-नद, हृद और पर्वत शृङ्खलाओं को देखा। इस देश-भ्रमण में उन्होंने प्रभु की कला को देखा—

"विजन वन, गिरिशृंग देखे,
नदी-नद, हृद - शृङ्खला।
देव-दर्शन मिस निहारी,
कवि रचयिता की कला।"

युधिष्ठिर की साधना चरम-स्थिति पर पहुँच जाती है। वे यक्ष के प्रश्नों के उत्तर देते हैं। इस अवधि में युधिष्ठिर अन्य राजाओं से सहयोग प्राप्त कर अपनी शक्ति को सुदृढ़ बना लेते हैं। इस प्रकार वनबास और अज्ञातवास उनके लिए लाभकारी ही सिद्ध होता है—

"कर रहे अज्ञातवासी गुह्य की आराधना,
मत्स्य के सहयोग से ही पूर्ण होगी साधना।
× × ×
कंक हो निःशंक भारत रूप में आसीन थे,
मत्स्य सम्बन्धी बने थे, शाल्व प्रेमाधीन थे!
वृष्णि-श्रोणक, सृंजयों का गूँजता जयघोष था,
मात्र प्रज्ञाचक्षु के सौ चक्षु प्रज्ञाहीन थे।"

आलोच्य काव्य के चार सर्गों तक जो कथा-सन्दर्भ हैं, उनमें युधिष्ठिर के

चरित्र का विकास सम्यक् रूप से नहीं हो पाया है। वे आकाश तत्त्व के प्रतीक भर बनकर रह गये हैं। युद्धोपरान्त पाँचवें सर्ग में उनके चरित्र का विकास अन्तर्मन्थन के माध्यम से हुआ है। पंचम सर्ग के प्रारम्भ में वे मृत सम्बन्धियों का तर्पण करते हुए देखे जाते हैं। कुन्ती उनसे कर्ण का भी तर्पण करने को कहती है। वह बतलाती हैं कि कर्ण उनका बड़ा भाई था। युधिष्ठिर कर्ण के चरणों पर सादर अश्रु चढ़ाते हैं। उनका हृदय उनको धिक्कार उठता है। वह कहता है—

"तुम पर मर मिटने वाले सब,
तुमसे बहुत बड़े थे।"

धर्मराज होकर भी श्रीकृष्ण की प्रेरणा से उन्होंने जो अधर्मपूर्ण आचरण किये थे, वे एक-एक करके उनके नेत्रों के सामने आने लगे और उनके मानस को घोर अन्तर्द्वन्द्व से पीडित करने लगे—

"धर्मच्युत हो गए जगत्-गुरु,
अच्युत जिनके कारण,
शरशय्या पर शयित हुए वह,
स्वयं मन्त्र दे मारण!
मिथ्या-भाषण गुरु-द्रोही ने,
किया तार सप्तक में,
स्यादवाद मय अर्धसत्य का,
कर, अस्फुट उच्चारण।
याद आ गई धर्मराज को,
द्रोण-मरण की वेला
द्रुपद-पुत्र ने निठुर व्याध बन,
खेल नियति का खेला।
याद आ गई धर्मराज को,
वह होनी-अनहोनी।
अन्तरिक्ष ने जब उनका रथ,
भू की ओर ढकेला।"

कर्ण की पराजय, द्रोणाचार्य की छल पूर्ण निर्मम हत्या, शिखण्डी के माध्यम से भीष्म की पराजय, श्मशान का करुण दृश्य और कुरुकुल की स्त्रियों का रोदन युधिष्ठिर का मानस भेदन करने लगता है। उनका हृदय वेदना और परिताप से भरकर स्वयं को धिक्कारने लगता है। उनको विजय मिली थी, परन्तु उनका हृदय उन्हें बार-बार धिक्कार रहा था—

"धर्मराज भी राज धर्म के,
सम्मुख हुए विजित थे।
धर्मराज की इस उलझन में,
कितने मर्म निहित थे।
धर्म व्यष्टिगत या समष्टिगत,
थी यह विकट समस्या।
मोहन की मुसकानि या कि वह,
माया के इंगित थे।"

युधिष्ठिर का मानस ऊहापोह से भर जाता है। अन्तर्द्वन्द्वों की घनघटा उनको आवृत कर लेती है। अग्नि गर्जना करता हुआ उनका समाधान करता है। उनके समक्ष यह चरम सत्य उद्भासित हो जाता है कि पृथ्वी पर धर्म की स्थापना के लिए दु:शासन और दुर्योधन जैसे पशुवल का विनाश अनिवार्य था। यदि भीष्म-द्रोण ने कौरवों के अत्याचारों का विरोध किया होता, भरी सभा में द्रौपदी के निर्वसन होने से बचाया होता, तो यह भीषण रक्तपात न होता। निहत्थे बालक अभिमन्यु को सप्त महारथियों ने घेरकर मारा था। उनको इस पाप का फल मिलना ही था। अत: इस धर्म-विजय पर पश्चाताप व्यर्थ है। अग्नि के इस उदबोधन से युधिष्ठिर का पश्चाताप दूर हो जाता है—

"ऊहापोह-भरे मानस की,
थाह पार्थ ने पाई!
उन्हें पृथा पृथ्वी माता की,
थी अश्रु सिक्त सुधि आई।"

गांधारी के समक्ष आते हैं। उसकी दृष्टि युधिष्ठिर के नखों पर पड़ती है; वेकाले पड़ जाते हैं। युधिष्ठिर उनसे धर्म-पुत्र बनने का वरदान मांगते हुए कहते हैं—

"दिया नहीं 'आशीष पुत्र को,
धर्मज्ञा गाँधारी।
क्यों न तुम्हारी मति पर माते,
पार्थ जाय वलिहारी।
नख मेरे अभिशप्त सही पर,
शीश रहे करतल गत।"
धर्मपुत्र ने कहा, "धर्म का,
पुत्र बनूँ महतारी।"

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि युधिष्ठिर के चरित्र का विकास अन्तर्मन्थन के माध्यम से होता है। उनकी सत्यनिष्ठ आत्मा जो अन्तर्द्वन्द्वों की घन-घटा से आवृत हो गई थी उसके हटते ही उनके व्यक्तित्व का चरम सत्य अपने पूर्ण प्रकाश के साथ उद्भाषित हो जाता है।

अन्य पात्र

प्रश्न १६—धृतराष्ट्र का चरित्र-चित्रण कीजिये।

अथवा

प्रश्न १७—'धृतराष्ट्र अनयन अचेतन मानस के प्रतीक हैं।'—इस कथन की सोदाहरण समीक्षा करते हुए धृतराष्ट्र का चरित्र-चित्रण कीजिये।

उत्तर—'द्रौपदी के धृतराष्ट्र के विषय में कवि ने मान्यता निम्न प्रकार स्पष्ट की है—

"धृतराष्ट्र नयन हीन हैं—अचेतन, अप्रकट उस मानस के समान, जिसे शत इच्छाएँ ही पुत्र रूप में प्राप्त हैं। उन्हें विफलता के अतिरिक्त और कुछ प्राप्त नहीं होता।"

—वक्तव्य

"धृतराष्ट्र अनयन, अचेतन मानस, यानी इनकॉन्शियेंट के प्रतीक हैं। अन्ध-कूप सा उनका मन केवल अपनी इच्छाओं से ही शासित है। धृतराष्ट्र की सौ इच्छाएँ सौ पुत्रों के रूप में फूलती फलती और विनाश को प्राप्त होती हैं। अन्धे धृतराष्ट्र अपनी इच्छाओं को विवेक से अनुशाशित नहीं कर पाते। वह अपनी इच्छाओं के वश में हैं। दुर्योधन धृतराष्ट्र की अव्यक्त आशा-आकाक्षाओं का ही उद्धत स्वरूप है। दुर्योधन जो कहता—करता है, धृतराष्ट्र के ना-ना करते हुए भी, वह धृतराष्ट्र के अपने अचेतन की ही अभिव्यक्ति है।"

—भूमिका पृष्ठ १२-१३

कवि द्वारा मान्य उक्त प्रतीकात्मक रूपक के रूप में ही धृतराष्ट्र का चरित्र आलोच्य काव्य के अन्तर्गत आया है। धृतराष्ट्र जन्मान्ध हैं। उनकी दमित वासताओं ने ही उनके दूर्योधन दु:शासन आदि शत पुत्रों के रूप में जन्म लिया

है। उनका अपने पुत्रों पर कोई नियन्त्रण नहीं है। जिस प्रकार कामान्ध अपनी इन्द्रियों का दास बन जाता है, उसी प्रकार वे अपने पुत्र रूप शत-शत वासनाओं के दास हैं।

द्रौपदी के रूप में धृतराष्ट्र को नियति हुँकार करती दिखाई देती है—

"कर रही नियति हुँकार,
डोलता धार्त्तराष्ट्र राज्यासन।

वे भयभीत हो जाते हैं और उनका मुख पीला पड़ जाता है। उनको अपने पुत्रों के पराभव का आभाष मिल जाता है। उनको अपने शत दीपक बुझे हुए दिखाई देते हैं—

"धृतराष्ट्र हुए भयभीत,
पीत मुख पड़ा, सुनी सब बातें।

× × ×

दुश्चिन्ताओं में डूब,
सोचने लगे भूप सब बातें ;
शत दीपक मेरे बुझे,
हाय ! अब बुझे, अँधेरी रातें।"

धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को समझाना चाहा, परन्तु वह तो उनकी ही वासना का बीज था। अतः वह नहीं माना। दुर्योधन अन्ध मानस धृतराष्ट्र का ही तो अभावमय अन्तर है—

"आत्मज उनका ही अंश,
न छोड़ा उसने रार बढ़ाना।"

× × ×

"जो कर न सके धृतराष्ट्र,
रही जिसके करने की इच्छा ;
सुत वही वासना वीज,
दवा पाई जिसको न सदिच्छा !
अंकुरित हुआ अन्ध वह अक्षत,
सुयोधन का ही तन-मन धरकर ;

दुर्योधन ही धृतराष्ट्र,
अँधेरे का अभावमय अन्तर !

धृतराष्ट्र अपने पुत्र दुर्योधन की इच्छा का अनुसरण कर पाण्डवों को राज्य नहीं देते और उनको खांडववन के राज्य की स्थापना करने का आदेश देते हैं। उनके इस आदेश में उनके अन्ध मानस की भावना ही व्यक्त होती है—

"आज जिस युवराज पद पर सुयोधन आसीन,
उसे कैसे दूँ किसी को, हे सुनीति प्रवीन।
इसलिए यह कह रहा हूँ, सुनो सन्त गृहस्थ।
दूँ युधिष्ठिर को पुरातन भूमि खांडवप्रस्थ।

उनकी इस योजना में हस्तिनापुर की रक्षा का स्वार्थ भी है। इससे नाग और आभीरों से हस्तिनापुर सुरक्षित रहेगा—

"नाग जन के उपद्रव को, करेंगे वह शान्त !
न होगा नाग जन से हस्तिनापुर क्लांत !
बसे खाण्डवप्रस्थ यमुना नदी के उस पार !
हस्तिनापुर का सुरक्षित रहे पश्चिम द्वार !
बसावें बंजर युधिष्ठिर, दिखावें पुरुषार्थ !
बनें अन्तर्वेदिका के द्वार रक्षक पार्थ !"

धृतराष्ट्र बाहर भीतर सर्वज्ञ तमसाच्छन्न हैं। वे द्रौपदी की पदचाप सुनते ही भविष्य को देख लेते हैं। द्रौपदी उनकी शत्-शत् वासनाओं को भस्म करती हुई दिखाई देती है। वे आशीर्वाद के रूप द्रौपदी के ऊपर मुक्ताओं की वर्षा करते हैं, परन्तु उनका मन उसके प्रति दुराव से भरा हुआ है—

'गज-मुक्ता रहे बखेर,
बधू पर बार अम्बिकानन्दन।
मन में दुराव का भाव,
करों में केवल भाव-प्रदर्शन।"

निष्कर्ष—

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वृद्ध धृतराष्ट्र अपनी अन्धी ममता से पीड़ित हैं। आलोच्य काव्य में उनका चरित्र-चित्रण प्रतीक शैली में हुआ

है। वे अपनी अन्धी वासनाओं के सामने विवश हो जाते हैं। वे दुर्बल चरित्र के हैं। कवि ने निम्न पंक्तियों में उनका उभरा हुआ रेखाचित्र प्रस्तुत कर दिया है—

"अंकुरित हुआ वह अकृत,
सुयोधन का ही तन मन धरकर।
दुर्योधन ही धृतराष्ट्र,
अँधेरे का अभावमय अन्तर।"

शकुनि

प्रश्न १७—शकुनि का चरित्र-चित्रण कीजिए और उसकी तुलना दुर्योधन से कीजिए।

अथवा

प्रश्न १८—"शकुनि दुष्टता, कुटिलता, दुर्नीति और अधर्म की प्रतिमूर्ति है।"—इस कथन की व्याख्या करते हुए शकुनि का चरित्र-चित्रण कीजिए।

उत्तर—शकुनि के चरित्र का विश्लेषण करते हुए कवि ने लिखा है—

"महाभारत के विग्रह को बढ़ाने में शकुनि का बड़ा हाथ था। शकुनि को महाभारत में द्वापर का अवतार कहा गया है। द्रौपदी को कृत्या रूप में देख कर, शकुनि का प्रसन्न होना इस हेतु सहज स्वाभाविक था।"

—भूमिका पृष्ठ १३

शकुनि और दुर्योधन

शकुनि और दुर्योधन दोनों ही महाभारत के खल पात्र हैं। दुर्योधन और शकुनि दुष्टता, कुटिलता दुर्नीति और अधर्म की प्रतिमूर्ति है। दोनों के चरित्र में अन्तर भी है। शकुनि प्रतिहिंसा से प्रेरित होकर कुरुवंश का विनाश चाहता था। कभी भीष्म ने उसकी बहन गांधारी का अपहरण किया था। शकुनि इसका बदला लेने की घात लगाये रहा। द्रौपदी की सौन्दर्य-दीप्ति को देखकर उसके हृदय में प्रतिशोध की ज्वाला बड़ी उग्र हो उठती है। वह जुए का जाल फैला कर कुरुवंश के विनाश की भूमिका प्रस्तुत करता है। दुर्योधन में इस प्रकार की कोई प्रतिहिंसा की भावना नहीं है। वह स्वभाव से ही उद्धत, कुटिल और दुष्ट

है। वह अपने अहं में किसी की एक नहीं मानता और युद्ध में विनाश को प्राप्त होता है।

शकुनि को कवि ने कौरव-कुल में व्याप्त तमस का तत्त्व और द्वापर युग का ईंधन कहा है। द्रौपदी को राजमहल में देखकर उसे प्रसन्नता होती है—

"आनन्द पुलक की लहर,
उठी शकुनी के निष्ठुर उर में।

× × ×

ऋज हुआ शकुनि का अधर,
होंठ पर कुटिल ह्रास की रेखा।

× × ×

पावक तनया को देख,
हँस पड़ा द्वापर युग का ईंधन।"

कवि ने शकुनि के चरित्र का रेखाचित्र निम्न पंक्ति में बड़ी सजीवता से अंकित कर दिया है—

"शोणित पंकिल गंधार,
शकुनि लोहित प्रतिहिंसा पंकज।"

भीष्म द्रौपदी को देखकर आनन्दमग्न हो जाते हैं। इस अवसर पर शकुनि की प्रतिहिंसा धधक उठती है। वह उनसे कह ही देता है—

"वह पतिम्बरा नव बधू,
धनो स्वेच्छा से वरण किया है।
गंधार - सुता वह नहीं,
भीष्म ने जिसका हरण किया है।"

शकुनि द्रौपदी को अपनी प्रतिहिंसा पूर्ति का साधन मानता है। वह द्वापर-युग है, तो द्रौपदी कुरुवंश का विनाश करने वाली कृत्या है। वह द्रौपदी को देखकर कहता है—

"शकुनि कहता है, अँगारा बनेगा कर्पूर,
द्रौपदी की चरण-रज हो, भानु का सिन्दूर!"

मैं तुम्हें पहचानता हूँ, ऊर्ध्वगामी ज्वाल,
चरण चिन्हों पर तुम्हारे चले भावी काल।
शकुनि द्वापर-युग, अनलजा, मैं तुम्हारा भृत्य,
देव, कृत्या बनो, युग को करो तुम कृतकृत्य।"

गांधारी जिस स्नेह, वत्सलता के साथ द्रौपदी से मिलती है, उससे शकुनि को चिन्ता हो जाती है कि शायद अब कौरवों का नाश न हो। परन्तु तत्काल ही वह संशय को दूर कर प्रतिशोध के संकल्प पर दृढ़ हो जाता है—

"न दूँगा अवसर कि सन्मति शक्ति को हो प्राप्त।
शकुनि के रहते, मिलेंगे नहीं मन से आप्त॥"

शकुनि अपने संकल्प को पूरा करने के लिए द्युत-जाल बिछा देता है। दुर्योधन तो शकुनि को श्रीकृष्ण ही मानता है—

"कृष्ण उनके लिए, मेरे लिए तुम घनश्याम !
युक्ति-धन, बरसो ! बचाओ सुयोधन के प्राण !
युक्ति दो दुख-मुक्ति हो जो, हो उन्हें विषपान !!"

शकुनि की कुमंत्रणा के कारण ही कौरव विनाश को प्राप्त हुए। कवि ने स्पष्ट किया है—

"पास जिनके शकुनि, यम के दूत उनके पास थे !"

शकुनि और गांधारी भाई-बहन हैं, परन्तु दोनों में बड़ा ही अन्तर है। गांधारी के हृदय में श्रद्धा की सुधा है, किन्तु शकुनि का हृदय प्रतिहिंसा के हलाहल से भरा हुआ है :—

"भाई-बहन एक ही धुरी के दो ध्रुव के समान हैं। विपरीत तत्त्वों से ही जगत का निर्माण होता है। वही जीवन-नाटक को गति देते हैं।"

—भूमिका पृष्ठ १३

निष्कर्ष—

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शकुनि प्रतिहिंसा की आग लेकर कुरुवंश को भस्म करा देता है। वह दुष्टता, कुटिलता, दुर्नीति और अधर्म की प्रतिमूर्ति है, वह अपने षड़यन्त्र के द्वारा कुरुवंश को भीषण युद्ध की विभीषिका में ढकेल कर उसका विनाश करा देता है।

प्रश्न २०—भीष्म का चरित्र-चित्रण कीजिए।

उत्तर—आलोच्च काव्य में भीष्म के चरित्र की एक ही विशेषता सामने आई है, वह है—उनका कुरुकुल का अभिभावक होना और कुरुकुल के मंगल की बात सदैव सोचना।

द्रौपदी कुरुवंश की वधू बनी, इसकी उनको बड़ी प्रसन्नता है। [हो रहे प्रफुल्लित भीष्म, पार्थ को मिली वधू पांचाली।] भीष्म के लिए पांडव-कौरव दो छोर हैं। वे दोनों के केन्द्र हैं। वे पाण्डवों के सत्याग्रह और कौरवों के दुराग्रह के संघर्षण में पड़े हुए हैं। परन्तु वे मेरु के समान अचल होकर दोनों के बीच में तटस्थ बने हुए हैं :—

"पाण्डव कौरव दो छोर,
केन्द्र हैं जिसके भीष्म पितामह !
संघर्षण वासुकि - डोर,
बीच सत्याग्रह और दुराग्रह ।।"

भीष्म को द्रौपदी पाण्डवों के लिए लक्ष्मी और कौरव-कुल के लिए उल्का प्रतीत होती है। वे विदुर से कहते हैं कि द्रौपदी को सन्तुष्ट करने से कुरुवंश की रक्षा संभव है—

"पाण्डव - लक्ष्मी द्रौपदी,
द्रौपदी कौरव कुल की उलका।
"कर याज्ञसेनि को तुष्ट,
इष्ट दुस्साध्य साधना होगा।"
कह रहे विदुर से भीष्म,
"स्नेह का सेतु बाँधना होगा।"

भीष्म पितामह कौरवों और पाण्डवों के समान रूप से अभिभावक हैं। वे पाण्डवों के सत्याग्रह और कौरवों के दुराग्रह से परिचित हैं। वे दोनों में स्नेह का सेतु बाँधने के लिए प्रयत्नशील रहे। उन्होंने गांधारी और अंबा का अपहरण कुरुवंश की रक्षा के लिये किया था। यह कार्य उनके हृदय को आजीवन कचोटता रहा।

भीष्म कुरुवंश का सदैव मंगल ही चाहते हैं। भरी सभा में उनके सामने

द्रौपदी को निर्वसन किया गया। अभिमन्यु को अकेले घेरकर अन्याय से मारा गया। परन्तु भवितव्यता के वशीभूत होकर वे कुछ न कर सके। अन्त में उन जैसे महावीर को शर-शय्या पर सोना पड़ा।

प्रश्न २१— दुर्योधन का चरित्र-चित्रण कीजिए।

अथवा

प्रश्न २२—"दुर्योधन का चरित धृतराष्ट्र की दमित इच्छाओं और अंधी ममता के अनुराग में विकसित हुआ है।"—इस कथन की व्याख्या करते हुए दुर्योधन का चरित्र-चित्रण कीजिए।

उत्तर—द्रौपदी में दुर्योधन का चरित्र ही ऐसा है, जो कलात्मक सौन्दर्य में विकसित हुआ है। वैसे वह असद् वृत्तियों, पशुबल और अहं का प्रतीक है। दुर्योधन महाभारत का खलनायक है। 'द्रौपदी' काव्य में भी उसकी उपस्थिति खलनायक ही के रूप में है। दुर्योधन धृतराष्ट्र के वासना-बीज का अंकुरित रूप है। वह संकीर्ण, ईर्ष्यालु, अन्ध-वासना और राज्य के लोभ से पराभूत अस्तित्व लेकर 'द्रौपदी काव्य' में उपस्थिति हुआ है। वह दुष्टता, कुटिलता, दुर्नीति और अधर्म का प्रतीक है। दुर्योधन का चरित्र-चित्रण आलोच्य काव्य में निम्न रूप में हुआ है : –

१. महाभारत की दुर्योधन से सम्बन्धित घटनाओं का उल्लेख करके कवि ने उसके चरित्र पर प्रकाश डाला है।

२. धृतराष्ट्र-दुर्योधन और दुर्योधन-शकुनि के संवादों में दुर्योधन के चरित्र की आन्तरिक विशेषताओं का विश्लेषण हुआ है। कवि ने दुर्योधन को रूपक तत्त्व के रूप में निम्न प्रकार उपस्थिति किया है—

"दुर्योधन धृतराष्ट्र की अव्यक्त आशा-आकाक्षाओं का ही उद्धत व्यक्त स्वरूप है।"

—भूमिका पृष्ठ १३

दुर्योधन पशुबल और दुराग्रह का प्रतीक तथा पाण्डव सत्याग्रह और धर्म के प्रतीक हैं। पाण्डव रूपी सत्य-धर्म की दुर्योधनरूपी पशुबल एवं दुराग्रह पर विजय होती है। यही दुर्योधन के रूपकत्व का आशय है। यद्यपि दुर्योधन की

माँ गांधारी धर्मनिष्ठ और सहृदय थी, परन्तु धृतराष्ट्र की अन्धी वासना और दमित इच्छा रूपी बीज में दुर्योधन फलित हुआ। जब बीज ही अच्छा नहीं था, तब उससे उत्पन्न फल कैसे अच्छा होता—

"शतखण्ड अहंता 'पुंज',
तनय सौ गाधारी ने जाये!
पाकर बबूल का बीज,
धरित्री कैसे आम उगाये।"

धृतराष्ट्र के आदेश पाने पर भी दुर्योधन पाण्डवों को उनका राज्य नहीं देता। वह बड़े कुतर्क से अपने पक्ष को प्रस्तुत करता है। धृतराष्ट्र ने आरम्भ में दुर्योधन को प्रेरित किया कि युधिष्ठिर को अपना पैतृक दाय मिल जाये। पांचाली द्रौपदी के कुल-वधू होने पर पांचालराज द्रुपद का अभिनन्दन हो। वह धृतराष्ट्र के इस प्रस्ताव को ठुकराता हुआ कहता है—

"युधिष्ठिर का करूँ अभिनन्दन, पिता, किस हेतु,
इसलिए क्या, आज रवि को ग्रस रहा है केतु?
पद दलित था द्रुपद, जिसका हो रहा उत्कर्ष,
मनाना होगा मुझे क्या इसलिए हर्ष।
चाल है यह द्रुपद की, फिर हो विशद पंचाल,
दी न पांचाली, दिया है जटिल जादू डाल।
राज्य के भूखे युधिष्ठिर को बना जामात्र,
खिलाया है खेल, दुहिता नहीं दे विष पात्र।
द्रुपद का उत्कर्ष कौरव मात्र का अपकर्ष,
तात फिर भी अनुज्ञा हो, तो मनाऊँ हर्ष।
मुझे परिवर्तन नहीं प्रिय, क्योंकि मैं दृढ़ स्वार्थ,
धार्त्तराष्ट्रों से छिने कुछ, पाये तब कुछ पार्थ।
किन्तु मैं वंचित-प्रवंचित नहीं हूँगा तात,
अधिक मैं क्या कहूँ? है सौ बात की यह बात।"

दुर्योधन के उक्त कथन में उसकी ईर्ष्या, अहं और स्वार्थ-भावना अभिव्यक्त हुई है। इतना ही नहीं दुर्योधन इतना अधिक उद्धत और उदण्ड है कि वह

विदुर आदि गुरुजनों के प्रति भी अपशब्द कहता है। विदुर ने युधिष्ठिर को सत्यवादी और धर्म का अवतार कहा और उनका राज्य उन्हें देने का समर्थन किया। इस पर दुर्योधन व्यंग्य-वाणी में कहता है—

"सत्य क्या है, इस विषय में सर्व-सम्मत कौन,
सत्यवादी इसलिए ही, सदा रहता मौन।
किन्तु उसके हित जगत में बोलते हैं और,
धर्म के अवतार के कर जानते बस मौन।
कौरवों के कौर पर जो पल रहा है धर्म,
कर चुका है बहुत दिन वह भिक्षुओं के कर्म।"

दुर्योधन की इच्छा के सामने झुककर धृतराष्ट्र पांडवों को वीरान और वीहड़ खण्डव वन का राज्य देते हैं। पांडव अपने अथक परिश्रम से उसे इन्द्र-लोक के समान सुन्दर और समृद्धिपूर्ण बना देते हैं। पांडवों की यह समृद्धि दुर्योधन के हृदय में शूल के समान चुभने लगती है। वह निरुपाय होकर स्वजनों के सुख को देखता है और ईर्ष्या से जल उठता है। वह शकुनि से पांडवों के विनाश की युक्ति पूछता हुआ कहता है—

"कृष्ण उनके लिए, मेरे लिए तुम घनश्याम।
युक्तिघन, बरसो ! बचाओ सुयोधन के प्राण।
युक्ति दो, दुख-मुक्ति हो जो, हो उन्हें विष पान।"

द्रौपदी जब राजमहल में प्रवेश करती है, दुर्योधन उसकी अपूर्व सुन्दरता देखकर उसे अपनी भाग्य लक्ष्मी बनाने का दु:संकल्प करता है।

अन्त में पशुबल का प्रतीक दुर्योधन विनाश को प्राप्त होता है। संक्षेप में दुर्योधन पशुबल और धृतराष्ट्र की दमित वासनाओं का प्रतीक है।

प्रश्न २३—कुन्ती (पृथा) और गांधारी का चरित्र-चित्रण कीजिए।

उत्तर—कुन्ती और गांधारी दोनों ही द्वापर की महान् नारियाँ हैं। गांधारी का अपहरण भीष्म ने अंधे धृतराष्ट्र के लिये किया था। वह आदर्श पतिव्रत नारी थी। पति के अंधे होने के कारण गांधारी आजीवन अपने नेत्रों पर पट्टी बाँधे रहती है। पट्टी खोलने पर वह युद्धभूमि में अपने मृत शत पुत्रों को

देखती है। उसका वात्सल्य चीत्कार हो उठता है। उसकी क्रोधाग्नि से युधिष्ठिर के नख काले पड़ जाते हैं। गांधारी सदाशया और धर्मपरापण नारी है। वह अपने अधर्मी और अन्यायी पुत्रों को विजय की आशीष नहीं देती। धर्मात्मा युधिष्ठिर को वह धर्म पुत्र होने का वरदान देती है। पृथा पृथ्वीमाता का प्रतीक है। उसे देव-आवाहन शक्ति प्राप्ति थी। उसने क्वारें पन में सूर्य का आवाहन किया और कर्ण को जन्म दिया। गांधारी और पृथा में यह अन्तर है कि जहाँ पृथा विजयिनी बनी, वहाँ गांधारी का सर्वस्व विनाश को प्राप्त हुआ। दोनों नारियों का हृदय वात्सल्य से ओत-प्रोत है। कुन्ती कर्ण के लिए और गांधारी अपने शत् मृत-पुत्रों के लिए करुणा-क्रन्दन करती है।

कुन्ती (पृथा)

पृथा (कुन्ती) को कवि ने आध्यात्मिक प्रतीक रूपक के रूप में निम्न प्रकार उपस्थित किया है।

"पृथा माना स्वयं पृथ्वी माता हैं, जिन्हें देव-बहन-शति प्राप्त है।"

—वक्तव्य

"पृथा मेरी दृष्टि में क्षात्र-धर्मा पृथ्वी माता हैं वरदान में उन्हें देब-वहन शक्ति प्राप्त है। वह देवों का आवाहन कर अपने वीर पुत्रों को जन्म देती हैं। वीर प्रसू पृथ्वी इसी प्रकार दिव्यांशों की धारणा कर वीर पुत्रों को जन्म देती है। वह गो-रूप धारिणी नहीं है। वह क्षात्र तेजवाली अश्विनी शक्ति की प्रतीक है। उसके द्वारा सर्वप्रथम सूर्य का आवाहन करना स्वाभाविक था। सूर्य-पत्नी संज्ञा ने भी तो अश्विनी का रूप धारण किया था। अश्विनी नक्षत्र में सूर्य के संक्रमण करने से आज भी हमारा संवत्सर आरम्भ होता है। किन्तु पृथ्वी स्वरूप पृथा या कुन्ती ने कौतूहल वश सूर्य का आवाहन करते समय, देश-काल की अवस्था का ध्यान नहीं रखा था। इसलिए परिणाम प्रीतिकर नहीं हुआ..............कन्यावस्था में उनका प्रथम समागम सूर्य से हुआ। सूर्य के अनिवार, अमोघ अंश से कन्यापुत्र या कानीन कर्ण उत्पन्न हुआ।"

भूमिका पृष्ठ ९-१०

कवि ने कुन्ती को सामान्यतः इसी प्रतीक रूपक के रूप में ग्रहण किया है।

केवल पांचवे सर्ग में कुन्ती हमारे सामने मानवी रूप में आती है। महाभारत का युद्ध समाप्त हो चुका है। कर्ण की इसमें मृत्यु हुई है। युधिष्ठिर मृत सम्ब-निधयों की आत्मा की शान्ति के लिए तर्पण कर रहे हैं। मृत कर्ण को देखकर कुन्ती का वात्सल्य उमड़ पड़ता है। वह युधिष्ठिर से कर्ण का तर्पण करने को कहती है और स्व-पुत्र होने की बात बताती है—

"तर्पण करते हुए पार्थ से,
कहा पृथा ने, "बेटा" !
ज्येष्ठ सहोदर था तेरा ही,
कर्ण भाग्य का हेटा !
विवस्वान का कर आवहन,
मैंने उसे जना था।
हाय अनुज ही के हाथों वह,
अन्त चिता पर लेटा।"

पृथा के मुख से जो 'हाय चिता पर लेटा' निकलता है, उसमें उसका करुण-वात्सल्य-जनित हृदय उमड़ पड़ता है। निम्न कथन में उसके मातृ-हृदय की सुन्दर झाँकी मिल जाती है—

"जैसी तेरी, वैसी ही मैं,
रविसुत की महतारी !
वचन वद्ध वह लड़ा अन्त तक,
केवल मिट जाने को;
क्योंकि तुझे तेरे अग्रज ने,
माना था अधिकारी।"

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पृथा पृथ्वी माता का प्रतीक है। मानवी माता के रूप में उसके चरित्र की झाँकी अनूठी है।

गांधारी

गांधारी पति-परापणा आदर्श नारी है। अन्धे धृतराष्ट के लिए भीष्म ने उसका अपहरण किया था। वह पति की अंधता के कारण स्वयं भी आजन्म

नेत्रों पर पट्टी बाँधे रहती है। गांधारी का चरित्र जहाँ भी उभरा है, उसमें उसका आदर्श और सहज मानवता मूर्तिमान हो उठी है। कवि उसके पावन-चरित्र का रेखाचित्र खींचता हुआ कहता है—

"है पतिव्रत की मूर्ति,
पूर्ति दम, संयम की गांधारी।"

× × ×

है नहीं जन्मान्ध श्रद्धा, दृग लिये हैं मूँद !
महादेवी के लिए, प्रत्येक क्षण मधु-बूँद !
इष्ट मधु सूदन, निवेदित भावना पति-भक्ति।

शक्ति की पद-चाप को वह पहचानती है, शक्ति रूपी द्रौपदी अशीष लेने आती है। वह स्नेह-विह्वल होकर द्रौपदी का आलिंगन करने के लिए अपनी दोनों बाहें फैलाकर दौड़ती है—

"बाँह फैलाये बढ़ी, वह नववधू की ओर,
उड़ चला विपरीत दिशि की ओर अंचल छोर।"

गांधारी द्रौपदी की इन्दीवरी छवि नेत्रों पर पट्टी बाँधे हुए ही देख लेती है। इह स्नेहातुर होकर कहती है—

"मुँह दिखाई तुझे क्या दूँ, द्रुपद-तनया बोल।
देख ली इन्दीवरी छवि नयन मन के खोल।
विगत युग की सुखद सुधि, आ बाहुओं के बीच।
देख मैं कब से पसारे बाँह, आँखे मूँद।
कुल वधू, कुछ बोल ! मैं भी तो सूनू मधु छन्द।
मिले दृग सुख वंचिता को श्रवण का आनन्द।

गांधारी द्रौपदी को आर्शीवचनों से अभिषिक करने के लिए अपने हृदय की समस्त सद्भावनाओं के रूप में शुभाकांक्षाएँ बिखेर देती है—

"अलक्षित गिरि-शृंग माला, अलक्षित गिरि स्रोत।
शुभाकांक्षिणि कृपाकाँक्षिणि, उभय ओत-प्रोत स्रोत।
लहर पर उठती लहर, ज्यों स्नेह का अतिरेक।
हुआ आनन्दाश्रुओं से बधू का अभिषेक।"

गांधारी धर्म-परायण और न्याय-प्रिय है। वह अपने अन्यायी पुत्रों का समर्थन नहीं करती और न उनको विजय का आशीर्वाद ही देती है। युधिष्ठिर कहते हैं—

"दिया नहीं आशीष पुत्र को,
धर्मज्ञा गांधारी।
क्यों न तुम्हारी मति पर माते,
पार्थ जाम बलिहारी।"

गांधारी सब तरह हार चुकी है। वह भ्रातृ-पुत्र-हीना हो गई है। वह अपने मृत पुत्रों को एक बार देखने के लिए आँखों पर से पट्टी हटाती है—

"भ्रातृ-पुत्र-हीना द्रुपदा सी,
थी सुबला गांधारी।
जन्म दिया जिन अनदेखों को,
उनके शव-दर्शन हित।
पहली बार वीर माता ने,
दुखिया दृष्टि उघारी।।"

अपने सौ पुत्रों को मृत देखकर गांधारी का मातृत्व विचलित हो जाता है। वह श्रीकृष्ण को यह शाप देती है कि उनके कुल का नाश भी इस प्रकार परस्पर में लड़कर हो। गांधारी की दृष्टि से युधिष्ठिर के नख काले पड़ जाते हैं। वे उससे धर्म सुत होने का आर्शीवाद माँगते हैं—

"नख मेरे अभिशप्त सही,
पर शीश रहे करतल गत।
धर्म पुत्र ने कहा धर्म का,
पुत्र बनूँ महतारी।"

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि पृथा और गांधारी दोनों ही द्वापर की गरीयसी वीर नारियाँ हैं। पृथा की अपेक्षा गांधारी का त्याग और धर्म-परायणता महान् है। पति के अन्धे होने के कारण आजीवन नेत्रों पर पट्टी बाँधे रहना और अन्यायी पुत्रों को विजय का आशीर्वाद न देना उनकी महानता है।

रस-योजना

प्रश्न २४—रस-योजना की दृष्टि से द्रौपदी काव्य की समीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न २५—"द्रौपदी काव्य में वीर रस प्रधान है, वात्सल्य, करुण, भयानक और शान्त वीर रस के सहायक बनकर उपस्थिति हुए हैं।"—उक्त कथन की विवेचना करदे हुए द्रौपदी काव्य की रस-योजना पर विचार कीजिए।

स्मृति-संकेत

१. द्रौपदी महाभारत की घटना पर आधारित वीर काव्य की परम्परा का काव्य है।

२. महाभारत की महत्वपूर्ण युद्धात्मक घटनाओं का संकेत-शैली में निरूपण हुआ है।

१. कथानक का प्रारम्भ द्रौपदी-स्वयंम्बर और समाप्ति युधिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञ से होती है।

४. वीर-रस के आश्रय—युधिष्ठिर, अस्थम्बन कौरव, उद्दीपन कौरवों का पाण्डवों को राज्य न देना, शकुनि का द्युत जाना, द्रौपदी का निर्वसन करना और द्रौपदी की पाण्डवों को युद्ध-जनित प्रेरणा है। वात्सल्य रस की धारा द्रौपदी-गाँधारी-धृतराष्ट्र, धृतराष्ट्र-दुर्योधन, गांधारी-मृत शत् पुत्र, कुन्ती और कर्ण आदि प्रसगों में प्रवाहित हुई।

६. युद्ध के पश्चात् कुरुवंश की नारियों के करुण-रोदन में करुण-रस की व्यंजना हुई है।

७. युद्ध के विनाश और गुरजनों के वध पर युधिष्ठिर को जो पश्चाताप और आत्म-ग्लानि होती है, उसमें शान्त-रस है।

८. महाभारत के युद्ध से पूर्व प्रकृति एवं ग्रह-नक्षत्रों का जो भीषण रूप उपस्थित किया गया है, उसमें भयानक रस की अभिव्यंजना हुई है।

९. परन्तु अन्य रस वीर-रस को पुष्ट करते हैं। अतः द्रौपदी काव्य में वीर-रस प्रधान है।

उत्तर—द्रौपदी महाभारत की कथा पर आधारित नवीन शैली का प्रतीक काव्य है। इसमें आध्यात्मिक प्रतीक को स्पष्ट करने के लिए महाभारत की कुछ प्रमुख कथाओं को संकेत-शैली में ग्रहण करके कथानक का सूत्र जोड़ा गया है। कथानक का प्रारम्भ द्रौपदी स्वयम्बर से होता है। "द्रुपदा के पुन्याई" से पाण्डव युद्ध में विजयी होते हैं और कथानक युधिष्ठिर के अश्वमेघ यज्ञ के सम्पन्न होने पर समाप्त होता है। इस प्रकार युधिष्ठिर को विजय श्री प्राप्त हो जाती है। यह विजय द्रौपदी की प्रेरणा से पाण्डवों को युद्ध में सलग्न करने से प्राप्त हुई है। यदि रूपक-तत्व को हटा दिया जाय, तो द्रौपदी का अपमान ही महाभारत के युद्ध का कारण बनता है। हमारे वीर काव्यों में प्राय: सभी बड़े-बड़े युद्ध नारी मर्यादा की रक्षा के लिये ही हुए हैं। इस प्रकार वीर काव्यों में वीर-रस के साथ शृंगार-रस भी आया है। यद्यपि आध्यात्मिक रूपक तत्व के कारण शृङ्गार की सम्यक् व्यंजना इस काव्य में नहीं हुई है। वह वीर-रस की प्रेरक शक्ति के रूप में उपस्थित हुआ है।

द्रौपदी काव्य में **अंगी रस वीर रस है।** वात्सल्य, करुण, शान्त और भयानक रसों की व्यंजना वीर-रस के सहायक के रूप में हुई है।

वीर-रस—

वीर-रस के आश्रय, आलम्बन, उद्दीपन आदि निम्न प्रकार हैं—

१. **आश्रय**—पाण्डव।

२. **आलम्बन**—कौरव।

३. **उद्दीपन**—कौरवों और पांडवों के प्रति अत्याचार, उनका राज्य न देना, द्युत-जाल, लाक्षागृह में पांडवों को जलाने के षड़यन्त्र, भरी सभा में द्रौपदी को निर्वसन कर उसका अपमान, द्रौपदी की प्रेरणा आदि।

द्रौपदी-स्वयंवर में द्रौपदी पांडवों को प्राप्त होती है। उसके रूप में अधिकार और स्वत्वों को प्राप्त करने की प्रेरणा-पांडवों को मिलती है। वह उनमें स्थायी भाव उत्साह जागृत कर देती है—

"पुरुषार्थ करो युग - पुरुष,
कह रही यज्ञसेनि पंचाली।"

पांडव जीवनी शक्ति द्रौपदी की प्रेरणा से अधिकारों के लिये युद्ध करने हेतु उत्साहित हो उठते हैं—

"आकाश अवतरण करे,
संचरण न हो शब्द तृष्णा का।
हो गया स्वयं ही सिद्ध,
आत्म - बल आकर्षण कृष्णा का।
प्राणों ने पाया वेग,
अग्नि में तेज उदित हो आया।
हो गया सलिल रसवन्त,
समस्थल ने सुगन्ध को पाया।"

प्रथम सर्ग के अन्त में कर्ण और अर्जुन के युद्ध का प्रसंग आता है। युद्ध में द्रौपदी-पति पार्थ को विजय होती है—

अस्ताचल गामी सूर्य,
सिंहपति आहत नील निलय में।
खो गई कर्ण की कीर्ति,
द्रौपदी-पति पाडव की जय में।"

इन्द्रप्रस्थ में युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ, शिशुपाल-वध, पांडवों का बनवास, अज्ञातवास, युधिष्ठिर का भारत-पर्यटन, पार्थ का कैलाश जाकर पाशुपत अस्त्र प्राप्त करना, भीम की अलकापुरी की यात्रा, कीचकों का वध, वृहन्नला के रूप में अर्जुन की विजय आदि घटनाओं का उल्लेख संकेत शैली में हुआ है। परन्तु ये सभी घटनाएँ पांडवों को युद्ध के कगार पर लाकर खड़ा कर देती हैं। युद्ध के पूर्व प्रकृति और ग्रहों का भीषण रूप होना युद्ध की विकरालता अभिव्यंजित कर देता है।

कवि ने युद्ध के लिए सेन-सज्जा का भी वर्णन किया है—

चतुर्दिक अक्षोहिणी वलि-पशु सदृश सजने लगीं,
चतुर्दिक दिग्दुन्दुभी स्वयमेव ज्यों बजने लगीं।
ब्रह्मवेत्ता शास्त्रधारी, क्षात्र धर्मा विप्र थे,
स्वभावस्थित वृत्तियाँ गुण-धर्म निज तजने लगीं।

अट्ठारह दिवस तक युद्ध होता है, जिसमें पांडव विजयी होते और कौरव विनाश को प्राप्त होते हैं। अन्त में युधिष्ठिर अश्वमेघ यज्ञ करते और उनको फल की प्राप्ति होती । इस प्रकार आलोच्य काव्य में वीर-रस की सम्यक् निष्पत्ति हो जाती

वात्सल्य—

वीर-रस के बीच के वात्सल्य की व्यंजना हुई है। कौरव धृतराष्ट्र के वासना-बीज हैं। वे दुर्योधन के दुराग्रह के सामने झुककर पांडवों को उनका राज्य नहीं देते। अतः धृतराष्ट्र और दुर्योधन आदि के प्रसंग में वात्सल्य रस न होकर वात्सल्याभास है। धृतराष्ट्र जिस वात्सल्य भाव में आकर पांडवों का राज्य नहीं देते, वह युद्ध का कारण बनता है। अतः यह वात्सल्याभास भी वीर-रस की निष्पत्ति में सहायक हो रहा है। शुद्ध वात्सल्य के **संयोग वात्सल्य** और **करुण-वात्सल्य** दो रूपों की व्यंजना आलोच्य काव्य में हुई हैं। द्रौपदी राजमहल में गांधारी से शुभाषीश लेने आती है। गांधारी के हृदय में वात्सल्य की वेगवती धारा उमड़ पड़ती है। वह दोनों बाहें फैलाकर द्रौपदी का आलिंगन करने को आगे बढ़ती है और आनन्द के अश्रुओं से उसका अभिषेक कर देती है—

बाँह फैलाये बढ़ी वह तब वधू की ओर।
उड़ चला विपरीत दिशि की ओर अँचल छोर।
मुँह दिखाई तुझे क्या दूँ द्रुपद-तनया बोल।
देख ली इन्दविरी छबि नयन मन के खोल।
लहर पर उठती लहर, ज्यौं स्नेह का अतिरेक।
हुआ आनन्दाश्रुओं से वधू का अभिषेक॥"

करुण-वात्सल्य—

पाँचवे सर्ग में करुण वात्सल्य की व्यंजना हुई है। गांधारी अपने मृत पुत्रों को देखने के लिए नेत्रों की पट्टी खोलती है। उसके हृदय से करुण-वात्सल्य की वेगवती धारा उमड़ पड़ती है—

भ्रातृ-पुत्र हीता द्रुपदा-सी,
थी सुवला गांधारी।
भेद यही बस एक विजयनी,
एक सब तरह हारी।
जन्म दिया जिन अनदेखों को,
उनके शव-दर्शन-हित।
पहली बार वीर माता ने,
दुखिया दृष्टि उधारी॥"

इसी प्रकार मृत कर्ण को देखकर पृथा का हृदय करुण-वात्सल्य से भर जाता है। वह युधिष्ठिर से कहती है—

"ज्येष्ठ सहोदर था तेरा ही,
कर्ण भाग्य का हेटा।
हाय! अनुज के ही हाथों वह,
अंत चिता पर लेटा॥"

× × ×

"जैसी तेरी, वैसी ही मैं रवि सुत की महतारी॥"

उक्त प्रसंगों में करुण-वात्सल्य की सुन्दर व्यंजना हुई है। परन्तु ये प्रसंग वीर-रस के अन्तर्गत ही आये है। इनकी स्वतंत्र सत्ता नहीं है।

शान्त-रस—

युद्ध में भीषण विनाश देखकर तथा, अन्याय से गुरुजनों का वध समझ कर युद्धिष्ठिर का हृदय पश्चाताप और ग्लानि से भर जाता है, जो निर्वेद को जन्म देता है। परन्तु यह निर्वेद स्थायी नहीं रहने पाता। अग्नि का उद्वोधन

इस निर्वेद को 'उत्साह' में परिवर्तित कर देता है और वे अश्वमेघ में प्रवृत्त ...

भयानक-रस—

भयानक रस की व्यंजना दो अवसरों पर हुई है :—

१. द्रौपदी के राजमहल में प्रवेश करते ही धृतराष्ट्र भयभीत होते हैं।

२. युद्ध से पूर्व प्रकृति, ग्रह एवं नक्षत्र अपना भीषण रूप प्रकट करते हैं।

पांचाली के राजमहल में प्रवेश करते ही धृतराष्ट्र का राज्यासन डोलने लगा। उनको ऐसा लगा मानो नियति ही गर्जना कर रही हो। वे भयभीत हो गये। उनका मुख पीला पड़ गया—

"शत हस्तिद्वार कर पार,
सुन पड़ा पांचाली का स्वर।
कर रही नियति हुंकार,
डोलता धृतराष्ट्र राज्यासन।
धृतराष्ट्र हुए भयभीत,
पीत मुख पड़ा सुनी एवं बातें।
समझा मन ही मन, हुई,
व्यर्थ सब सुत की घातें॥"

महाभारत के पूर्व का प्रकृति निम्न भीषण रूप भयानक-रस की व्यंजना करने में सहायक है—

जीव अतिचारी हुआ नक्षत्र श्रवणा के निकट।
चरमराने लगा बोझिल मन्द से रोहिणि शकट।
सिंह मुख में अग्नि-सा, कुज मघा पर वक्री हुआ।
पुष्य को आक्रान्त करने लगा धूमायत विकट।
केतु चित्रा पर उदित हो, इन्दु को ग्रसने लगा।
सिंहिका-सुत अदित-सुत को निगलकर हँसने लगा।
पड़ गये दो ग्रहण तेरह दिनो के व्यवधान में।
काल-व्याल विशाल अपनी, कुण्डली कसने लगा।
× × × ×

पड़े सत्यासत्य दानव-देव भीषण मोह में।
ज्योति पिण्डों में तिमिर का हो रहा उद्रेक था।
साँवले मृग ने दिया तज हृदय-तट राकेश का।
कलंकित हो गया मंडल व्यथित विमल दिनेश का।
काल-वैशाखी उदित थी, काल का क्रम भूलकर।
धूलि के बादल उड़ाता रथ महा कालेश का।

करुण-रस—

द्रौपदी काव्य में करुण-रस की सुन्दर व्यंजना हुई है। वीर-रस के पश्चात् करुण-रस की ही सफल अभिव्यक्ति हुई है। युद्ध के पश्चात् युद्ध-भूमि का विनाश दृश्य करुण-रस की वेगवती सरिता प्रवाहित कर देता है। कुररी के समान कौरवियाँ विलाप कर रही हैं। भरे-पुरे घर रीते हो गये हैं। शोणित की सरिता सूख गई है और अश्रु-धारा प्रवाहित होकर शोक की सरिता ही बन गई है—

"कुररी-सी रोती कौरवियाँ,
रुदन न हृदय समाता।
वीर पड़े सो रहे विजन में,
भरे-पुरे घर रीते।

मन में जल उठते सुधि दीपक,
आँखों में अँधियारा।
सूख गई सरिता शोणित की,
वही अश्रु की धारा।
शोकातुर कुल वधुओं का दल,
शोकातुर सरिता-सा।
आर-पार कुछ नहीं सूझता,
डूबा कूल-किनारा॥"

नदी के किनारे स्थान-स्थान पर चिता का धुआँ उठ रहा है। सरिता अस्थि-फूलों से भर गई है--

"नदी-किनारे ठौर-ठौर पर,
उठता धुआँ चिता का।
अस्थि-फूल सुधि के दीपों से,
भरा हृदय सरिता का।"

पाँचवे सर्ग में करुण-रस का बड़ा ही मार्मिक चित्रण हुआ है। गांधारी और पृथा के रोदन में करुण-वात्सल्य है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि द्रौपदी वीर-रस प्रधान काव्य है। अन्य रस सहायक रूप में उपस्थित हुए हैं।

प्रश्न २६—करुण-रस की दृष्टि से द्रौपदी काव्य की आलोचना कीजिए।

उत्तर—प्रश्न संख्या २४-२५ का उत्तर पढ़िए।

प्रश्न २७—वात्सल्य-रस की दृष्टि से 'द्रौपदी' काव्य की समीक्षा कीजिए।

उत्तर—प्रश्न संख्या २४-२५ का उत्तर पढ़िए।

प्रश्न २८—भयानक रस की दृष्टि से 'द्रौपदी' काव्य की समीक्षा कीजिए।

उत्तर—प्रश्न संख्या २४-२५ का उत्तर पढ़िए।

प्रश्न २९—शान्त रस की दृष्टि से 'द्रौपदी' काव्य की समीक्षा कीजिए।

उत्तर—प्रश्न संख्या २४-२५ के उत्तर से पढ़िए।

नारी

प्रश्न ३०—नारी-निरूपण की दृष्टि से 'द्रौपदी' काव्य की समीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न ३१—"नारी नर की शक्ति है। नारी के बलिदान के बिना पुरुष को भला क्या प्राप्त होता है।"—'द्रौपदी' काव्य के आधार पर इस कथन की सोदाहरण विवेचना कीजिए।

अथवा

प्रश्न ३२—"द्रौपदी में मैंने भारतीय नारी के तेजबल का गुणगान किया है। नारी की दहन-शक्ति, सहन-शक्ति और दहन-सहन शक्ति की ओर बार-बार संकेत किया गया है।"—इस कथन की व्याख्या करते हुए द्रौपदी में नारी-भावना की विवेचना कीजिए।

अथवा

प्रश्न ३३—"द्रौपदी नारी-शक्ति का एक शाश्वत नित्य-नवीन-निरन्तर प्रतीक है।"—अपने पाठ्य काव्य के आधार पर उक्त कथन की सोदाहरण समीक्षा कीजिए।

स्मृति-संकेत

१. नारी नर की शक्ति है।
२. जीवनी शक्ति द्रौपदी के प्राप्त होने पर ही पाण्डव अपने स्वत्वों को प्राप्त करते हैं।
३. नारी (द्रौपदी) का अपमान करने के कारण ही महाभारत का युद्ध होता है और कौरव विनाश को प्राप्त होते हैं।
४. नर की विजय का मूल्य नारी ही चुकाती है।

५. द्रौपदी सनातन जीवनी शक्ति की प्रतीक है।

६. नारी-शक्ति के अनेक रूप हैं। वह कृत्या, मृत्यु, उर्वशी, जाया, माया, कल्याणकारिणी, आदि सभी कुछ है।

उत्तर—द्रौपदी में नारी-भावना और उसका स्वरूप—

कवि ने 'द्रौपदी' में नारी के शाश्वत और चिरन्तन शक्तिमय एवं कल्याणकारी रूप को अभिव्यक्त किया है। उसकी मान्यता निम्न प्रकार

"नारी के बलिदान के बिना पुरुष को भला क्या प्राप्त होता है। धर्मराज की विजय को संभव बनाने के लिये पृथा ने अपने अवैध पुत्र की बलि दी, द्रौपदी ने अपने पाँच पुत्रों की, श्रद्धा स्वरूपिणी गांधारी ने अपने शत पुत्रों को खोया और सुभद्रा ने भी अपने लाल का बलिदान दिया।"

—वक्तव्य

"द्रौपदी में मैंने भारतीय नारी के तेज-बल का गुणगान किया है। नारी की दहन-शक्ति, सहन-शक्ति और दहन-सहन-शक्ति की ओर बार-बार संकेत किया गया है। यह भी कहा गया है कि नारी के त्याग के बिना धर्मराज की विजय सर्वथा असम्भव थी।.......द्रौपदी जितनी प्राचीना है, उतनी ही नवीना भी। कहा जा सकता है कि द्रौपदी नारी-शक्ति का एक शाश्वत नित्य-नवीन-निरन्तर प्रतीक है।"

—भूमिका

नारी अनादि काल से नर की शक्ति और मर्यादा रही है। नर ने जब भी नारी का अपमान किया, वह विनाश को प्राप्त हुआ। सीता का अपहरण करने के कारण सोने की लंका खाक में मिल गई और वह सकुटुम्ब विनाश को प्राप्त हुआ। द्रौपदी का अपमान करने के परिणामस्वरूप ही महाभारत का युद्ध हुआ, जिसमें कौरव विनाश को प्राप्त हुए। याज्ञसेनि द्रौपदी की शक्ति के बिना युधिष्ठिर कौरवों के पशुबल को समाप्त कर धर्म और न्याय की स्थापना करने में समर्थ नहीं हो सकते थे। ऊर्ध्वचेता युधिष्ठिर को द्रौपदी ही युद्ध के कगार पर अपनी प्रेरणा से ले आती है।

नर की इस विजय का मूल्य नारी सदैव चुकाती आई है। पृथा, गांधारी, द्रौपदी आदि सभी ने बलिदान किये, तभी युधिष्ठिर को विजय मिली। नारी रूपा प्रकृत्ति-शक्ति के अनेक रूप हैं। वह कृत्या, मृत्यु, उर्वशी, जाया, माया आदि सभी कुछ है।

द्रौपदी जीवनी-शक्ति तथा नारायणी शक्ति का शाश्वत प्रतीक है। बिना नारी के नर में शक्ति का संचार नहीं हो सकता। द्रौपदी वह जीवनी-शक्ति है जो अनादि काल से नर को जागृत करती आई है। वह मनुष्य को सत्पथ पर प्रवृत्त करके लोक-मंगल का विधान करती रही है। नारी का यही रूप 'द्रौपदी' में आद्यान्त मिलता है।

नारी नर के लिये प्रेरणा शक्ति है —

द्रौपदी स्वयम्वर से पूर्व पांडव भिक्षाटन करते हुए दैन्य जीवन व्यतीत करते थे। द्रौपदी रूप में नारी-शक्ति उनको प्रेरित करती हुई कहती है—

"पुरुषार्थ करो युग पुरुष,
कह रही यज्ञसेनि पांचाली।"

और द्रौपदी रूपी नारी की जीवनी-शक्ति प्राप्त करते ही पांडवों में शक्ति का संचार हो जाता है। आकाश तत्व युधिष्ठिर पृथ्वी के यथार्थ धरातल पर आ जाते हैं, भीम के प्राणों में पवन का वेग और अर्जुन के तेज में अग्नि-ज्वाला संचारित हो उठती है। सलिल-तत्त्व नकुल रसवन्त हो जाता है और समस्थल सहदेव को सुगन्धि प्राप्त होती है—

"आकाश अवतरण करे,
संचरण न हो शब्द तृष्णा का।
हो गया स्वयं ही
आत्मबल आकर्षण कृष्णा का।
प्राणों ने पाया वेग,
अग्नि में तेज उदित हो आया।
हो गया सलिल रसवन्त,
समस्थल ने सुगन्ध को पाया।"

नारी की हुँकार बड़े-बड़े राज्यासनों को हिला देती है। द्रौपदी के राज-महल में प्रवेश करते ही धृतराष्ट्र का राज्यासन डोलने लगता है—

"शत हस्तिद्वार कर पार,
सुन पड़ा पांचाली का गर्जन।
कर रही नियति हुँकार,
डोलता धार्त्तराष्ट्र राज्यासन।"

नारी को सन्तुष्ट करके ही इष्ट साधना हो सकती है। भीष्म विदुर से कहते हैं—

"कर याज्ञसेनि को तुष्ट,
इष्ट दुस्साध्य साधना होगा . . .

कौरवों ने द्रौपदी के रूप में नारी-शक्ति का अपमान किया। द्रौपदी उनके विनाश के लिए कृत्या बन गई—

"नदी वैतरणी यथा वेनी खुली लहरा रही,
धार्त्तराष्ट्रों को डुबाने, हर भँवर गहरा रही।
द्रौपदी के केश काले, धरा को छूने चले,
शत्रु होंगे धराशायी, मरण - बेला आ रही।"

नारी की शाश्वत जीवनी शक्ति का अपमान करके महाभारत के युद्ध में कौरव और कौरव पक्ष के क्षत्री विनाश को प्राप्त हुए—

"कठिन थी उस दिव्य जन्मा,
शक्ति की अवहेलना
कठिन था नभ के लिए भी,
तेज उसका झेलना
खेलकर यज्ञाग्नि से,
सब मर मिटे क्षत्रिय सुभट !
खेल पावक प्रवंचन का,
भूलकर मत खेलना !"

द्रौपदी के पाँचवें सर्ग में स्वतन्त्र रूप से नारी के महत्व और उसकी गरिमा का प्रतिपादन हुआ है—

नारी केवल भोग की वस्तु नहीं हैं, वह पावक, तनया और मूर्तिमती देवेच्छा है। वह जीवन-यज्ञ में ज्वाला की तरह उद्दीप्त है—

"आर्या भार्या नहीं उपकरण,
वह न कंचना म्लेच्छा !
आर्या नारी पावक - तनया,
मूर्तिमती देवेच्छा !
जीवन यज्ञ, वीर नर याज्ञिक,
नारी अग्नि कुमारी !
देवेच्छा - वस आत्म - यज्ञ में,
पहली आहुति स्वेच्छा !"

नर नारी की शक्ति प्राप्त किये बिना विजयी नहीं हो सकता। नारी ही उसे नय्या बनकर युद्ध-महानद के पार ले जा कर विजय दिलाती है—

"युद्ध-महानद-पार विजश्री,
प्रखर क्षिप्रतर धारा !
एकाकी नर पार न पाता,
रहता दूर किनारा !
है दुस्साध्य अगम धारा में,
नारी, नर की नय्या।
नर के लिए चलाती नारी,
जल-धारा पर आरा।'

नारी नर की शक्ति है। नारी की दहन-शक्ति में पौरुष की उद्दीप्ति छिपी हुई है। नारी अपनी दहन-शक्ति से नर की विजय का मूल्य चुकाती है। नारी के अश्रुओं में प्रलय का परावार समाया है। नारी की आह से हस्तिनापुर ढह गया और उसकी बाढ़ में स्वर्ण की द्वारिका डूब गई—

"दहन शक्ति से मूल्य चुकाती,
नारी नर की जय का।
है नारी की सहन शक्ति में,
संस्थित केतु विजय का।

हस्तिमेव ढह गया आह से,
स्वर्ण द्वारिका डूबी।
है नारी के अश्रु बिन्दु में,
पारावार प्रलय का।"

प्रकृति स्वरूपा सनातन नारी शक्ति के अनेक रूप हैं। वह कृत्या, मृत्यु, उर्वशी, जननी, जाया, माया, धारिणी, तारिणी, आदि सभी कुछ है। उसमें सारा ब्रह्माण्ड समाया हुआ है—

"नारी कृत्या, मृत्यु, उर्वशी,
जननी. जाया, माया
क्षीरसिन्धु धारिणी, तारिणी,
महाशून्य की काया
ऋतानृता, चिद्-अचिद्-शक्ति वह,
नीरा——नाल——कमलिनी;
यह हिरण्यगर्भा है, जिसमें,
सब ब्रह्माण्ड समाया।"

निष्कर्ष—

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'द्रौपदी' की नारी प्रकृति-स्वरूपा चिरन्तन शक्ति है। उसके अनेक रूप हैं और उसमें समस्त ब्रह्माण्ड समाया हुआ है। वह मनुष्य को उन्नति और सद्पथ पर ले जाने वाली महाशक्ति है। उसका अपमान महा-विनाश का कारण बनता है। पुरुष की विजय का मूल्य नारी ही चुकाती आई है। अतः स्पष्ट है कि आलोच्य काव्य की द्रौपदी रूप में नारी जितनी प्राचीना है, उतनी ही नवीना भी। द्रौपदी नारी-शक्ति का एक शाश्वत, नित्य-नवीन-निरन्तर प्रतीक है।

उद्देश्य

प्रश्न ३४ – उद्देश्य की दृष्टि से 'द्रौपदी' काव्य की समीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न ३५ –"महाभारत की प्राचीन नारी आज भी हमारे जातीय जीवन को प्रेरित कर सकती है। इसी उद्देश्य का प्रतिपादन द्रौपदी काव्य में हुआ है।"—इस कथन की सोदाहरण समीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न ३६—"द्रौपदी के माध्यम द्वारा कवि ने भारत के नारीत्व की जो व्यंजना की है, वह तेजोमयी, प्रभावशालिनी और दीप्तिमयी है।"—इस कथन की सोदाहरण विवेचना कीजिए।

अथवा

प्रश्न ३७—"मेरा उद्देश्य कथा के सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करना है। इस उद्देश्य के अनुरूप लोक-प्रसिद्ध कथा के प्रति बीज-दृष्टि और लघिमा-शैली को अपनाया है।"

कवि के उक्त कथन की व्याख्या करते हुए बतलाइये कि 'द्रौपदी' काव्य की रचना में कवि का उद्देश्य क्या है?

उत्तर—'द्रौपदी' काव्य की रचना के सम्बन्ध में कवि ने अपना उद्देश्य निम्न प्रकार अभिव्यक्त किया है—

"जिस कथा को हम बाल्यकाल से ही सुनते आये हैं। उसे ज्यों का त्यों पद्यबद्ध करना मैं उचित नहीं समझता। मेरा उद्देश्य कथा के सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करना है।"

इस उद्देश्य के अनुरूप मैंने लोक-प्रसिद्ध कथा के प्रति बीज-दृष्टि और लघिमा-शैली को अपनाया है।"

—भूमिका पृष्ठ ९

"द्रौपदी स्वयंवर से युद्ध में विजय तक के सुविशाल कथा-विस्तार का संतरण लघिमा-शैली के बिना कहाँ संभव था ?........महाभारत की कथा की लोक प्रियता के आलम्बन बिना यह संभव न था। इसलिए मैंने लघु काव्य के मूलाधार महाभारत के प्रति पुनः नमन करता हूँ।"

—भूमिका पृष्ठ १५

आलोच्य काव्य में कवि ने अपने उक्त आध्यात्मिक दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है। द्रौपदी द्वापर की महिमा मंडित गरीयसी नारी है। उसे कवि ने शाश्वत जीवनी शक्ति के रूप में स्वीकार किया है। नारी अनादिकाल से मनुष्य को प्रेरणा देती आई है। जीवनी शक्ति द्रौपदी में जितनी प्राचीनता है, उतनी ही नवीनता भी। द्वापर में उसने पांडवों को अपने स्वत्वों के लिए युद्ध-रत होने के लिए प्रेरित किया था। उसके द्वारा प्रेरित शक्ति से ही पशुबल का विनाश हुआ था और पृथ्वी पर धर्म, न्याय एवं सत्य की स्थापना हुई थी।

आज हमारे सामने संघर्ष पूर्ण युग है। चारों ओर राजनीतिक एवं सामाजिक उथल-पुथल है। मानव की जीवन के मूल्यों के प्रति अनास्था हो रही है। मनुष्य आर्थिक शोषण, विफलताओं की कुण्ठाओं की घुटन में पड़ा हुआ कराह रहा है। जीवनी शक्ति की प्रतीक द्रौपदी की प्रेरणा शक्ति आज पांडव रूपी पुरुषों को शक्ति और तेज से प्रेरित कर सकती है। उससे प्रेरित मनुष्य जीवन को उन्नति पथ पर प्रकाशवान बना सकता है। आज की परिस्थितियों से प्रताड़ित भारत को द्रौपदी रूपी नारी शक्ति का महान् संदेश दे रही है। आलोच्य काव्य में कवि का मूल उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि नारी चेतन्य की शिखा, तेज की ज्वाला और शाश्वत एवं चिरन्तन शक्ति के रूप में अनेक रूपा है—

"आर्या नारी पावक-तनया,
मूर्तिमती देवेच्छा।

× × ×

है दुस्साध्य अगम धारा में,
नारी, नर की नय्या।
नर के लिए चलाती नारी,
जल-धारा पर आरा।

× × ×

सहन-शक्ति से मूल्य चुकाती,
नारी,नर की जय का।
है नारी की दहन शक्ति में,
संस्थित केतु विजय का।

× × ×

प्रलय-पूर में भी नारी ही,
बनती नर की नैया।
पलट पड़ी यदि किसी हेतु वह,
बचता नहीं खिवैया।

× × ×

नारी कृत्या, मृत्यु, उर्वशी,
जननी, जाया, माया।
क्षीर विन्धु-धारिणी, तारिणी,
महाशून्य की काया।

ऋतानृता, चिद्-अचिद्-शक्ति वह,
नीरा— नाल——कमलिनी।
वह हिरण्यगर्भा है, जिसमें,
सब ब्रह्माण्ड समाया ।।"

नारी के इसी शाश्वत गौरव और उसकी शक्ति का उद्‌घाटन करना आलोच्य काव्य में कवि का उद्देश्य रहा है। 'द्रौपदी' काव्य वर्तमान को यह सन्देश देता है कि जो अन्याय-पथ पर चलते हैं और नारी का अपमान करते हैं,

वे नारी के अभिशाप की ज्वाला से कौरवों की तरह विनाश को प्राप्त होते हैं और पाँडवों की तरह नारी की गरिमामयी सत्ता में विश्वास एवं आस्था करने वाले विजयी होकर कीर्ति का अर्जन करते हैं।

आलोच्य काव्य में दौपदी भारत की गरिमामयी नारी का प्रतीक बनकर उपस्थित हुई है। द्रौपदी वह माध्यम है, जिसके द्वारा कवि ने भारत की महिमामयी नारी की गरिमा को उद्भासित किया है। मानवता के विकास का इतिहास नारी के त्याग, वलिदान, प्रेरणा और शक्ति से ही लिखा गया है। आज भी नारी अपनी इसी महान् शक्ति से मंडित है।

नरेन्द्र शर्मा और उनका काव्य

प्रश्न ३८—नरेन्द्र शर्मा के व्यक्तित्व, कृतित्व और काव्य-प्रेरणा पर एक सार-गर्भित निबन्ध लिखिए।

उत्तर—जीवन-परिचय—

श्री नरेन्द्र शर्मा का जन्म २८ फरवरी सन् १९१३ को जिला बुलन्दशहर खुर्जा तहसील के जहाँगीर पुर गाँव में हुआ था। जब आप अबोधावस्था के ही थे, पिता का स्वर्गवास हो गया। किशोरावस्था में आकर आप आर्यसमाज के सुधारवादी आन्दोलन और राष्ट्रीय जागरण से बहुत प्रभावित हुए। गाँधीजी के असहयोग आन्दोलन के समय आपने चौकी पर जाकर पुलिस को ललकारने का साहस किया। राष्ट्रीयता का उत्तरोत्तर विकास आपके जीवन में होता चला गया।

श्री नरेन्द्र शर्मा ने खुर्जा से इन्टरमीडिएट परीक्षा सन् १९३९ में उत्तीर्ण की और प्रयाग विश्वविद्यालय में प्रविष्ट हुए यहाँ आपको रुचि के अनुकूल उच्च साहित्यिक वातावरण मिला। आप पन्त जी की कविता की बहुत अधिक प्रशंसा किया करते थे। शमशेर बहादुर, केदारनाथ अग्रवाल, जगदीश चन्द्र माथुर, वीरेन्द्रसिंह, पन्त, बच्चन आदि का सहचार्य आपको प्राप्त हुआ। नरेन्द्र जी कवि-गोष्ठियों में भाग लेते थे। निराला जी आपको पन्त जी की परम्परा का कवि मानते थे। काव्य-रचना में श्री नरेन्द्र शर्मा को पन्त एवं भगवती चरण वर्मा से प्रेरणा मिली। सन् १९३६ में आपने एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। इस समय तक आप अच्छी कविता लिखने लगे थे।

काव्य-रचनाएँ—

श्री नरेन्द्र शर्मा के सन् १९३४ में 'शूल-फूल' और सन् १९३६ में 'कर्ण-फूल' काव्य-संग्रह प्रकाशित हुए। आप कुछ समय तक भारत पत्र के सम्पादक भी रहे। आपने कुछ समय अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के केन्द्रीय कार्यालय

में पं० जवाहर लाल नेहरू के निजी सहायक के रूप में भी कार्य किया। आपकी काव्य-रचना निरन्तर चलती रही। सन् १९३९ में 'प्रवासी के गीत' और सन् १९४० में 'पलाश-बन' नामक आपकी काव्य कृतियाँ प्रकाशित हुईं।' प्रवासी के गीत' से तो आप हिन्दी के छायावादी कवियों की अगली पंक्ति में आ गये। आपने सन् १९४० में ही राष्ट्रीय शिक्षण-संस्था काशीविद्यापीठ में अध्यापन प्रारम्भ किया। देवली में आपने सोलह दिनों तक अनशन किया। यहां की जेल में आप सत्याग्रह करने के कारण नजर-बन्द करके रखे गये थे। इसी समय आपने कथा गीति कामिनी तथा 'मिट्टी और फूल' संग्रह लिखे। सन् १९४३ में फिल्मी गीत लिखने की महत्वाकांक्षा में आप बम्बई गये। यहीं पन्त जी की प्रेरणा से आपने विवाह किया। विवाह के पश्चात् आपकी महत्वपूर्ण काव्य कृतियाँ प्रकाशित हुईं।

१. हंसमाला—सन् १९४७ ई०
२. रक्त चन्दन—सन् १९४८ ई०
३. अग्नि शस्य—सन् १९५० ई०
४. कदली बन—सन् १९५३ ई०

उक्त रचनाओं में पर्याप्त प्रौढ़ता है। सन् १९५३ में आप आकाशवाणी के सम्पर्क में आये। पहले आप सुगम संगीत तथा कार्यक्रमों के नियोजक रहे और बाद में 'विविध भारती' में संचालक बन गये। आकाश वाणी दिल्ली केन्द्र पर कार्य करते हुए आपने सन् १९६० में 'द्रौपदी' और सन् १९६४ में 'प्यासा निर्झर' प्रकाशित कराया। आपका 'उत्तर जय' काव्य सन् १९६५ में और 'बहुत रात गये' सन् १९६७ में प्रकाशित हुआ। सन् १९६६ से आप बम्बई की केन्द्र में "विविध भारती" के चीफ प्रोड्यूसर और एक राष्ट्रीय महाकाव्य तथा एक खण्ड काव्य की रचना में संलग्न हैं।

युग और वातावरण का प्रभाव—

नरेन्द्र शर्मा का काव्य-रचना काल अनेकानेक राष्ट्रीय, सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक-चेतना एवं संघर्ष का युग रहा है। गांधी-युग से पूर्व और बाद की समस्त परिस्थिति पर और विचारधाराओं ने उन्हें प्रभावित किया भगतसिंह, राजगुरु, नेताजी सुभाषचन्द्र 'बोस' आदि बलिदानी देश-भक्तों से भी उनकी

काव्य प्रेरणा को बल दिया। सन् १९४७ में दो भागों में विभाजित होकर देश स्वाधीन हुआ। देश के विभाजन के परिणामस्वरूप भीषण रक्तपात, नर-संहार और गांधी जी की सहादत हुई। इसके पश्चात् भारत अपने औद्योगिक विकास और आर्थिक स्वाधीनता के लिए पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से निरन्तर उन्नति-पथ पर बढ़ता जा रहा है। इसी बीच में भारत पर सन् १९६२ में चीन और सन् १९६५ में पाकिस्तान का आक्रमण हुआ। भारत ने दोनों आक्रमण कारियों को मुँहतोड़ उत्तर दिया। इन समस्त बहुरङ्गी परिस्थितियों ने नरेन्द्र शर्मा के काव्य को प्रभावित किया। आधुनिक हिन्दी की समस्त काव्य-धाराएँ और प्रमुख कवि नरेन्द्र शर्मा की प्रेरणा के स्रोत रहे। आपने सुमित्रानन्दन पन्त के प्रभाव को स्वीकार करते हुए लिखा है—

"वीणा के शब्द झंकार और 'नीहार' की संवेदना का अप्रत्यक्ष प्रभाव मेरे मन पर कुछ इस प्रकार पड़ा, मानों किसी बीजाक्षर मन्त्र ने मेरे गुह्य अन्तर को जगा दिया हो। काव्य के प्रति मेरी रुचि जाग उठी।"

पन्त और वर्ड्सवर्थ की तरह नरेन्द्र शर्मा की कविताओं में प्रकृति के नाना रूपों के बहुरङ्गी चित्र उपस्थित हुए हैं। 'पलाश वन' की कविताएं कुर्मांचल के अतुल सौन्दर्य के नयनामिराम चित्र हैं। उनकी अध्यात्मिक कविताएँ तक प्रकृति की माधुरी का 'अंचल' नहीं छोड़ती।'

नारी को नरेन्द्र शर्मा में अपने काव्य की मूल प्रेरणा के रूप में स्वीकार किया। उनके काव्य में नारी अनेक रूप होकर उपस्थित हुई है। वह एक सुन्दर फूल, तितली, गीति, प्रीति, सुन्दरी होने के साथ-साथ समस्त सृष्टि को संचालितकरने वाली महाशक्ति भी है। वह पुरुष को प्रेरणा-देने वाली जीवनी शक्ति है—

"नारी कृत्या, मृत्यु, उर्वशी,
जननी, जाया, माया!
क्षीर सिन्धु-धारिणी, तारिणी,
महाशून्य की काया!

ऋतानृता, चिद्-अचिद् शक्ति वह,
नीरा-नाल कमलिनी !
वह हिरण्यागर्भा है, जिसमें,
सब ब्रह्माण्ड समाया !"

नदेन्द्र शर्मा की काव्य-रचना पर व्यक्तिगत, सामाजिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय चिन्तन धाराओं का बढ़ा प्रभाव पड़ा है। गांधी जी के सत्य-अहिंसा के सिद्धान्तों पर उनके मन में गहरी आस्था है। उन्होंने 'रक्त-चन्दन' कृति की रचना महात्मा गान्धी की सहादत से प्रेरित होकर ही की।

भावुक कवि—

श्री नरेन्द्र शर्मा एक भावुक सहृदय कवि के रूप मे हमारे सामने आते हैं। उनमें बौद्धिकता की भावना भी एक आस्था के रूप में विकसित होती चली गई। नरेन्द्र शर्मा को हिन्दी-जगत में एक भावुक कवि के रूप में ही स्वीकार किया गया है। उन्होंने अपने को "मानव-मन की दुर्बलताओं का कवि" कहा है। यदि आपके समस्त काव्य का मन्थन किया जाय तो उसमें भावुकता और बुद्धि का द्वन्द्व सर्वत्र मिलेगा। उनके काव्य में भावुकता ने जहाँ शाश्वत सौन्दर्य की सृष्टि की है, वहाँ बुद्धि ने समाज के मंगल पक्ष को पुष्ट किया है। नरेन्द्र शर्मा ने सदैव व्यक्ति को समाज का अङ्ग माना है। उन्होंने कहा है—

"व्यक्तिगत रूप में मेरा जो प्रेम है, वह भी समाज-सापेक्ष श्रेय पर सौ वार न्यौछावर है।"

नरेन्द्र शर्मा का समाज के मंगल की ओर सदैव ध्यान रहा है। यही कारण है कि प्रगतिवादी कवियों में आपका नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। आपके काव्य में व्यक्ति और समाज का समन्वय उपस्थित हुआ है। 'हँसमाला' की भूमिका में आपने स्वयं लिखा है—

"पिछले कुछ वर्षों में व्यक्ति और समाज के जीवन में अनेक घटनाएं घटित हुई हैं, अनेक संकट काल आये हैं और वह अधिभौतिक और आधि-दैविक प्रहार हुए हैं कि कभी तो हमारी चेतना लपटों के पंख लगाकर एक

महती आकांक्षा के समान ऊपर उठी है और कभी मूढ़ावस्था की राख-मिट्टी में दबकर मूर्च्छा बनकर सो गई है।"

नरेन्द्र शर्मा के काव्य में उभरी हुई चेतना ही उन्हें नितान्त आत्म-केन्द्रित व्यक्तिवादी अथवा भावुक रूमानी कवियों से पृथक कर देती है।

नरेन्द्र शर्मा के काव्य की प्रमुख विशेषता उसमें परम्परा के प्रति आस्था, अध्यात्मिकता और भौतिकता का समन्वय, राजनीतिक और सामाजिक चेतना के साथ-साथ प्राणिमात्र के प्रति प्रेम-भावना का प्रसार तथा लोक-कल्याण की कामना है। उनकी कविताएं सुनिश्चित विश्वास और आदर्श की ग्राहक हैं। वे आज हिन्दी-काव्य की एक सबल शक्ति के रूप में हमारे सामने हैं।